इक्कीसवीं सदी के नाटक

प्रो. महेमूद पटेल

9 789390 753284

ISBN: 978-93-90753-28-4

Published by
Novateur Publication
466, Sadashiv Peth, M.S.India-411030

इक्कीसवीं शती के नाटक

प्राक्कथन

साहित्य में लोकमंगल की भावना सन्निहित है। यह लोककल्याण की भावना का झरना है जो मान की ज्ञान पिपासा को शांत कर उसे शीतलता प्रदान करता है। साहित्य ही मानव लोक तत्व के प्रति सचेत कर नवीन चेतना का सृजन करता है। साहित्य अपने समय और समाज का दस्तावेज होता है। साहित्य समाज की चेतना में¬ सांस लेता है। वह समाज का परिधान है। जो जनता के जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद , आकर्षण और विकर्षण का ताना-बाना बुना जाता है तथा समाज में उसमें विशाल मानवीयता के दर्शन होते हैं। साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं, कलाओं एवं संघर्ष की कथाओं का दस्तावेज है। साहित्य युग सापेक्ष होता है। उसके मूल-मानव जीवन के संघर्ष का परिवेश, वातावरण, परम्परा, इतिहास और आधुनिकता का समावेश होता है। मनुष्य एक संघर्षशील व चिन्तनशील प्राणी है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का ऐसा कोई भी पक्ष नही जो मनुष्य के चिन्तन से अछूता रहा हो।

21 वीं सदी वैज्ञानिक सदी है जो प्रगति और विकास के दौर मजहां रंगमंचीय नाटकों के प्रदर्शन के विभिन्न आयाम प्रस्तुत किये हैं। वही नवीन आविष्कारों ने नाटकों की मूलभूत धारणा में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिए हैं। पात्रों के सूचक परिधान, अलंकार भावभंगिमा आदि का प्रकटिकरण रंगमंच पर अच्छी प्रकार से सम्भव हो पाया है। वैज्ञानिक और तकनीकी ढंग से विकसित एवं निर्मित आधुनिक रंगमंच पर भी द्रश्यों की बिम्बात्मकता उभारी जा सकती है। किन्तु आणुविक विस्फोटक आधुनिक युद्ध, समुद्री जहाज, आग लगना, वायुयान अथवा रेल दुर्घटना आदि दृश्यों को इनके वास्तविक रूप में रंगमंच पर नही दिखाया जा सकता है। ऐसे दृश्य तो केवल

दूरदर्शन पर दिखाया जा सकते हैं। इसको ओर अधिक नैमिचन्द्र जैन जी ने अपनी पुस्तक 'रंग दर्शन' मव्यक्त किया है। जिस प्रकार रंगमंच को जीवित और सक्रिय रखने के लिए नाटक की निरन्तर रचना होती है उसी प्रकार रंगमंच सजीव होने से समर्थवान लेखक नाटक को अपनी अनुभूति के व्यापक और विस्तृत सम्प्रेषण का माध्यम पाता है और सहज ही उसका उपयोग करने को उन्मुख होती है। रंगमंच सक्रिय होने से लेखक का नाट्यात्मक अनुभूति से निरन्तर साक्षात्कार होता है। जिससे नाटककार रूप में सृजनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण और विकास में सहायता मिलती है। आधुनिक युग के उत्तरार्ध में यान्त्रिकी क्रान्ति ने मनुष्य के समक्ष विकास के बहुआयामी व्यवस्था स्थापित की है जिससे समाज में सूचना क्रान्ति की मशाल जल उठी टेलीविजन, टेलीफोन, इल्कट्रोनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया ने समाज मनवीन दिशा प्रदान कर दी और सबसे अधिक कम्प्यूटर, इंटरनेट जैसे उपकरणों ने माना मानव को पंख ही लगा दिए हो जिसके आधार पर वह सूचना तन्त्र का सर्वसर्वा बनने का संघर्ष करे लगा है। आज सम्पूर्ण विश्व के द्रश्यों, घटनाओं को घर बैठकर भी उपलब्ध किया जा सकता है जहां इन सब नवीन एवं अत्याधुनिक उपकरणों ने मानव जीवन को सरल बना दिया है। वही प्रेम, भाई-चारे अखण्डता के सामाजिक मूल्य अर्थहीन हो गये हैं। प्रथम अध्याय में इन सब नवीन आविष्कार एवं उनके हमारे समाज और व्यक्तिगत जीवन में होने वाले प्रभाव को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया है। 21 वीं सदी ने मानव को अधिक सुविधा भोगी बना दिया। इन सब सुविधाओं का लाभ केवल उच्चवर्ग अथवा धन सम्पन्न लोग ही उठा पाते हैं। वर्तमान समाज ममनुष्य में संबंधो के प्रति अलगाव, घुटन, कुंठा, ऊब, अन्तः बाह्य द्वन्द्व तथा कई प्रकार की नकारात्मकता उत्पन्न हुई है। यह केवल सदी के बदलते परिवेश का प्रभाव है जो

मनुष्य को मनुष्य से दूर किये जा रहा हैं। आज एक परिवार लोगों में आपसी प्रेम, स्नेह दिखाई नही देता।

जिसके कारण संयुक्त परिवार विघटन के कगार पर आ खड़े हुए हैं। 21 वीं सदी के नाटककारों ने तीव्र गति से बदलते परिवेश को अभिव्यक्ति प्रदान की है तथा बदलते परिवेश में मानव का बदलते आचार - व्यवहार को नवीन परिस्थितियों के रूप में अभिव्यंजित किया है। 21 वी सदी में नाटक के विकास के साथ बदलते कथानकों अर्थात् कथा वस्तु में समाज के यथार्थ स्वरूप को दर्शाने का प्रयास किया गया है। वर्तमान समाज के यथार्थ घटनाओं, चित्रों, अनुभूतियां को ही नाटककार ने कथावस्तु के रूप में प्रयोग किया। इसमें नाटक अर्थ, परिभाषा, तत्व एवं महत्व को बताया गया है। स्वतंत्रता से पूर्व नाटकों की कथावस्तु, कल्पना, ऐतिहासिकता पर आधारित नाटक लिखे जिनका जन - जीवन के साथ जुड़ाव कम ही देखा गया परन्तु समय के साथ साहित्य में भी काफी परितर्वन हुए। स्वतंत्रता के बाद के नाटकों को जन - जीवन से जोड़कर लिखा गया है।

21 वीं सदी के नाटककारों ने नाट्य साहित्य को जन - जीवन के हर पहलू से जोड़ने का प्रयास किया है। जन - जीवन की विपरीत परिस्थितियाके विरोध में संघर्ष का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इस अध्याय मसंघर्ष का अर्थ परिभाषा संघर्ष के स्वरूप के साथ दर्शाया गया है। जो ह्रदयांगों पर अमिट छाप छोड़ देता है। समाज में 21 वीं सदी में समाज में धूमिल होती राजनीति, गिरते मूल्यों, टूटते रिश्तों और बूठे वादे ही रह जाते हैं। वर्तमान में शिक्षण संस्थान भी राजनीति का केन्द्र बन गये हैं। आज हमारी राजनीति असंजमस की राजनीति बन गई है। जनता का शासकातथा राजनेताओं

पर से विश्वास उठ चुका है। देश में जनहित शासन तन्त्र के स्थान पर अराजकता तथा स्वार्थी की राजनीति ही रह गई है। हर तरफ हिंसात्मक वातावरण बना हुआ है।

अनुक्रमणिका

अध्याय	अध्याय का नाम	पृष्ठ संख्या
प्रथम	हिन्दी नाटक, अर्थ स्वरूप व परिभाषा	03–14
द्वितीय	हिन्दी नाटक परिवर्तन के आयो में विधा	15–56
तृतीय	आधुनिक नाटक और आधुनिक नाटक की अनूठी विशेषताएं	57–69
चतुर्थ	हिन्दी नाटक : उपलब्धियाँ एवं परिवर्तन की संभावनाएँ	70–116
पंचम	21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का सामान्य परिचय	117–147
सष्ठ्म	21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का बदलता स्वरूप	148–190
सप्तम	21वीं शताब्दी के नाटकों का बदलता रंग मंचीय स्वरूप	191–209
	उपसंहार	210–214
	संदर्भ सूची	215–225

प्रथम अध्याय

हिन्दी नाटक अर्थ स्वरूप व परिभाषा

मानव का संघर्ष एक निरन्तर चलनी वाली प्रक्रिया है। जो कि जन्म से मृत्यु तक चलायमान है। संघर्ष केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है। इस संसार का प्रत्येक प्राणी संघर्षशील है अपनी जीवन प्रक्रिया के प्रति। साहित्य में ही समाज के यथार्थ स्वरूप देखा जा सकता है। वैसे तो साहित्य में अनेक विधाएं हैं जिसमें समाज का वास्तविक प्रतिबिंब देखा जा सकता है। लेकिन 'नाटक' सब विधाओं में सर्वोत्तम विधा है। नाटक का समाज के भावनात्मक जुड़ाव अधिक है। क्योंकि नाटक के माध्यम से किसी भी कथ्य को अधिक स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसलिए 'भारत मुनि' ने अपने 'नाट्यशास्त्र' को नाटक का पंचम वेद माना है जिसमें अन्य सभी वेदों का समावेश है जो मानव मनस्पटल पर अमिट छाप छोड़ता है। जिसके कारण वह समाज के प्रति तथा समाज में घटित होने वाली समस्याओं के प्रति जागृत कर नव चेतना का सृजन करता है।

साहित्य ही समाज को एक सूत्र में बांधने का काम करता है। मानव हृदय से, वैर, द्वेष, घृणा, असमानता, हिंसा, अनैतिक, छल - कपट, कुंठा, पीड़ा, अलगाव, घुटन और हर प्रकार नाकारात्मकता दूर कर प्रेम और शान्ति का संदेश देता है। विश्व स्तर पर अहिंसा, प्रेम और शांति का सन्देश साहित्य के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में तो 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना आदिकाल से चली आ रही है। न केवल मनुष्यों के प्रति सहानुभूति है, वरन - पशु पक्षियों, पेड़ - पौधों, समस्त प्राणियों के प्रति करुणा भाव साहित्य का मूल भाव है। 21 वीं सदी नाटक कारों ने समाज के जिस रूप को देखा उसको उसी रूप में दर्शाया है। 21 वीं सदी को नाटक समाज में विकृत हो मानवीय संवेदनाएं, बिखरते सामाजिक सम्बन्ध, विघटित हो रहे नैतिक मूल्य और तार - तार

होती संस्कृति,भ्रष्टाचार तथा संयुक्त परिवारों का टूटना तथा नारी के प्रति जैसा समाज में व्याप्त है। नाटक वास्तव में अन्य साहित्यिक विधाओं में विशिष्ट और सर्वोत्तम है। नाटक के रसिक दर्शक होते हैं,शेष साहित्य के श्रोता। 21 वीं सदी के नाटकों के माध्यम से सुधारवादी दृष्टि का प्रचार - प्रसार अधिक हुआ है। मानव के हृदय में नवीन चेतना का सृजन कर समाज को नवीनता और अखंडता की ओर ले जाने का प्रयास किया है।

1.1 नाटक की व्युत्पत्ति

नाटक वैदिक काल से भारतीय परम्परा में लोकप्रिय उत्सवधर्मी अनुष्ठान रहा है। पंचम वेद के रूप में प्रतिष्ठित पाये हुए 'नाट्यशास्त्र' में आचार्य भरत मुनि ने नाट्योत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐतिहासिक कथा का उल्लेख किया है। मनुष्य जीवन की ऐसी प्रवृत्ति है जिसे वह अपने धार्मिक अनुष्ठानों, महोत्सवों, लौकिक कृत्या के रूप में प्राचीन काल से ही सौंदर्य तथा आनन्द उद्बोधन के रूप में देखता आया है। मनोविज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि बालक प्रकृत रूप में अनुकरण प्रिय होता है तथा आत्मीयजनों का नाटकीय ढंग से अनुकरण मानव की सहज प्रवृत्ति है। नाट्योत्पत्ति के मूल सिद्धांतों के विश्लेषण में भारतीय तथा पाश्चात्य विचारो में समान धारणाएँ पाई जाती है। नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण वीर पुरुषों की स्मृति में समय- समय पर जो सामूहिक सम्मान प्रदर्शित किया जाता था। उसी से नाटक का जन्म हुआ। ग्रीक और भारत में दिवंगत वीरों के प्रति पूजा भाव प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति समाज में थी भारत में रामलीला और कृष्णलीला इसी प्रवृत्ति के परिचायक है भारतीय वेदों को नाटक की व्युत्पत्ति का मूलाधार माना जाता है। उनका कहना है कि देव राज इन्द्र ने वेदों के रचयिता ब्रह्मा से जनसाधारण के मनोरंजन के लिए एक ग्रन्थ रचना करने की प्रार्थना की इस पर ब्रह्मा जी ने योगस्थित होकर ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से श्रंगारादि रस लेकर सर्वसाधारण के लिये नाट्यवेद की रचना की। ब्रह्मा के कहने पर भरत मुनि ने अपने सौ पुत्रासह इन्द्रध्वज के अवसर पर सुपर

विजय नाटक का अभिनय किया भगवान शिव ने इसके लिए तांडव तथा विश्वकर्मा जी ने रंगमंच बनाया लेकिन पाश्चात्य विद्वान इसे दैवी उत्पत्ति नहीं मानते परन्तु भरत मुनि जी ने इस मान्यता से नाटक के चार तत्त्व पाठ्य, गीत, अभिनय और रस को माना है। नाटक के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों में काफी मतभेद है। जहाँ पर भारतीय वर्ग नाटक का उद्भव धार्मिक कर्म कांडों से मानते है वही दूसरी और लौकिक तथा सामाजिक कार्य कलापों से मानते है। "नाटक की व्युत्पत्ति लौकिक एवं सामाजिक उत्सवों से मानते हैं। उनका कहना है कि जहाँ यूनान में नाटक की व्युत्पत्ति के मूल में 'पोल' उत्सव नृत्य है, यहाँ भारतीय नाटकों की व्युत्पत्ति के मूल में इन्द्रध्वज महोत्सव है। इन पाश्चात्य विद्वानों ने भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र से ही उत्पत्ति के प्रमाण लिये है भरत मुनि स्वयं नाट्यशास्त्र में इसका स्पष्ट उल्लेख करते है 'नाट्यवेद' के मूल तत्त्व-पाठ्य, गीत, अभिनय, रस चारों वेदों से लिये गये है। नाट्योत्पत्ति के सम्बन्ध में भरत मुनि ने कथा को सहस्त्र स्वीकार किया गया है। पं० सीताराम चतुर्वेदी नाट्योत्पत्ति की कथा का उल्लेख करते हुए लिखते है कि "नाट्य का प्रयोग हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन काल से होता चला आया है और उसकी परम्परा कभी लुप्त नहीं हुई।"1 प्रथम परिस्थिति में प्रारम्भिक प्रवृत्तियों तथा अन्तर निहित शक्तियों के आधार पर बर्हिजगत की नाना रूपात्मकता के प्रभावों के अनुकरण में क्रीड़ा का जन्म हुआ है इस क्रीड़ा में सुखानुभूति सन्निहित है। दूसरी परिस्थिति में पूर्व सुखानुभूति स्वयं आधार हो जाती है और उस पर पूर्व प्रवृत्तियों के प्रभाव का अनुकरण क्रीड़ात्मक हो जाता है यह क्रीड़ा ही स्वानुकरणध्यान और धारणा के सहारे कल्पना के क्षेत्र में आवश्यक उपकरणों की सहायता से मानसिक अनुकरण का रूप धारण करती है और इसी मानसिक अनुकरण में कला की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। कुछ विद्वान नाटक की व्युत्पत्ति का आधार कठपुतलियों के खेल से भी मानते हैं। कठपुतलियों से नाटक प्रारंभ होने की कल्पना का केन्द्र बिन्दु सूत्रधार शब्द है। किन्तु शब्द के अर्थ का प्रयोग सूत्रधार और सूत्रात्मा जैसे शब्दों से मानना चाहिए। कथा वस्तु और नाटकीयता प्रयोजन के सब उपादानो को जो ठीक-ठाक संचालित करता है वह सूत्रधार माना जाता है उसे हम आजकल डायरेक्ट कहते हैं। निष्कर्ष

रूप में कह सकते है कि नाट्यकला स्वयं में संवलित रही हैं, कलान्तर में जिसकी अनुभूति मानव मात्र को हुई। वही याज्ञिक तथा धार्मिक अनुष्ठानों के पृष्ठभूमि में चले जाने पर उसका वह शेष भाग शुद्ध नाट्य रचना के साथ समृद्ध रंगभूमि के रूप में उभरकर सामने आया जिसकी उत्पत्ति के मूल में कार्य – विशेष को पुनः दिखाने का भाव ही प्रबल है। आदि समय में जब मानव ने किसी घटना अथवा अनुभव का वर्णन कर दिखाया तभी नाटक की सहज उत्पत्ति हुई होगी।

1.2 नाटक का अर्थ

नाटक नट लोगों की क्रिया है। "नाटक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'नट', 'नाट' और नृट धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ है अभिनय करना। भारतेन्दु नाटक का सम्बन्ध नट या अभिनेता से मानते है। इसी कारण लोक भाषा में नट उन घुमन्तु लोगों के लिये प्रयुक्त होता है जो गली–गली सूत्रधार के संकेत पर रस्सी पर चलने वाला/वाली होती है। नाटक नट लोगों की क्रिया कही जाती है। नट कहते है – विधा के प्रभाव से अपने या किसी वस्तु के स्वरूप में फेर कर देने वाले को या स्वयं दृष्टि लेखन के फिरन को नाटक के पात्र गण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजादिक स्वरूप धारण करते है और केशविन्यास के पश्चात रंगभूमि में स्वीकार्य कार्य साधन हेतु फिरते है। डॉ॰ नगेन्द्र ने लिखा है कि "नाटक की कथा विधान का बहुत बड़ा गुण है कि यह शोथिल्य नाट्य को और सम्बन्ध बनाता है जिसके कारण आशु संवादों के लिए, नकलों के लिए, हंसी मजाक और तड़क–भड़क के लिए तथा कथा की मंथर गति और विस्तार के लिए काफी छूट रहती है। इसी कारण नाट्कीय व्यापार में विशेष लय आ जाती है। सेठ गोविन्द दास ने कहा है कि "नाटक में किसी एक घटना को थोड़े समय में अधिक तीव्रता के साथ प्रकट कर के दर्शकों के मन पर एक विशेष प्रभाव डाला जा सकता है। इसलिए मेरे मतानुसार कथा विशेष जब अभिनय प्रदर्शन के साथ प्रत्यक्ष कलात्मक रूप में प्रस्तुत हो तो वह नाटक कहाँ जाएगा उन्होंने नाटक में स्वाभाविकता, नाट्यरचना को स्वीकार किया है। भारतीय मनीषियों ने 'अवस्थानुकृतिनाट्य' अर्थात्

"अवस्था के अनुकरण को नाटक कहा है। पात्रों की अवस्थाओं, स्थितियो में नोः स्थितियों, भाव दशाआयों मूड़ का अभिनेताओं द्वारा दर्शकों के समक्ष अभिनय के माध्यम से अनुकरण ही नाट्य है। अभिनेता (नट) में पात्र की अवस्था के आरोप के कारण ही इसे रूपक भी कहा जाता है।"3 दशरथ ओझा ने 'हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास' में लिखा है कि "यह निःसन्देह रूप से मानना चाहिए कि भारतीय देशी भाषाओं के साहित्यिक नाटक प्रणयन से पूर्व कोई-न-कोई नाट्य परम्परा प्रत्येक भाषा-भाषी प्रान्त में विद्यमान अवश्य रही है, जो सम्भवतः साहित्यिक नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण न होते हुए भी ज्येष्ठ भगिनी के नाते उसकी परिचर्चा अवश्य करती रही होगी। जन-नाटक और साहित्यिक नाटक का परस्पर सम्बन्ध हमारे देश में ही नहीं, अन्य देशों में भी रहा है। अंग्रेजी के नाटक जब शैशव में थे तो उन पर जन-नाटक प्रभाव डालते रहे हैं।1 आगे चलकर ओझा जी ने अपना मत बदलकर वास्तविकता को सीधे इस प्रकार स्वीकारा है कि हिन्दी नाटक की परम्परा का मूल स्रोत जन-नाटक ही है, जो स्वाँग के नाम से अपने प्राचीन रूप में अब तक विद्यमान है। अतएव हिन्दी नाटक की उत्पत्ति और विकास का विवरण रास और स्वाँग आदि की परम्परा के अनुसंधान बिना अपूर्ण ही माना जाएगा। नाट्य साहित्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना मनुष्य जाति का। मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार में अनुकरण है और इसी कारण अभिनेता का सहज रूप समन्वित होता है। ये दोनों तत्त्व नाटक के प्राण है। "विचार परिस्थिति और द्वन्द्वात्मक स्थिति नाट्कीय चरित्रों एवं परिस्थितियों के उद्गम-स्थल समझे जा सकते है। वे क्रियाएँ जो दुरूह एवं तनावप्रद हो, वे कथोपकथन जो व्यक्तियों के मन की दुविधा एवं भ्रम की स्थिति के परिचायक हो, वे अनुभूतियाँ, जो आकांक्षा एवं विरति के संघर्ष से उद्भूत हो अथवा वे आकस्मिकताएँ जो किसी नयी चीज का रहस्योद्घाटन खोज स्थिति परिवर्तन अथवा विरोध प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण करते हो 'नाटकीयता' के उपकरण के रूप में अपने आप में चित्रित मिलते हैं। नाट्य अपने आप में संपूर्णकला है। अन्य कलाएं आंशिक और एकायामी होती है। उसमें समस्या कला रूपों का यथावश्यकता समाहार रहता है। इस दृष्टि से सभी कला रूप नाट्य-रूपी अंगों के संघटक और पोषक अंक माने जा सकते है

सच्चे पद्य नाटक में प्रत्येक अनाटकीय तत्त्व का अनिवार्यतः बहिष्कार किया जाता है, चाहे वह अपने आप में कितना ही मूल्यवान क्यों न हो। यही प्रश्न उठता है कि काव्य और कहानी-उपन्यास के संदर्भ में सामान्य तः तथा नाटक के संदर्भ में विशेषतः बार-बार प्रयुक्त होने वाले शब्द-नाटकीय का वास्तविक अर्थ क्या है अरस्तु के अनुसार "घटनाएं हमारे समक्ष अचानक ही उपस्थिति हो।" यह अचानक केवल संयोग पर आधारित नहीं होना चाहिए। इसके पीछे कार्य कारण श्रृंखला निश्चित रूप से विद्यमान होनी चाहिए। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि कथा का आस्वाद कौतूहल पर आधारित होता है और कौतूहल का आधार है-आकस्मिकता नाट्य रचना का गहन और वास्तविक संकट आधुनिक काल में तब उपस्थित हुआ जब नाटककार के सामने यथार्थ और संपूर्ण जीवन आ खड़ा हुआ उसकी सारी उदारता सरलता और आनंद भावना उसके तन-मन में घुल चुकी थी। जयदेव तनेजा ने लिखा है कि - "नाटक का सर्वाधिक गुण उसकी नाटकीयता है, काव्यात्मकता का स्थान उसके बाद आता है इसलिए कोई भी नाटककार सदैव अपने समसामयिक रंगमंच के स्वरूप, उसकी रूढ़ियाँ, आवश्यकता और विकास दिशाओं से पूर्णतः परिचित होता है और अपने नाट्य लेखन में उनका समुचित उपयोग भी करता है। आज के जटिल और संश्लिष्ट मानव जीवन के अनाटकीय नाटक को उसके सभी स्तरों और आयामों म प्रस्तुत कर पाना बहुत कठिन कार्य है जयदेव जी लिखते है कि -समकालीन जीवन मूल्यों पर पड़ने वाले चतुर्दिक दबावों ने मानव मूल्यों और परंपरागत मान्यताओं को कैसे प्रभावित किया और इससे संबंधों का आधार और स्वरूप कितना और कैसा बदला, अथवा बदलने के लिए कसमसा रहा था या है, समसामयिक हिन्दी नाटक का मूल सरोकार ऐसे और इसी प्रकार के अन्य बुनियादी सवालों की गहरी और प्रामाणिक छानबीन करना है।"1 नाटक साधारण-जन के मनोरंजन का साधन है। लोक जीवन में मानव दुःख एवं शोक से पीड़ित है। लोक के इस ताप-संताप को विंश्राति जिस कलात्मक उपाय से सम्भव है, वह नाटक ही है।

1.3 नाटक की परिभाषा

नाटक की उत्पत्ति त्रेतायुग में ब्रह्मा के द्वारा 'पंचमवेद के रूप में ही की गई थी। इस पंचम 'नाट्यवेद' में पाठ्य, गीत, अभिनय एवं रस ये चार अंग थे। संस्कृत काव्य मीमांसक आचार्यों का ध्येय सदा ही 'विभानुभाव व्यभिचारी संयोगद्रस निष्पतिः' दर्शक की रस और आनंदात्मक अनुभूति ही रहा है। वस्तुतः नाटक के मूल में ही काव्य के समान रस की ग्राह्यता और आनंदानुभूति ही प्रमुख रही है। प्रभात शर्मा "हिन्दी गद्य के विकास को आधुनिक काल की एक बड़ी घटना मानते हुए आश्चर्य प्रकट करते है कि इसका उद्भव 'नाटक' से हुआ है। वास्तव में वह काल नवजागरण का था। संस्कृत की गौरवमयी नाट्य-परंपरा जो क्षीण और मृतप्राय-सी पड़ी थी उसे हिंदी गद्य परंपरा में पुनर्जीवित करने का भला इससे अच्छा समय और नहीं हो सकता था यद्यपि पश्चिमी नाट्य-परंपरा और बंगला की पूर्व विकसित नाटक परंपराओं के प्रभाव से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। नाटक को कला का विकसित रूप कहते हैं, काव्य एक कला है और ललित सुकुमार कलाओं में सुकुमार कला है, नाटक का सम्बन्ध कला से ही नहीं है अपितु वह कला का विकसित रूप माना गया है जैसे हृदय को अनुभूति कराने के लिए कला के दो द्वार है कान और आँख इधर काव्य की अनुभूति कराने के लिए भी दृश्य और श्रव्य दो माध्यम है। नाटक मूर्त कला है, दृश्य तथा श्रव्य मूर्त व अमूर्त सब साधनों से वह मानसिक संसार को विकसित करता है। श्रीदेवी लाल सामर ने नाटक के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते लिखा है कि "अनादिकाल से ही मनुष्य अपने आनन्द मंगल के समय अंग-भंगिमाओं का जो अनियोजित प्रदर्शन करता आ रहा है, वही धीरे-धीरे समष्टि रूप में आयोजन-नियोजन द्वारा नृत्यों का स्वरूप धारण करने लगा जैसे-जैसे नृत्य अपनी आदि अवस्था से निकलकर उन्नत और सभ्य समाज का श्रृंगार बनने लगा वैसे-वैसे उसके साथ गीत नाट्य आदि भी जुड़ने लगे और व्यवस्थित नृत्य नाट्य तथा गीत नाट्य का प्रादुर्भाव होने लगा। नाटक का प्रत्येक अंक और दृश्य नाटक की गति में सहयोग देने वाला होता है उसमें वर्णित प्रसंग संबंध का

अंक का अंश होना चाहिए उसमें कहीं भी नाटक प्रसंगों की पुनरावृत्ति का दोष नहीं आना चाहिए। नाटक में वाणी विलास से पहले अपनी भंगिमाओं द्वारा ही मनुष्य विभिन्न प्रकार के मूक प्रदर्शन न जाने कब से करता था, क्योंकि अनुकरण करना उसकी सहज एवं जन्मजात प्रवृत्ति है। नाटक इसी तरह सहज उत्पन्न श्रव्य एवं दृश्य योजना है। "अपनी मूल प्रकृति की दृष्टि से नाटक वह सम्वाद मूलक कथा है जिसे अभिनेता रंगमंच पर नाट्य व्यापार के रूप में दर्शक वर्ग के सामने प्रस्तुत करते हैं।1 नाटक की यह परिभाषा एक ओर नाटककार अभिनेता और दर्शकों को एक-दूसरे से अलग करती है तो दूसरी और उसके आधारभूत तत्वों, कथानक, सम्वादी, अभिनेता के रूप में पात्र अथवा चरित्रा, आदि तत्त्वों को समान रूप से प्रमुखता प्रदान करती है। नाटक को रंगमंच से पृथक कोई स्वतंत्र साहित्यिक विधा नहीं माना जाता वस्तुतः नाटक के मूल में ही काव्य के समान रस की ग्राह्यता और आनंदानुभूति प्रमुख रही है। दशरथ ओझा के विचारों में इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली आदि देशों में भी आरंभ में कई धार्मिक नाटक लिखे गए, जिनमें नाटकीय तत्त्व बीज मात्र थे और भविष्य में विकसित हुए। उस धार्मिक साहित्य को नाटक की संज्ञा देने का एकमात्र कारण यह है कि वे जनता के सम्मुख ईसा के जीवन की विविध घटनाओं को प्रदर्शित करते थे। श्रव्य काव्य के रूप में उनका गायन भी हो और पवित्र वर्णों के अवसर पर उत्सव के उपलक्ष्य में ए क बड़े जन-समुदाय के सामने अभिनय सामग्री के साथ उनका प्रदर्शन भी किया जा सके। किसी भी नाटक की सफलता का निर्णय इस आधार पर किया जाता है कि वह नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुकूल है बल्कि इस आधार पर किया जाता है कि नाटक को देखकर प्रेक्षक की उसके प्रति क्या प्रतिक्रिया होती है भरत मुनि के समान अरस्तु भी नाटक का क्षेत्र विस्तृत मानते है। उसे जनता की वस्तु मानते हैं, उसमें मानव जीवन की शाश्वत प्रवृत्तियों का स्पर्श करने वाला सार्वभौम साधन है। इस प्रकार नाटक में कलात्मकता, नैतिकता है, उसमें ज्ञान, शिल्प सभी विधा कला, शास्त्र कर्म निवास करते है। सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए नाटकों का आयोजन सदियों से चला आ रहा है। "नाटक फैशनेबल चीज नहीं है, वह सच्चाई से उभरता है। नाटक शब्द है। शब्द का

अभिनय होना चाहिए। शब्द के लिए आलोक परिकल्पना और संगीत होना चाहिए। शब्द ही है जो कलाकार को जीवित रखता है। जो भी भविष्य का नाटक होगा अगर वह साहित्य की तरफ नहीं झुकेगा तो केवल नाटक की सीमाओं में ही रहेगा।2 निश्चित रूप से नाटक एक कठिन विधा है लेकिन नाटक का वैशिष्ट्य तभी उभरेगा जब उसे उसकी समग्रता में देखा जाएगा यदि आप गहराई में जाकर शांत भाव से विचार करें तो ब्रह्मा ने नाट्यवेद के रूप में जो परिकल्पना की है आधुनिक रंग पुरुष सत्यदेव दुबे ने अपने मत में उसका समर्थन किया है। नाट्य विधा एक दुधारी विधा है वह साहित्य भी है और रंगमंच भी लेकिन नाटककार का माध्यम केवल भाषा है भाषा के माध्यम से नाट्य विधा अपने दृश्यत्व, प्रत्यक्ष अनुभूति और सीधे साक्षात्कार के अत्यन्त रोमांचक अनुभव एवं क्रिया-प्रतिक्रिया से युक्त होने के कारण साहित्य की सभी विधाओं में श्रेष्ठ मौलिक, विशिष्ट और जटिल विधा रही है।

1.4 नाटक का महत्व

प्राचीन समय से ही अभिनय के संदर्भ में नाटक, नृत्य, नृत्त, ताण्डव और लास्य इन पाँच शब्दों की व्याख्या करने के पश्चात केवल नाट्य को नाटक के साथ जोड़कर देखने की दृष्टि नितांत आधुनिक और मौलिक सोच-विचार का परिणाम है। प्रायः मंच में गीत, संगीत और नृत्य को नाटक और मंच का अनिवार्य अंग मान लिया जाता है। मंच अपने आप में एक पूर्ण, मौलिक और शुद्ध कला है, यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है। गीत, संगीत और नृत्य उसके सहायक तत्व भले ही हो जाए, वे उसके अनिवार्य तत्त्व नहीं है। मंच के लिए कौन सी फार्म, कौन सा शिल्प, कौन सी संरचना और कौन से मुहावरे की तलाश की जाए, यह सवाल आज के रंगकर्मी के सामने सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। मंच का महत्व उतना ही गहरा और प्रभावशाली है। नाटक और मंच का बहुत गहरा संबंध है। मंच के बिना नाटक की कल्पना नहीं की जा सकती है। नए मंच की तलाश के संदर्भ में य ह नहीं भूलना चाहिए कि मानव समाज में सांस्कृतिक निरंतरता रहती है। इसमें अतीत संरक्षित रहता है और उससे मुक्ति भी होती है।

यही द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया विकास का दर्शन है। किसी भी रचना की अन्तर वस्तु और रूप का परिवर्तन विकासशील समाज की उपज होता है। जब समय नई अंर्तवस्तुओं की और प्रेरित करता है तो वह नए रूपों की तलाश की और उत्साहित करता है। मंच वस्तु जगत से अलग इकाई है। यह किसी सत्य को प्रस्तुत करने के लिए रचा गया काल्पनिक जगत है, स्वाभाविक रूप से इस मंच का सत्य वास्तविक जीवन के सत्य पर आधारित एक कल्पना है। इस कल्पना का जड़ पहलु है वह परिवेश, जिसे मंच पर रचा गया है, पर अभिनेता अपने आपको उस परिवेश में कैसे डाले वह कोई जड़ वस्तु नहीं है। उसके शरीर को मंच पर लाकर रखा जा सकता है पर जब तक वह अपने मनप्राण से दी हुई परिस्थिति में प्रवेश नहीं कर पाता तब तक उसकी प्रतिक्रिया सत्य के अनुरूप नहीं हो सकती और वह नाट्यपाठ की अभिव्यक्ति में सक्षम नहीं हो सकता संवेगों की दुनिया मानव मस्तिष्क के नियंत्रण से परे हैं। हम चाहकर अपनी आँखों में आँसू नहीं ला सकते। पर संवेगों की दुनिया अनियंत्रित और हमारी हदों से पूरी तरह बाहर भी नहीं है।

1.5 नाटक का उद्देश्य

प्रत्येक साहित्यिक विधा के मूल में कोई न कोई उद्देश्य अवश्य निहित होता है। यह उद्देश्य अनेक प्रकार का हो सकता है। यथा-नैतिक आदर्शों की स्थापना, देश का, जाति का पतन-उत्थान, संस्कृति व सभ्यता का विकास दिखाना, जीवन की समस्या व समाधान को प्रस्तुत करना, यथार्थ एवं आदर्श का समन्वय आदि इन सब के साक्षात् रूप देने के लिये नाटक ही एकमात्र ऐसी विधा है जो दृश्य एवं श्रव्य दोनों को अपने में समाहित किये हुए है। नाटक का उद्देश्य 'आनन्द की प्राप्ति' है। सुख-दुख की भावना का विकास जब मानव के मनपटल के उच्च धरातल पर पहुंच जाता है और यही धरातल जब कलात्मक रूप धारण कर लेता है तो एक विराट आनन्द की प्राप्ति होती है और यह आनन्द आलौकिक है और नाटक का मुख्य उद्देश्य है। इन्हीं से हमें आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक व चारित्रिक स्फूर्ति मिलती है।

नाटक अपने मूल में हमारे जीवन मूल्यों, सामाजिक मर्यादाओं के वे आदर्श संजोए हुए है जो हमें पुरातन से प्राप्त हुए। नाटकों ने इन नैतिक आदर्शों को सुरक्षित रखकर अपने उद्देश्य व महत्व को बढ़ावा दिया है। नाटककार वर्मा जी ने नाटक का प्रयोजन मनोरंजन के साथ-साथ लोक रंजन व लोकमंडल को माना है। नाटक ऐसा होना चाहिये जिनसे स्वस्थ मनोरंजन के साथ देश के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया जा सके। इस प्रकार वे लोक रंजन, लोकमंगल तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति को नाटक की सिद्धि मानते है नाटक साहित्य का साकार रूप है। वह साहित्य के अंगों की अपेक्षा जनसाधारण के सबसे अधिक निकट हैं। नाटक में जीवन की वास्तविकता सोंदर्य विधायिनी कल्पना के रंगों से पूर्ण होकर रंगमंच पर अवतरित होती है जिससे उसमें जीवन की झलक मिलती है। वर्मा जी के अनुसार नाटक का उद्देश्य इतिहास संस्कृति एवं उनकी गोरवमयी गाथाओं एवं चरित्रों को समाज में प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करके उन्हें मनोरंजन के साथ प्रेरणा देना है। सामान्यतः नाट्य कला सामाजिक तथा युग-मूल्यों की प्रतिष्ठा का विधान है। यह एक ऐसी सामाजिक कला है जिसका उद्देश्य पुरुषार्थ चतुवर्ग की प्राप्ति स्वस्थ मनोरंजन एवं सामाजिक मर्यादा की रक्षा करना है। नाटक का उद्देश्य पाठकाएवं दर्शकों को नवजागरण का सन्देश देना भी है। भारतीय जनता ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों से आहत थी तो साहित्यकारों ने भोजस्वी एवं प्रेरणादायक नाटकों की रचना करके देशवासियों में राट्रीयता की भावना पैदा की अतः नाटक का उद्देश्य लोगों में सुप्त चेतना जागृत करके उन्हें भविष्य के लिये सन्देश देना है। भारतीय विद्वानों ने रस को ही नाटक की आत्मा को स्वीकार किया है। इसमें कोई शक नहीं है कि जीवन की वास्तविकता ही नाटक का आधार है और इसी वास्तविकता को रखते हुए दर्शक व पाठक रसानुभूति करता है। नाट्यकला की सफलता इसी में है कि सामान्य दर्शक उसमें रस ले सके और नाट्यकला के पण्डित भी उसे उत्कृष्ट समझे। उसमें न तो दर्शक को उबा देने वाले उपदेशात्मक संवाद हैं और न दुर्बोध भाषा। उसमें विभिन्न रसों का समावेश कोतुहल भी भावना और प्रेणीयता होनी ही चाहिये। रस का स्थान आज मनोविज्ञान ने ले लिया है। नाट्य प्रयोजन के रूप में

सुरूचि पूर्ण मनोरंजन, नैतिक मूल्यों की वृद्धि, दर्शक के मन की उत्कर्ष आदि पर विशेष बल दिया है। नाटक देखते समय दर्शक इतने तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें य ह भी आभास नहीं रहता कि वे वास्तविक घटना देख रहे हैं या नाटक। यह तन्मयता ही नाटककार का उद्देश्य होता है। अतः कहा जा सकता है कि नाटक का उद्देश्य हमारे नैतिक आदर्शों, सामाजिक मूल्यों , भविष्य के लिये सन्देश व स्वच्छ, शुद्ध सात्विक मनोरंजन प्रदान करता है।

1.6 नाटक और रंगमंच का पारस्परिक सम्बन्ध

नाटक रंगमंच के लिये होता है और रंगमंच नाटक के लिए एक नाटक और रंगमंच का पारस्परिक सम्बन्ध अंग और अंगी का है। नाटक और रंगमंच के सम्बन्ध के बारे में हैं कि रंगमंच के बिना नाटक में प्राण की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। अतः यदि रंगमंच शरीर है तो नाटक प्राण है। नाटक का सीधा सम्बन्ध समाज से है। समाज को रंगमंच से जोड़ने के लिये नाटककार को स्वभाव उसी रंगमंच में उतारना है। रंगमंच के माध्यम से सभी वर्गों जैसे शिल्पी, कलाकार, दर्जी, रंगरेज, को अपनी कल्पना और प्रतिभा दिखाने का अवसर मिलता है। रंगमंच का कोई भी कार्यकर्ता अपने अन्य साथियों के बिना अपनी कला का प्रदर्शन नहीं कर सकता। अतः नाटक की सम्पूर्णता को प्रदर्शित करने के लिए नाटक, रंगमंच व समाज के कई वर्गों का तालमेल होना जरूरी है। नाटक और रंगमंच एक दूसरे के पर्याय है। रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन या उसके विविध अंगों और पक्षों पर विचार अपूर्ण ही नहीं भ्रामक हो जाता है। नाटक रंगमंच का निर्माणकर्ता है और रंगमंच नाटक का नहीं । कई विद्वानों की यह मान्यता है परन्तु रंगमंच की भी अपनी एक अलग परम्परा है, सत्ता है वह एक जीवंत और सक्रिय-प्रक्रिया है। नाटक साहित्य का एक सगुण रूप है। यह सगुण रूप रंगमंच के माध्यम नृत्य, संगीत, अभिनय की स्वर लहरियों को जोड़कर साहित्य की ललित दृष्टि को एक आकर्षण रूप प्रदान करता है। डॉ॰ लक्ष्मी नारायण लाल के शब्दों में, "नाटक अपने विशेष युग काल की अर्थ हीनता को झेलता हुआ उसके

मूल्यवान अर्थ को प्राप्त करता है। यही अनुभव नाटक में छिपा होता हैं और इसी की अनुभूति रंगमंच की वास्तविक उपलब्धि होती है। नाटक के बिना रंगमंच अधूरा है और रंगमंच के बिना नाटक अधूरा है। हिन्दी रंगमंच का उदय भारतेन्दु काल में हुआ और विकास प्रसाद काल में हुआ। इसके बाद हिन्दी नाटक रंगमंच पारसी थियेटर के रूप में विकसित हुआ। प्रथम महायुद्ध के बाद तीसरे दशक तक पारसी थियेटर ने चरम शिखर को प्राप्त कर लिया था क्योंकि इस समय भारत में विदेशियों की अराजकता भी चरम पर थी। लेकिन पारसी थियेटर ने राष्ट्रीय चेतना पुनरुत्थान की भावना पर इश्क, रोमानियत भारत का गौरव आदि को घुला-मिला कर सफलता हासिल की। जयशंकर प्रसाद ने अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों मेंपुनरूत्थान की भावना और राष्ट्रीय गौरव के रंग भरकर रंगमंच पर प्रस्तुत किया। नाटक और रंगमंच की चर्चा करते समय रंगशाला तथा रंग स्थल की चर्चा भी विशेष महत्व रखती है। नाटक के प्रदर्शन के लिये खुला, बंद, स्थायी, अस्थायी, रंगभवन या ओडोटोरियम और उसमें ए क मंच अर्थात रंग स्थल अवश्य चाहिये। इसके अभाव में नाटक का सामूहिक प्रयोग सम्भव ही नहीं हो सकता। रंगमंच युग की माँग है अतः यह स्वतः समझा जाए कि तकनीकी दृष्टि से मंच विधा और मंच व्यवस्था भी परिवर्तन की अपेक्षा रखती है। परिणाम स्वरूप रंगमंच को युगानुरूप ढलना पड़ता है। वास्तव में नाटक की सृजनशीलता या कलागत रूप अपनी समग्रता में तभी प्रकट होता है। जब रचना को दर्शक समूह के समक्ष रंगमंच पर अभिनय करके दिखाया जा सके और रंगमंच में पूर्वरंग प्रस्तावना रंग सज्जा, रंग-निर्देश, अभिनय, रंगशाला आदि नाट्य प्रयोग के विभिन्न तत्त्वों का समावेश आवश्यक है। आचार्य भरत ने इसी मत का विवेचन किया है। अरस्तु ने 'त्रासदी' को गम्भीर जीवन का क्रिया व्यापायात्मक अनुकरण कहा है। यहां अभिनय को ही लक्ष्य करके क्रियात्मक अभिव्यक्ति की बात कही है। प्रसिद्ध नाट्य समीक्षक एशले जयूक्स की भी यही मान्यता है कि - नाटक और उसके दर्शक वृन्द के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध विद्यमान रहता है। नाटक केवल अभिनीत होकर ही अपनी प्राणवता को प्राप्त कर सकता है। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने नाटक और रंगमंच को सापेक्ष कला माना है। नाटक केवल संवादात्मक

शैली में ए क कथानक की रचना नहीं, उसे न संघर्षमूलक क्रिया व्यापार का उतार-चढ़ाव और दृश्य सौष्ठव की दृष्टि का विनियोग अपेक्षित है। "जो नाटक अभिनय नहीं, उसकी गणना नाटकों में नहीं काव्य तथा अन्य रूपों के साथ होती है। नेमिचन्द्र जी नाटक को रंगमंच के बिना नाटक की श्रेणी में नहीं रखते नाटक की अभिव्यंजना कौशल में जितना महत्व एक विषय से दूसरे विषयों पर तीव्र गति से संचालित होते हुए एवं नाट्यव्यापारो को गतिशीलता प्रदान करने वाले कसे एवं पैने और गतिशील कथोपकथनों तथा मुहावरे लोकोक्तियों से मिश्रित व्यंग्यात्मक विनोदपूर्ण उक्तियों का होता है। उतना ही महत्व नाटक रंग मंचीय सन्दर्भों के समुचित ग्रहण का भी होता है। भाषाई उत्पादनों और रंगमंच दोनों ही प्रकार के माध्यमों के बीच अविछिन्न सम्बन्ध स्थापित करके ही नाटककार अपनी रचना को कलात्मक रूप प्रदान करता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "रंगमंच पर अभिनीत होकर ही नाटक पूर्ण अभिव्यक्ति को प्राप्त कर सकता है। पुस्तकों में वह अटता नहीं है।"2 अतः रूप में कहा जा सकता है कि नाटक की सार्थकता एवं अर्थवत्ता उसके अभिनीत होकर सफल प्रस्तुतीकरण में है। नाट्य सृजन और मंथन दोनों का संधात्मक रूप ही नाटक को नाटकत्व प्रदान करता है। दोनों का ही रिश्ता गहरा व अटूट है

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि विद्वानों के विचारों से स्पष्ट हो जाता है। मानव जन्म से ही नाटक की भी उत्पत्ति मानी जा सकती है। लेकिन सभी विद्वान नाटक की उत्पत्ति के विषय में ए कमत नहीं है 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार नाटक का उदय ब्रह्मा द्वारा चारावेदों से पाठ, गान, अभिनय व रस लेकर पांचवे वेद के रूप में नाट्य वेद की रचना की गई है। परन्तु कुछ विद्वान नाटक का उदय कठपुतलियों के खेल से तथा कुछ मृत वीरों की आत्मा की शान्ति के लिए गाये जाने वाले गीतासे मानते हैं। हिन्दी साहित्य में अन्य विधाआकी अपेक्षा नाटक का विकास चरम पर है। नाटक का अपना विशिष्ट

शैलीगत स्वरूप है नाटक का सीधा संबंध किसी जाति समूह और देश से होता है नाटक का संपूर्ण कथ्य और परिवेश आज के जीवन से जुड़े हुए होते है और हिन्दी के आधुनिक नाटक इस कसौटी पर खरे उतरे है। नाटक जन साधारण का माध्यम है जो दूसरी विधाआकी अपेक्षा नाटक का दर्शकापर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे भी बड़ी बात की रंगमंच पर नाटक का अपना ही महत्व होता है क्योंकि इसमें पात्रासे सीधा संपर्क होता है हिन्दी प्रदेशाके अधिकाधिक नाट्य केन्द्रामपेशेवर रंगमंडल की स्थापना की दिशा तलाशनी होगी, जो विविध रूचियों के नाटक, निपुणता के साथ, नियमित रूप से प्रस्तुत कर सके। पूर्वकालिक और अंशकालिक रंगमंडलाका सहयोग भी प्रयास करके प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ

[1]. डॉ° एल° पी°, हिन्दी नाटकों¬ में¬ युवा मानसिकता, पृ° 15

[2]. पं° सीताराम चत ुर्वेदी, भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृ° 7

[3]. डॉ° नगेन्द्र (अनु)ः अरस्त का काव्यशास्त्र, पृ° 64

[4]. सेठ गोबिन्ददासः नाट्यकला मीमांसा, पृ° 17

[5]. डॉ° नगेन्द्र (अनु)ः अरस्त ु का काव्यशास्त्र, पृ° 64

[6]. दशरथ ओझा: हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास, पृ° 36

[7]. जयदेव तनेजा: नयी रंग चेतना और हि ंदी नाटककार, पृ° 31

[8]. जयदेव तनेजा - नयी रंग चेतना और हि ंदी नाटककार, पृ° 88

[9]. भ्रात शर्मा: हिन्दी नाटक इतिहास दृष्टि और समकालीन बोध, पृ° 70

[10]. पूर्णचंद शर्माः हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य पर ंपरा, पृ° 69

[11]. डॉ° विपिनगुप्त 'हिन्दी नाटक में ¬ेें समसामयिक परिवेश', पृ° 31

[12]. दशरथ ओझाः हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास, पृ° 2

[13]. डॉ° सुरेश गौतम, डॉ° वीणा गौतमः भाारतीय साहित्य कोश, खंड-4, पृ° 450

[14]. डॉ° लक्ष्मीनारायण लाल, आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ° 24

[15]. नेमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, अक्षरप्रकाश दिल्ली, सं° 1983 पृ° 21

[16]. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नटरंग अंक 12 वर्ष 3 अक्टूबर- 1963

द्वितीय अध्याय

हिन्दी नाटक परिवर्तन के आयो में विधा

हिन्दी नाटक में परिवर्तन या विकास के लक्षण स्वतंत्रता के बाद से प्रस्फुटित होने लगे। अपने आस-पास के जीवन को, बदलते परिवेश और जीवन मूल्यों को, सम सामयिक अनुभव को नाटक की सर्जनात्मकता के साथ प्रस्तुत करने और संप्रेषण करने की अच्छी शुरुआत हुई। पचासोत्तर नाटक कारों में सजगता उत्पन्न हो गई उससे अपनी जमीन और परंपराओं से जुड़ने की, जुड़कर कुछ नया, आधुनिक और नितांत आत्मीय कहने की आकुलता उत्पन्न हो गई। इन तमाम परिवर्तनों के तहत रंगमंच को पश्चिमी प्रयोगों वा प्रभावों के बोझिलपन से मुक्त कर जनमानस और भारतीय शास्त्रीय और लोक परंपराओं से संबद्ध होकर सहजता एवं उन्मुक्तता देने की प्रयत्न शुरू हो गये हैं।

साहित्य की हर विधा परिवर्तन की प्रक्रिया को अपनी सामर्थ के अनुसार ग्रहण करती है, और उस परिवर्तन की प्रतिक्रिया द्वारा अपनी भूमिका निभाती है। पचासोत्तर नाटक परिवर्तन गामी है। मनुष्य अपनी समय की सामाजिक, राजनीतिक, और धार्मिक प्रवृत्तियों से परिवर्तित होता है उसके साथ अपनी साहित्य को भी परिवर्तित करता रहता है। मनुष्य अपने सोच-सुविधा के अनुसार अपनी मान्यताएँ बदलता रहता साहित्य मानव की चेतना और विचारों का समाहार रूप है। इसीलिए उस में मनुष्य जीवन की वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति अनिवार्य रूप से होता है। साहित्य समाज के असली रूप को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्न करती है। साहित्य समाज व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग है। समाज में जो भी परिवर्तन का चिन्ह दीखता है तो उसको साहित्य ग्रहण करके एक दिशा प्रदान करती है। गतिशीलता समाज में ही नहीं साहित्य में भी दिखाई पड़ती है। उस साहित्य का सार्थक अध्ययन की आवश्यकता है।

हिन्दी नाटक जीवन के वैयक्तिक और सामाजिक संदर्भ से जुड़ाजुड़ा होने के कारण वास्तविक प्रक्रियाओं को व्यक्त करता है। नाटक का कथ्य कितना भी व्यक्ति परक हो परंतु वह एक समाज को साथ लेकर चलता है अर्थात एक से अधिक व्यक्तियों से सामूहिक प्रयास द्वारा ही दृश्यता को प्राप्त करता है। – हिन्दी नाटक कारों ने जीवन के व्यापक स्तर पर इसी प्रकार की अनेक घटनाओं को अपनी कृतियों का प्रतिपाध्य बनाया है जहाँ जीवन की इस द्वन्द्व मूलक स्थिति के बीच ही इस का विकास माना है। हिन्दी नाटक में यदि एक ओर वस्तुगत प्रतिपादन में नवीनता आई तो दूसरी ओर शैली एवं शिल्प के नवीन प्रयोग भी हुए। भावुकता पूर्ण वातावरण, कल्पनाजन्य चित्र एवं काव्यमय जीवन का परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करता हुआ पचासोत्तर नाटककार आधुनिक जीवन की बढ़ती हुई समस्याओं को अधिक जागरूकता से अभिव्यक्त करते हैं। भारतेन्दु काल से ही हिन्दी नाट्य रंग में प्रयोग मिलता हैं। उन प्रयोगों के सीमा बढ़करबढ़कर नाटक में अन्य विधाओं का सृजन किया गया कोई भी विधा अपने आप सृजित नहीं होती है। उसके सृजन के पीछे सामाजिक मांग और नाटककार से जुड़ाजुड़ा हुआ परिवेश का हाथ रहता है। नाटक प्रयोगों के लिए एक सशक्त माध्यम है क्योंकि उसमें भाव, विचार, रूप एवं दृश्य का समाहार मिलता है। – वस्तुतः रमणीयता का ऐसा सर्वेश विधान नाटक की अतिरिक्त अन्य किसी विधा में सहज नहीं, यह निर्विवाद है। वास्तव में आत्म प्रेरित भाव-राशि का जितना पूर्ण, जितना सचित्र एवं जितना सजीव प्रत्यक्षीकरण नाटक में हो सकता है, उतना किसी भी अन्य व्यंजनाओं में नहीं, क्योंकि जिस स्वरूप और प्रवेश से भावना और विचार का उद्वेलन हमारे आंतरिक जगत में होता है तथा जिस अध्याय के लिए एवं जिस स्वरूप में हमारी आत्म उनकी आकार देने के लिए व्याकुल हो उठती है, उन सब का परिपूर्ण प्रतिफलन और अवतरण नाटक के अतिरिक्त किसी अन्य अभिव्यक्ति में संभव नहीं।

समाज के आर्थिक, नैतिक राजनीतिक दावे में परिवर्तन के साथ-साथ मुल्य में भी परिवर्तन होता रहता है। नये युग के आगमन के साथ-साथ नयी मान्यताएँ और नये मूल्य स्थापित होने लगे। पचास के बाद के युगानुकूल परिवेश से उपजा हुआ नाटक में अपने साहित्यिक मान्यताओं में अनेक मौलिक परिवर्तन

मिलते हैं। पचासोत्तर नाटक अपने कहे हुए विषय को सांस्कृतिक दृष्टि से अभिव्यक्त करता है। जनता की आकांक्षाओं के अनुसार हिन्दी नाटक अनेक अन्य विधाओं के सहायता से अपने आपके सुशोभित करता है। प्रत्येक विधा नाटक को जन जीवन से जुड़ने की कार्य में ही प्रयत्न करते हैं।

जो भी हो, कोई काल अथवा तो विधा अपने पूर्ण विकसित रूप स्वरूप के साथ अनायास ही अवतरित नहीं होती। उसकी उद्गामी मूल पहले से किसी-किसी न रूप, अवस्था में निहित होता है। अपने प्रारंभ से वह सतत विकास करती हुई अपना रूप निखार लेती है और उसका विवेचना या निर्धारण अविकसित, अल्प विकसित या फिर अर्द्ध विकसित अवस्था में किया जाता है तो वह समग्र नहीं हो सकता।

कोई भी विधा अपनी विकास यात्रा के क्रम में ही नवीन रूप धारण करती रहती है। कहीं पर वह कथ्य या वस्तुगत परिवर्तन का शिकार होती है तो कहीं रूप गत नवीनता का। नाटक ने भी समय-समय पर सम सामयिक परिवेश और युगीन आग्रह के अनुरूप अपने रूप और कथ्य को बदला है। कहीं पर वह उप रूपकों के रूप में अवतरित हुआ है तो कहीं पर एकांकी और गीतिनाट्य के रूप में। कहीं पर यदि उसने नाट्य रूपांतर को अपनाया है तो कहीं नुक्कड़नुक्कड़ नाटक को। लेकिन, नाट्य के तात्विक वैशिष्ट्य को उसने हर जगह प्रवाहमान ही रखा है।

हिन्दी नाटक विधापरक परिवर्तन

आधुनिक हिन्दी नाटक भारतेन्दु एवं प्रसाद के प्रतीकात्मक दृष्टिकोण का स्पर्श पाकर एक नवीन रूप में प्रस्तुत हुआ। यह रूप संस्कृत, लोक नाट्य परंपराओं एवं पश्चिम की विविध नाट्य परंपराओं का समन्वित रूप था। वहीं रूप पचासोत्तर नाटकों में कथ्य और शिल्प दोनों ही आधार पर एक नए आयो में में ढलने लगा। इस संदर्भ में डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल का वक्तव्य सही लगता है कि - नाट्य लेखन के स्तर पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि विषयगत नवीनता, मानवीय संवेदना एवं अनुभूतिगत सत्यता है।

आधुनिक युग में व्यक्तित्व के संघटन की समस्या प्रमुख रूप से अधिकांश नाटकों का विषय रही है। "मादा कैक्टस" का "अरविंद" "अन्धा युग" का "अश्वत्थामा", राकेश" के अषाढ़ का एक दिन" का कालिदास", "आधे अधूरे" की सावित्री" आदि सभी पात्रों के समक्ष अपने व्यक्तित्व को संघटित करने एवं उसकी तलाश है। सभी पात्र अपने युग की स्थापनाओं के विरुद्ध एक व्यापक यथार्थ के परिवेश में अपने व्यक्तित्व को खोजते हैं। व्यक्तित्व की यहीं खोज और पहचान आधुनिकता एवं आधुनिक नाटक का प्रमुख एवं मूल प्रश्न है।

आजादी मिलने के बाद अर्द्ध शताब्दी के हिन्दी नाट्य लेखन पर गैर करें तो वह अपना समय और समाज का सच्चा एवं साफ दर्पण जैसा दिखता है। पचासोत्तर नाटककार ने बंधी बंधाये फार्मूलाबद्ध दृष्टिकोण के, रूढयिों और पुराने संस्कारों के विरुद्ध एक लड़ाई लड़ी है। उन्होंने नाटक के कलेवर को ही नहीं प्रक्रिया को भी बदला, रंगमंच को गति और जीवन दिया और नाटक के प्रति मौलिक समीक्षा दृष्टि की आवाज उठायी।

साहित्य सृजन के लिए कोई सीमा नहीं होती है। एक ही क्रम में जाकर पनपनेवाली कोई साहित्य प्रक्रिया ज्यादा दिन तक प्रतिष्ठित नहीं होती है। जनेच्छा को प्रतिबिंबित करने के लिए अपने प्रारूप को बदलना आवश्यक है। साधारण रूप से कविता, उपन्यास, कहानी आदि अपेक्षाकृत लोक प्रिय हैं, उनकी मांग कहीं अधिक है, उनके माध्यम से पाठक तक सीधे पहुँचना अधिक सहज और सुलभ है। इसलिए पचासोत्तर नाटककार उपन्यास और कहानियों के तत्वों को अपने नाटकों के प्रारूपों में लाने का प्रयत्न करते हैं। नाटक साहित्य की कठिन विधा होते हुए अपने आप को प्रयोगों के लिए समायत करने में सक्षम होता है। पचासोत्तर नाट्य जगत में अनेक प्रयोग मिलते हैं। कथ्य परक, शिल्प परक, शैली परक प्रयोगों के साथ-साथ विधा परक प्रयोग भी मिलते हैं। हिन्दी की सृजनात्मक साहित्यिक विधाओं में एक होने के कारण नाटक अपने कथ्य गत ढांचा को बदलने के लिए युगानुकूल रंगमंचोपयोगी नाटक लिख सके।

नाटक के प्रयोगों में प्रायः किसी युग के जीवन में अभिव्यक्त सामाजिक संबंधों और उससे प्रकट होनेवाले मूल्यों और मान्यताओं का दर्शन होता है। विशुद्ध-से-विशुद्ध और व्यक्तिगत रूप में भी नाटक पारस्परिक संबंधों और अनेक मूल्यों पर किसी-न किसी प्रकार की टिप्पणी हुए बिना नहीं रह सकता। नाटक का उद्देश्य सदा विचारधारा परक होना चाहिए इस ढकेलिए पचासोत्तर नाटककार अपने कहे हुए बात को कहने के लिए प्रयत्न करते हैं। "इस मामले में हिन्दी नाटक, पश्चिमी नाट्य रूपों शिल्प पद्धतियों को लेकर तो प्रयोग कर ही रहा है, साथ ही उसमें पूरी तरह भारतीय नाट्य-रूपों की खोज में परंपरा के नये और आधुनिक सर्जनात्मक अन्वेषण की कोशिश भी दिखाई देती है।

नाट्य साहित्य का बड़ाबड़ा भारी भाग धार्मिक, राज नैतिक, सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखा गया है। पचासोत्तर नाटक सामूहिक आंदोलन का अंग और साधना बन गया है। गीति नाट्य, लोक नाट्य, नाट्य रूपांतर, नुक्कड़ नाटक, अनुवाद नाटक आदि विधाएँ हिन्दी नाट्य जगत में पचास के बाद प्रवेश करते है। स्वतंत्र विधाओं के रूप में अभिव्यक्त होकर अपने-अपने छाप पचासोत्तर नाटक पर छोड़ते हैं। देश की जागरूक रंगकर्मी ने प्रयोग वादी पद्धतियों को दृष्टि में रखकर अनेक बहु भाषीय नाटकों को हिन्दी में अनुवाद किए हैं। अनेक कहानियों और उपन्यासों को रूपांतरित करते हैं। इस कारण से हिन्दी नाटक का क्षेत्र और भी विस्तार बन गया है।

जो भी नाट्य विधाएं पचासोत्तर नाटकों में देखा जाता है वे सब भारतेन्दु काल में भी प्राप्त होते हैं। लेकिन नयी दृष्टि से नये रूप से रंगमंच को परिप्रेक्ष्य में रख कर पचास के बाद सामने आते हैं पुराने आयामों को नवीन रूप में प्रस्तुत करना पचासोत्तर नाटक कारों का एक प्रधान लक्षण रहा है। उसी लक्षण के अनुसार हिन्दी रंगकर्मी गीति नाट्य, लोक नाट्य तिरता प्रक्रियाओं को एक विधा परक स्थित प्राप्त करने में सक्रिय होते हैं।

2.1 गीति नाट्य

साहित्य के अंतर्गत और विशेष रूप से नाट्य विधा पद्य और काव्य प्रधान रहीं है। शास्त्रीय परंपरा के नाटकों में से अधिकतर नाटक अपने में काव्यात्मकता, पद्यात्मकता को समेटे हुए हैं। हिन्दी में यदि इस दृष्टि से भारतेन्तु पूर्व के नाटकों पर दृष्टिपात किया जाये तो मुख्य रूप से अनूदित नाटकों पर काव्य का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है।

हिन्दीतर भाषाओं में लिखे गये नाटक तो पद्यात्मकता के साथ-साथ नाट्य संदर्भ से भी विभूषित हैं। रवींद्रनाथ ठाकुर, गिरीश चन्द्र की नाट्य रचनाएँ इस क्षेत्र में अधिक चर्चित हैं। पद्य काव्यों में ठाकुर के गीतांजली" की प्रसिद्धि हमें पता है। पाश्चात्य साहित्य के नाटक जगत में भी इस विधा को शुरू से ही अधिकाधिक महत्व मिला है। चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के दौरान लिखे गये वड़र्सवर्थ, कीट्स, शैली, कालरिज आदि के पद्य नाट्य इसकी पुष्टि करते हैं।

बीसवीं शताब्दी के आते-आते नाटक और रंगमंच को लेकर विचार और दृष्टि में परिवर्तन हुआ। घोर यथार्थ वादी नाटकों के विरुद्ध, महायुद्ध की कटुताओं से उत्पन्न अनास्था और अरुचि से बचने के लिए ऐसे नाटकों की आवश्यकता हुई जो सरसता, आस्था एवं सोच प्रधान कर सकें और इस परिस्थिति ने शायद गीति नाट्य का जन्म दिया है। गीति नाट्य परंपरा पर विस्तार से विचार करने से पूर्व उसके स्वरूप तत्व और वैशिष्ट्य को समझना अधिक उपयुक्त होगा।

गीति नाट्य शब्द से सामान्य तौर पर अभिप्राय लगाया जाता है कि कोई पद्यबद्ध नाट्य रचना गीतिनाट्य हो सकती है, यह गलत है। आधुनिक हिन्दी नाटक में यह नवीन और पुनरोद्भुत नाट्यरूप अपने में गीति-तत्व के प्राधान्य के साथ भाव प्रमुख भी होता है। साधारण रूप से इस के अंतर्गत नाटक के कार्य व्यापार और घटनाओं का उतना महत्व नहीं जितना कि भावों का है। गिति एक सहज स्फुरित तत्व है इसलिए इस तत्व का समावेश जितना अनुभूति की तीव्रता के लिए हो सकता है, उतना काव्य सौन्दर्य के प्रदर्शन के लिए नहीं। काव्य सौन्दर्य के प्रदर्शन का ध्येय तो रचनाकार नाट्य तत्वों को आधार बनाये

बिना किसी भी काव्य रचना के माध्यम से सहज रूप में पूरा कर सकता है। गीति नाट्य में काव्य रचना को नाट्य तत्व की सीमा में रहकर ही अभिव्यक्त होना पड़ता है।

अंतः संघर्ष और भावना प्राधान्य को रूपान्वित करने के लिए गीति नाट्य रूप को काव्यात्मकता का आलंबन लेना पड़ता है। जिसमें लय, गति, छंद और आरोह-अवरोहों का समावेश होता है। इसलिए डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार - गीति नाट्य रूपक का ही एक भेद है जिसका प्राण तत्व है... भावना अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है.... कविता।" इस प्रकार गीति नाट्य रूपक का प्रमुख भेद होने के साथ-साथ नाट्य तत्वों से ओतप्रोत होता है।

गीति शब्द का संबंध कुछ विद्वान गीत शब्द से जोड़ते है, तो कुछ अन्य इस सलतपब (लिरिक) का पर्यायवाची मानते हैं। इसकी परिभाषा देते हुए हीगल ने लिखा है कि - गीति काव्य में किसी ऐसे व्यापक कार्य का चित्रण नहीं होता जिससे बाह्य संसार के विभिन्न रूपों एवं ऐश्वर्य का उद्घाटन हो, उसमें तो कवि की निजी आत्मा के किसी एक रूप विशेष के प्रतिबिंब का निर्देशन होता है।" इस परिभाषा में वैयक्तिकता और भावात्मकता के तत्वों पर बल दिया गया है।

अर्नेस्ट रिस के मतानुसार - गीति काव्य एक ऐसी संगीत में अभिव्यक्ति है, जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण आधिपत्य होता है, किन्तु जिसकी प्रभावशालिनी लय में सर्वत्र उन्मुक्त रहती है।" इस परिभाषा में वैयक्तिकता, भावात्मकता के साथ-साथ भावों को भी रेखांकित किया गया है। इस गीति नाट्य में मानव मन के मानसिक आवेगों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति होती है और स्थल कार्य-व्यापार का प्रायः अभाव होता है। कथा के तंतु विरल होते हैं और पात्र प्रतीक बन जाते हैं।

गीति नाटककार को काव्य को महज एक माध्यम के रूप में अपनाते हुए, उसे एक उपकरण मानते हुए रंग धर्म को किसी भी हालत में अपेक्षित रखना पड़ता है। डॉ. रघुवंश के मतानुसार ऐसे नाटकों में

नाटककार को प्रतीकों की योजना, रंगमंच की सादगी, वेश-भूषा की स्वाभाविकता, शब्दों की ध्वन्यात्मकता का बल मिल जाता है इन्हीं के सहयोग से पद्य-नाटक रंगमंच पर सफल हो सकता है।

गीति नाट्य में बाहरी क्रिया शीलता और संघर्ष के स्थान पर मानसिक भावों का एक- दूसरे के साथ संघर्ष दिखाया जाता है। गीत नाट्य का संपूर्ण कथानक गेय होता है, और उसका अभिनय संगीतमय होता है। गीतिनाट्य में कविता का प्रभाव अन्य प्रभावों से विशेष महत्वपूर्ण होता है। इस गीति नाट्य हिन्दी नाट्य साहित्य में नवीन विधा का ही एक रूप है और यदि देखा जाये तो उसका इतिहास अभी बहुत संक्षिप्त है। गीति नाट्य के सभी तत्वों को अपने में समेटते हुए उपजा धर्मवीर भारती कत अंधायुग" को हिन्दी का पहला गीति नाट्य कहना गलत नहीं होगा। इस विधा की महत्ता के बारे में डॉ. जयदेव तनेजा इस प्रकार लिखते हैं कि अन्धायुग के अतिरिक्त इस क्षेत्र में केवल दुस्यंत कुमार के एक कंठ विषपायी, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के सूखा सरोवर, अज्ञेय के उत्तर प्रियदर्शी, भरत भूषण अग्रवाल के अग्निलीक, प्रभा कुमार भट्टाचार्य के काठमहल तथा डॉ. विनय कुमार के एक प्रश्न मृत्यु का ही नाम लिया जा सकता है। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ये सभी रचनाएँ किसी न किसी रूप में अन्धा युग से प्रभावित हैं। परन्तु अलग-अलग अपनी तमाम विशेषताओं के बावजूद समग्रतः अन्धा युग की साहित्यिक रंग मंचीय ऊँचाइयों को छूने में असमर्थ रहीं है।"

"अन्धायुग" आधुनिक काल के एक सशक्त नाट्य है। समकालीन यक्ष प्रश्नों और कुछ शाश्वत समस्याओं से हमारा सीधा साक्षात्कार करने वाले डॉ. धर्मवीर भारती की इस नाट्य कृति का नाम "अन्धायुग" रखना समीचीन ही लगता है। - धृतराष्ट्र की जन्मजात और गांधारी द्वारा स्वयं ओढी गयी अंधता के अतिरिक्त अश्वत्थामा, युयुत्सु, संजय, कृतवर्मा, कृपाचार्य और प्रजा के प्रतीक प्रहरी तक सभी पात्र किसी न किसी कारणवश अंधे हैं और यह कारण व्यक्तिगत नहीं है। यह उस व्यापक

राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक नैतिक परिवेशगत अंधता का अनिवार्य परिणाम है, जिसे भारती समग्रतः अन्धी संस्कृति की संज्ञा देते हैं।"

आधुनिक नई कविता में जितना काव्य अपेक्षित होता है उतना "अन्धायुग" में विद्यमान है और जहाँ तक काव्य के नाटकीय उपयोग की बात है, उसमें भी भारती नितांत असफल नहीं हुए हैं। इस के अधिकांश पात्र द्विधाग्रस्त हैं। गांधारी पुत्र प्रेम और मोहान्धता के कारण अतिक होकर कृष्ण को अपना सबसे बड़ाबड़ा शतृ समझकर पशुवत् मरने का शाप देती है और कृष्ण उसे पुत्रवत् सहज विनम्रता से स्वीकार कर लेते है। इसी चरम बिंदु पर पाशाणी गांधारी से करुणा का झरना फूट पड़ता है रोई नहीं मैं अपने सौ पुत्रों के लिए लेकिन कृष्ण तुम पर मेरी ममता अगाध है। कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार तो क्या मुझे दुख होता।

अन्धायुग के संदर्भ में यह बात कही जाती है कि उस पर अस्तित्ववादी चिंतन की छाप है, वहीं उसके रूप विधान- मुक्त छन्द, ग्रीक कोरस, लय परिवर्तन और अंतराल में वृत्त गन्धी गद्य का प्रयोग आदि भी इलियट से गृहीत बताया जाता है। गीति नाट्य का मुख्य लक्षणों में से मुक्त छन्द एक है - भारती ने मुक्त छन्द और नाटक में संवादों को बोलने की लय पद्धति, शब्दों के बीच के विराम आदि का लाभ उठाकर शब्द क्रम को अपेक्षित और भावात्मक महत्व के अनुसार निर्धारित किया। वस्तुतः संवाद में पंक्ति का छोटा या बड़ा होना, उसका संकोच और विस्तार मुक्त छन्द को अपेक्षित नाटकीयता प्रदान करता है। जैसे -

युयुत्सा: इसलिए देखकर मुझे आता बंद कर लिए पट नागरिकों ने सब ने कहा वह है मायावी शिशु भक्षी दैत्याकार गद्धवत 13 "अन्धायुग" में गद्य और पद्य का समाहार है। इसमें पद्यात्मक गद्य और गद्यात्मक पद्य भी मिलते हैं। जहां तक गीति नाट्य तत्व को विस्तार रूप से उपयोग किया गया है। नीचे दिये गये

वक्तव्य से हमें यह विषय स्पष्ट मालूम पड़ती है - मर्यामत तोड़ो, तोड़ी हुई मर्यादा कुचले हुए अजगर-सी गुंजलिका में कौरव वंश को लपेटकर सूखी लकड़ी-सा तोड़ डालेगी।

सूखा सरोवर" डॉ, लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा रचित गीति नाट्य है। इस में गीति से ज्यादा कविता का तत्व शामिल है। अंतर्गत अनुभूति को व्यक्त करने में नाटककार सक्षम होते हैं। नाटक का प्रारंभ सरोवर के सूखने की घटना से होता है और बड़े राजा के राज्य छोड़ने का प्रसंग एवं राजकुमारी के प्रेम और बलिदान का प्रसंग स्मृति दृश्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस गीति नाट्य की कथा किसी लोक गाथा से जुड़ाजुड़ा हुआ है।

इस गीति नाट्य में प्रयुक्त कथा कई स्तरों पर प्रतीकार्थों की व्यंजनाएँ प्रस्तुत करता है, सूखा सरोवर, पागल प्रेम, राजा, सिंहासन, सन्यासी, सरोवर का देवता, गूंगी प्रजा, सभी किसी न किसी प्रतीकार्थ को व्यंजित करते है। सरोवर सूख जाने के लिए अनेक कारण बताते हैं। लेकिन असली कारण तो लोगों ने सत्य को छोड़ दिया इस लिए सरोवर सूख गया। इस नाटक के एक पात्र वृद्ध लोगों पर ही अभियोग डालता है कि सरोवर सूखने का बाध्य जनता ही है। यथा -

नहीं तो क्या... मृत्यु यहीं न ! कि इससे भी बढ़कर है कुछ तुम्हारे स्वत्व में ? बंदी कराया था तुमने सत्य कहने पर, उस बार सारी जवानी कारागार में पिस गई अब शेष है बुढ़ापा ले लो इसे भी। पर कहूँगा- और भी शक्ति से कहूँगा। तुम्ही लोगों ने सुखाया है सरोवर कोष् गीति नाट्य के लक्षणों में जो नाटकीयता की भावना है उस भावना को प्रयुक्त करने में डॉ. लक्ष्मीनारायणा लाल सफल हुए है। दर्शक को "अपने-अपने सरोवर" की कल्पना इस गीति नाट्य में संभव है। यथा -

सरोवर के रस भोगी ! विवशकर डाला सरोवर को ! मैं ने कहा था उस दिन, ऊँचे स्तर में कहा था : पानी का घट है सरोवर छन में फूट सकता, छन में सूख सकता। मैंने कहा था। सरोवर पानी ही पानी नहीं प्यास भी है अपनी ही नहीं सारी नगरी की।

सूखा सरोवर" में भाषिक और संवादीय संरचना की विशेषताएं तो दिखाई देती हैं, किन्तु उसमें अपेक्षित रंगमंच की अनुभूति की तीव्रता नहीं है, जो सर्जनात्मक वैशिष्ट्य का आधार बनती है। "अन्धायुग" और सूखा सरोवर" के अलावा संशय की एक रात", "एक कंठ विषमायी", "अग्निलीक" जैसे गीति नाट्य है लेकिन अन्धायुग के तत्वों जैसे तत्वों की कमी इन नाट्यों में हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

संक्षेप में कहना है तो गीति नाट्य के क्षेत्र में हमारे यहाँ एक शुरुआत ही हो पायी है। केवल अन्धायुग ही इस विधा को प्रमुखता दी है। इस विधा की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि भाषा मात्र साहित्यिक न रह कर जीवन अनुभव और मंच से अधिक निकट से आ जड़ी है। अन्धा युग गीति काव्य तो आज भी प्रेरित करने वाली है।

गीति नाट्य तत्व में बाहरी क्रिया शीलता और संघर्ष के बजाय मानसिक भावों का संघर्ष दिखाया जाता है। अन्धा युग और सुखा सरोवर दोनों नाटकों में मानसिक भावों का संघर्ष भी दिखाई देता है। प्रतीकों की योजना भी दोनों नाटकों में ज्यादा मिलता है। इन्हीं के सहयोग से गीति नाट्य रंगमंच पर सफल हो सकता है। इस प्रकार गीतिनाट्य हिन्दी नाट्य साहित्य नवीन विधा का ही एक रूप है। भले ही शास्त्रीय परंपरा और संस्कृत के नाटकों में इस नाट्य रूप के बीज विद्यामान हो, लेकिन उसकी अंतर वस्तु, पद्यात्मकता, शैली और शिल्प को देखते हुए उसे आधुनिक नाट्य का ही एक रूप माना जाना चाहिए।

2.2 लोक नाट्य

संस्कृत नाट्य परंपरा को ह्रासोनमुख होने के संकेत नवी-दसवी सदी से मिलने लगते हैं। देश पर होने वाले विदेशी आक्रमणों वह उनसे उत्पन्न अशांत परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप नाट्य कला निरंतर ह्रासोन्मुक होती चली गयी। यद्यपि संस्कृत में इस युग के नाट्य लेखन तो जारी रहा लेकिन उनमें कला का अभाव बढ़ता ही गया। मंगल काल में नाटक रचना प्रायः बंद हो गई, उनका अभिनय तो पहले ही बंद हो चका था, किन्तु लोक जीवन में लोक नाटकों के रूप में नाट्य परंपरा जीवित रहीं। संस्कृत नाटकों की ह्रासोन्मुख परंपरा में पड़ने वाली खाई को लोकनाट्य ने ही पूरा किया। इस लोक नाट्य का प्रारंभ शायद मानव अस्तित्व व मानव सभ्यता के समान्तर ही लोक धर्मी प्रवृत्ति ने जन्म लिया होगा। लोक रंजकता इस का मूल लक्षण है। प्रकृति के अनेक जंतु, वृक्ष जितना मुक्त है उतना ही मुक्त है यह लोक नाट्य। "अतः लोक नाट्य मानव-सभ्यता और संस्कारों के समांतर ही प्रवाहमान है। वह पुरातन काल से ही आज तक युगों के साथ थपेडों को झेलते हुए अब भी अपने अस्तित्व के साथ लोक जीवन में सतत प्रवाहमान है। वह सदा से ही जन-साधारण के जीवन के साथ घुलमिला रहा है तथा समय के साथ साथ व बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालता रहा है। साधारणतः हम यह मान सकते हैं कि बंगला में जात्रा, बिहार में बिदेशिया, अवधी, पूर्व हिन्दी, ब्रज तथा खडी बोली में रास, स्वांग, नौटंकी, भांड आदि की जन्म लोक नाटक से ही स्वीकार करते है। लोक नाटक की अपनी विशेषता है कि वह अपनी प्रस्तुति हेतु किसी विशिष्ट रंगमंच की अपेक्षा नहीं रखता। आज भले ही लोक रंगमंच कुछ हद तक व्यावसायी हो गया हो लेकिन उसकी प्रारंभिक अवस्था ऐसी नहीं रही होगी।

लोक नाट्य अपने शुरुआत में लोक परंपरा, त्योहार और अनुष्ठानों से जुड़ा जुड़ा हुआ है। जबसे उसने कुछ अंशों में व्यावसायिकता को अपनाया है तभी से उसका मंच भी प्रभावित हुआ है। संक्षेप में लोक नाट्य परंपरा का आध्योपरांत हमारे बीच जीवित होना इस बात की पृष्ठी करता है कि उसकी परंपरा अबाध रहीं है और वह लोक मानस के संस्कारों से पूर्णतः अनुप्राणित है। वेदकालीन नाटक से लेकर आज के नाटक के बीच के अंतराल को पूरा करने में लोक नाट्य ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

संस्कृत नाट्य प्रवृत्तियों से अनुबंधित इन नाटकों के संदर्भ में डॉ, वीरेन्द्र कुमार शुक्ल का कथन उचित है कि - पूर्व भारतेन्दु काल से भारतेन्दु युग तक नाटक कारों की प्रवृत्ति संस्कृत नाट्य साहित्य तथा पौराणिक आख्यायनों को भाषांतर रूप दे कर हिन्दी नाट्य, साहित्य की परंपरा का आविर्भाव करना रहा है। ...नाटक कारों की मूल प्रवृत्ति अनुवादों की ओर थी। ....समकालीन सामयिक वातावरण के प्रभाव के इस युग की मूल मनोवृत्ति प्रतीत होती है। इस युग के नाटक कारों ने प्रेम- व्यापार के साथ वीर रस की अभिव्यक्ति से कथानकों को अनुप्राणित किया है। हिन्दी नाटकों में भी उसका अनुसरण किया गया था।

पचासोत्तर नाटक कारों ने लोक नाटक शैली को अपनाया और इसलिए समकालीन हिन्दी नाटक के कथ्य और शिल्प पर इनका प्रभाव पड़ा था। कथ्य पर यह प्रभाव शिल्प की अपेक्षा कम पड़ा था। "उसके अंतर्गत सत्य, करुणा, न्याय, उत्सर्ग, त्याग तथा जाति और संप्रदाय से परे एक व्यापक मानवतावाद के मूल्य आते हैं, अन्याय और असत्य के विरुद्ध सत्य और न्याय के लिए संघर्ष के मूल्य आते हैं और इन मूल्यों को ही समकालीन हिन्दी नाटकों में नये संदर्भों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

पचासोत्तर नाटक कारों द्वारा हिन्दी नाट्य लेखन की दिशा बदलने में और हिन्दी रंगमंच को बदले हुए रूप में अधिक विकसित कल्पनाशील, व्यापक और उन्मुक्त बनाने में, उसे नयापन और लोक जीवन से संबद्ध करने के लिए प्रयत्न किये गये हैं। मणि मधुकर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुद्रा राक्षस, हबीब तन्वीर इस लोक नाट्य शैली को अपनाकर पचासोत्तर नाटकों को एक नया दिशा देने का प्रयत्न करते "नया थियेटर" के साथ दिल्ली तथा महा नगरीय दर्शकों को लोक नाट्य शैली से प्रभावित करके हबीब तन्वीर ने ग्रामीण कलाकारों की अभिनय से हिन्दी रंगमंच को एक नया दिशा दिये हैं। उनके नाटक "आगरा बाजार", गाँव का नाम ससुराल", "चरण दास चोर", "इन्द्र सभा" में लोक नाट्य शैली का प्रभाव मिलता है। "आगरा बाजार" में दो फकीरों के माध्यम से नाटक के विभिन्न घटनाचक्रों को वर्णन

कराते हैं, जो दर्शकों के बीच से प्रवेश करते हैं और बाहर जाते हैं। वे नजीर की कविताओं की पंक्तियों गाते हैं, जिनमें मंच की घटनाओं पर प्रतिक्रिया होती है। तन्वीर का यह तरीका लोक रंगमंच के रंग और नट-नटी से मिलता जुलता है।

हबीब तन्वीर के नाटक ग्रामीण और शहरी दर्शकों को समन्वय करके प्रशंसनीय प्रभाव पैदा करते हैं। हबीब तन्वीर के नाटकों के लोक नाट्य शैली का प्रभाव पर दृष्टि लगाते हुए कैथरीन हुसैन इस प्रकार लिखते है कि - रंगा या वितरण कार, स्थानीय लोगों का प्रतिनिधि समूह गीत, पारंपरिक काव्यात्मक छन्द गीत और नृत्य खुले मंच पर प्रस्तुति, व्यंग्य और उपदेश प्रधानता- ये इन सभी नाटकों के समान तत्व है। ये सभी विशेषताएं लोक रंगमंच की परंपरा में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है, विशेष रूप से नौटंकी में। राजस्थान में सुरंध्यानी ख्याल" नामक लोक नाट्य शैली से प्रेरित होकर मणि मधुकर श्री गंधर्व" नाटक लिखते है। श्री गंधर्व" देश के सामाजिक, राजनैतिक विशेष कर राजनैतिक संदर्भों को लेकर चलाने वाला, विसंगतियों को और आज की व्यवस्था में आम आदमी की जिन्दगी को चुभते व्यंग्य और हास्य के साथ प्रस्तुत करता है। दो अंकों की इस नाटक में मुख्य स्थल जेल का एक हिस्सा जो स्वयं व्यवस्था रूपी कैदखाने का प्रतीकात्मक संकेत बन जाता है। सामान्य की दिशाहीनता का परिचय नाटककार इस प्रकार करते हैं कि हम क्या चाहते है? कहाँ जाना चाहते है? दायें या बायें? रास्ता किस ओर है? भविष्य कैसा हो?

दूसरी ओर मौत तुम्हारी आँखों में है और जीवन तुम्हारी धमनियों में गरीबी हट गयी कुर्सी पट गयी रात कट गयी।

इस प्रकार इस नाटक में लोक नाट्य तत्वों की सहायता से जनता की जिंदगी से जुड़े सारे संदर्भ और व्यवस्था का खोखलापन उजागर करते हैं। यह पद्धति हिन्दी नाट्य जग को परिवर्तित करने वाले तत्वों में से एक है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा लिखित "एक सत्य हरिश्चंद्र" नाटक लोक नाट्य में प्रचलित

पात्र के मिथकीय चरित्र का समकालीन संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। भारत के ग्राम समाज में आज भी सामंती मूल्यों का दबदबा है इस पर दृष्टि लगाते हुए डॉ. लाल ग्राम में चले परिवर्तन का चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस नाटक में हरिश्चंद्र (लौका) शोषित जनता का प्रतिनिधित्व करता है जिसको जीवन भर नरक की आग में जलकर" अपनी परीक्षा देना है। इसकी स्थिति असली हरिश्चंद्र से भी दयनीय है। सत्य हरिश्चंद्र के लिए तो इन्द्र एक ही है लेकिन यहाँ इन्द्र असंख्य हैं - पुलिस अफसर, नेता, पूंजीपति, दलाल, गुंडा सब के सब इन्द्र है। अगर चौन से जीवन है तो उपयुक्त सबको संतुष्ट करना है। इस नाटक में डॉ. लाल द्वारा लोक नाट्य शैली से प्रतीकात्मक रूपों की सहायता से समकालीनता का प्रस्तुतीकरण मिलता है। जैसे -

हरिश्चन्द्र बिके हाथ सतयुग की धर्म हाट में त्रेता में ही बिके देवता लंक हाट में भीष्म बिके आखिर द्वापर के राजपाट में सभी बिकाऊ हैं कलयुग में कुछ भी ले लो हरिश्चंद्र बोलो तुम किन दामों में यहाँ बिकोगे।"

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना रचित "बकरी" नाटक संपूर्ण लोक नाट्य शैली से ओत प्रोत नाटक है। "बकरी" को अपने रूप बंध में नया सार्थक और समकालीन परिस्थिति का नाटक कहना चाहिए। इस नाटक की सार्थकता, मूल्यवत्ता सारे ऐतिहासिक क्रम में, आज के संदर्भ में नई शैली के प्रयोग में है। समकालीन सत्य को पारंपरिक नाट्य रूपों के जरिये प्रस्तुत करने में और एक सही अनिवार्य दिशा के अन्वेशन और उसकी प्रतिष्ठा में सर्वेश्वर का विशेष स्थान है। इस नाट्य की विशेषताओं पर दृष्टि लगाते हुए गिरीश रस्तोगी इस प्रकार लिखते है कि — "बकरी बदलते हुए तेवर का सीधा-सादा प्रभावशाली नाटक है जिस में समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक व्यंग्य का तीखापन भी है और सारे प्रपंच, दबाव को निरंतर झेलती हुई आम जनता का असंतोष विद्रोह, खींच भरी झुंझलाहट और एक निर्णय भी है। आम आदमी के चारों तरफ छाई क्रूर व्यवस्था के जाल, अन्याय के प्रति साहसपूर्ण प्रहार से सहसा दर्शक जुड़ जाता है क्योंकि यह उसका "भोगा हुआ सत्य" है।

लोक भाषा और वह भी ग्रामीणों के मुंह से उनकी बोली का, उनके लहजे, लय का प्रयोग करना, उनकी बोली में उनकी पीड़ा को व्यक्त करना सार्थक लगता है। नाटक के शुरू में ही नाटककार अपने कथ्य गत परिवर्तन को हमें स्पष्ट कराते हैं। यथा –

"नट विद्रोही है। उसे मंगला चरण पर यकीन नहीं। सारी मंडली मंगला चरण गाना शुरू करती है। नट चुप रहता है। नटी के आँखें तरेरने पर वह गाता है पर उसे राजनीतिक संदर्भ के जोड़ा जाता हैं।

नटी (सववेत) सदा भवानी दाहिने सम्मुख रहें गणेश पांच देव रक्षा करें, ब्रह्म, विष्णु महेश। नट पांच देव सम पांच दल, लगी ढोंग की रेस जिनके कारण हो गया देश आज परदेश।"

लोक नाट्य परंपरा में कहे हुए बात को सीधे कहना एक लक्षण है। "बकरी" नाटक में लोक नाट्य शैली से गीतों द्वारा नाटक की कथा गमन को प्रभावित करने वाली प्रवृत्ति को लिया गया है। सत्तर के आस पास के राजनीतिक दलों की मानसिकता को सीधे साक्षात्कार इस नाटक में करते हैं। "झंडा ऊँचा रहे हमारा" गीत को व्यंग्य रूप में नाटककार इस प्रकार लिखते हैं — "झंडा ऊँचा रहे हमारा। सबसे प्यारा सबसे न्यारा। झंडा ऊँचा रहे हमारा"।

सुख सुविधा बर सानेवाला शक्ति सुधा बरसाने वाला प्रभुता सत्ता का रखवारा झंडा ऊँचा रहे हमारा। इस झंडे को लेकर निर्दय हो स्वतंत्र हम विचरें निर्भय बोलो शक्ति प्रदाता का जय। दान दुखी का ताड़न हारा झंडा ऊँचा रहे हमारा।

नाटक का अंतिम गीत नाटक का संदेश गीत है, जिससे समकालीन संदर्भ बहुत स्पष्टता के साथ उभरे हैं दिन में दो रोटी के हो जब देश में लाले पड़े हो सभी खामोश सबकी जुबां पर ताल पड़े, ...बहुत हो चुका अब हमारी है बारी बदल के रहेंगे ये दुनिया तुम्हारी।

हबीब तन्वीर द्वारा रचा और नाचा लोक नाट्य शैली में रचित "चरण दास चोर" भी एक परिवर्तनगामी नाटक है। अपने गुरु को दिया हुआ एक वचन की रक्षा के लिए सत्यवीर अपने प्राण कबूल करता है लेकिन वचन की नहीं। "चरण दास चोर" में लोक नाट्य के मूलभूत तत्व हास्य और करुणा के साथ सत्य निष्ठा का कथ्य भी उभरता है। संगीत नृत्य युक्त नाचा शैली के माध्यम से प्रस्तुत इस नाटक ने भारतीय लोक रंग परंपरा को समृद्ध किया है। सत्य कहने पर किस तरह के कष्टों को झेलना पड़ता है इस नाटक में चरण दास के चरित्र को देखने से हमें पता चलता है। अंत में रानी चरण दास की हत्या करने के बाद पंथी गायक गाते हैं –

एक चोर ने रंग जमाया सच बोलके। संसार में नाम कमाया भाग्य शाली अभागा कहलाया।

मुद्राराक्षस द्वारा लिखित "आला अफसर" की प्रेरणा रूसी नाटक "इन्सपेक्टर जनरल" से मिली है। लोक तांत्रिक व्यवस्था में व्याप्त कथा अनेक स्तर पर स्थिति भ्रष्टाचार को इस नाटक में उद्घाटित किया गया है। एक विदेशी नाटक को भारतीय जनमानस चाने के लिए मुद्राराक्षस इस नाटक में लोक नाट्य परंपरा की सहायता लिया होगा। इस नाटक में आज के लोक तांत्रिक नेता अधिकारी तथा कानून से मिल जुलकर सामान्य लोगों के प्राणों को चौन न रहने की कथा है। इस नाटक के कथ्य समकालीनता प्रदान करती है –

साफ करो साफ करों झुग्गियाँ साफ करो।। देखो वो इस सरफ मैली सी बुढयिा और दुर्बल से बच्चे लिए अंधा एक बैठा है उसको कहीं कस्बे से बाहर खदेड़ कर साफ करो साफ करो झुग्गियाँ साफ करो।

नौटंकी शैली में लिखा गया इस नाटक में दोहा, चौबोला, बहरतवील का प्रयोग मिलता है। नाटक को एक अलग रंग देने में यह नौटंकी तत्व सफल हुए हैं। इस नौटंकी में मात्रिक और वर्णिक दोनों ही छन्द इस्तेमाल करते हैं। इस नौटंकी की प्रशंसा करते हुए स्वयं मुद्राराक्षस इस प्रकार लिखते है कि कोई भी

कथानक हो, नौटंकी की प्रस्तुति में वह समसामयिक देश काल के बोध को प्रतिबिंबित करता है। इसके लिए सिर्फ पात्रों द्वारा टिप्पणियाँ ही नहीं होती, बल्कि मूल चरित्रों के स्वभाव और आचरण में समसामयिकता की एक तस्वीर जरूर होती है। उसका देवता या राजा भी आज के आम आदमी जैसा होता है और उसकी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं में हम आस-पास की और अपनी तस्वीर देख सकते है। देवता और महाराज भी नहा-धोकर, नेम-धरम से खाते हैं और रानी -महारानी भी रसोई तैयार करती हैं।

सर्वेय्या, लावनी या कव्वाली और ठुमरी- दादरा के गीतों के छन्द भी इस नाटक में शामिल हैं। नौटंकी के विशेष छन्द चौबोला और दौड़ भी इस नाटक में मिलते हैं। इस तरह के लोक नाट्य छन्द का उपयोग करके मुद्राराक्षस हिन्दी नाटक के दिशा को परिवर्तित करने का प्रयत्न करते हैं। अपने माहौल के समस्या को लेकर उसे लोक नाट्य तत्वों से मिला जुला कर पेश करना निश्चय ही पचासोत्तर परिवर्तित नाट्य शैली का मिसाल कह सकते हैं। इस नाटक में इस्तेमाल किया गया एक छन्द चौबोला के तुक और भाषा संबंधी विशिष्टता नीचे दिये गये उदाहरण में द्रष्टव्य है -

आ पहुंची थी थोप या वहाँ हर एक अफसर घबराया था। सबके दामन दाग भरे हर दांत को लहु लुभाया था।। किया किसी ने गबन, बेचकर दफतर ही को खाया था। घूस किसी ने लिया और झूठा दस्तखत बनवाया था।

इस लोक नाट्य तत्वों को लेकर ही 1980 के आस पास नुक्कड़ नाटक बाहर अता है। लोक नाट्य से लिया गया सामूहिक गान, दर्शक के बीच से अभिनेता मंच पर आना, जन समुदाय के बीच नाटक खेलना आदि लक्षण नुक्कड़ नाटक को लोक नाट्य शैली के करीब पहुँचाती है। इस लिए नुक्कड़ नाटक को लोक नाटक से जोड़ते हैं।

खुला मंच, पारंपरिक नाट्य तत्व, संगीत, गायक मंडली, नामहीन पत्र, बीच बीच में तुकबंदी प्रधान लयात्मक संवादों का प्रयोग, कथा गायन आदि लक्षण लोक नाट्य से ही हिन्दी नाटकों - गई है। चार-पांच पात्र बदल-बदल कर कई-कई भूमिकाएँ करना, भूमिकाएँ बदलने पर सामान्य परिवर्तन से अपना परिचय स्वयं दर्शक को देना सभी लोक नाट्यों की विशेषता है। संवादों का आद्यंत तुकबंदी से युक्त और लयबद्ध होना, भाषण शैली आदि लक्षण पचासोत्तर नाटकों को उपलब्धि के रूप में लोक नाटक से मिला है। नट-नटी के वार्तालाप भी लोक नाटकों से मिला हुआ और एक सशक्त लक्षण है। पचासों अनेक नाटकों व्यंग्य संबंधी अनेक दृश्य इस नट-नटी के द्वारा ही चलते रहते हैं और ये प्रसंग नाटक के मूल कथानक से कभी-कभी एक दम स्वतंत्र लगने लगते है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हिन्दी प्रदेश के लोक नाट्यों को, मणि मधुकर राजस्थानी लोक नाट्य रूपों से हबीब तन्वीर छत्तीसगढ़ नाट्य रूपों को लेकर अपने अपने नाटक लिखे हैं। आंतरिक रूप से सभी लोक नाट्य समान रचना तत्वों और सौन्दर्य से पूर्ण होते हैं और उनमें आम आदमी को, जीवन की गति और लय को सहज रूप में संप्रेषित किया जा सकता है। पचासोत्तर रचित लोक नाट्य रूपों के द्वारा हिन्दी नाटक को भारतीयता मिल गई है। लोक नाट्य शैली से लिया गया सामूहिकता का प्रभाव हिन्दी नाटक को मिला हुआ और एक प्रबल लक्षण है। यह नाट्य शैली आजरामर है क्योंकि मनुष्य जब तक जीवित रहता है तब तक मनोरंजन जीवित रहता है, उस मनोरंजन के साथ-साथ नाटक भी जीवित रहता है।

2.3 नुक्कड़ नाटक

समसामयिक परिवेश और आग्रह के अनुरूप नाटक अपनी विकास यात्रा के दौरान अनेक रूप धारण करता रहता है। स्वतंत्रोत्तर परिवेश में अन्य रूपों के साथ सातवें-आठवें दशक में हिन्दी-नाटक का एक बहुत चर्चित और लोक प्रिय रूप उद्भूत हुआ है जिसे "नुक्कड़ नाटक" नाम से जाना जाता है। नुक्क्ड नाटक स्वतंत्रता के बाद से अवतरित रूप से हो रहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों

में परिवर्तन और एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम है, क्योंकि "..... एक खास समय में हर साहित्य, सांस्कृतिक विधा की एक सीमा हुआ करती है। किसी भी नई विधा का उत्तरोत्तर विकास एवं उसमें विविधता, एक लंबी प्रक्रिया का परिणाम होता है। सामाजिक बदलाव तथा नये मूल्यों की स्थापना के साथ सीमाएँ बदली-टूटती हैं। नुक्कड़ नाटक को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है।

दरअसल, नुक्कड़ नाटक भले ही अपने स्वरूप -कथ्य को लेकर सर्वथा एक नवीन विधा प्रतीक होता है लेकिन इस के बीज पहले से ही हमारे नाट्य परंपरा में विद्यमान रहे हैं। जितेन्द्र कौशल के शब्दों में - भारत के लिए उस में कोई नयापन नहीं है। न तो नाम है, नहीं काम में, हमारी लोक धर्मी नाट्य परंपरा नुक्कड़ नाटक ही तो रही है। गाँव की चौपाल हो या किसी कस्बे में एक चौराहा, नौटंकी, माच, नकल, भवाई, तमाशा, जात्रा....सभी इस प्रकार से नुक्कड़ नाटक ही तो हैं।

नुक्कड़ नाटक छोटी-सी अवधी में ही एक सशक्त नाट्य विधा के रूप में अलग पहचान बनायी है। रंग शिल्प की अधुनातन विधा राष्ट्रीय स्तर पर देश के कोने-कोने में व्याप्त हो गई है। नुक्कड़ नाटक में जन सामान्य की असाधारण हिस्सेदारी और इसकी बढ़ती लोकप्रियता आकस्मिक नहीं है, शायद आज के समय की यह मांग है, उसकी अनिवार्यता और उसकी नियति है। इसलिए इन दिनों नाटकों के जनवादीकरण के साथ-साथ आगे के लिए कई नई संभावनाएँ जन्म ले रही हैं और आम लोग स्वयं को इस से जुड़ा हुआ महसूस करने लगे हैं।

नुक्कड़ नाटक रंग मंचीय तामझाम और उपकरणों से सर्वथा मुक्त है। जैसाकि इस के नाम से ही स्पष्ट है, किसी भी गली के नुक्कड़, चौक, चौराहे या फिर आम रास्ते पर खेला जाने वाला नाटक। इसका आशय यह नहीं है कि नुक्कड़ नाटक रंग मंचीय संभावनाओं से सर्वथा मुक्त है। वह तो परंपरागत रंग मंचीय नाटक की विकास-यात्रा के दौरान समसामयिक परिवेश की एक उपज है। कोई भी कला समसामयिक आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के साथ ही अपना रूप स्वयं तैयार कर लेती है। यहीं बात

नुक्कड़ नाटक के भी साथ है। इस नाट्य रूप पर नजर डालते हुए प्रदीप सौरभ लिखते है कि - "अचानक आसमान से टपकने वाली चीज नहीं है,बल्कि उसके अंकुर हमारी जातीय परंपरा में हैं। वस्तुतः नुक्कड़ नाटक भारतीय जनता के मन में रचे-बसे विभिन्न लोक रूपों का विकास ही है।

सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के कारण नुक्क्ड नाटक ने नाटक कारों, रंगकर्मियों, नाट्य चिंतकों को नुक्कड़ नाटक की ओर उन्मुख किया है आज यह विधा अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ जन जीवन में अपना स्थान पा चुकी है, चर्चा और विवेचन का विषय बन चुकी है।

नाटक में अभिनय. दृश्यत्व और कथोपकथन यह तीन तत्व अनिवार्य होते हैं जिनके अभाव में कोई भी रचना नाटक नहीं कहीं जा सकता। नुक्कड़ नाटक में भी यह तीन तत्व मौजूद हैं जिनसे नुक्कड़ नाटक को नाटक से अलग कर कतई नहीं देखा जा सकता। नुक्कड़ नाटक में अभिनेयता कूट-कूटकर भरी है। अभिनय ही नुक्कड़ नाटक का प्राण तत्व है। अभिनय कौशल भी तो है जो नुक्कड़ नाटक को रंग मंचीय उपकरणों के अभाव में भी आकर्षक और ग्राह्य बना देता है। नुक्कड़ नाटक में अभिनय ही हर दृश्य और बिंब को व्यक्त करने की क्षमता रखता है जो कि उसका अपना निजी विशिष्ट है क्योंकि - मंच तथा मंचीय सामग्री के अभाव में नुक्कड़ नाटकों में संरचना- कौशल को जन्म दिया है तथा सांकेतिकता का विकास किया है। संरचना तथा सांकेतिकता नुक्कड़ नाटकों की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ है। मशीन, वायुयान, घर, बाग, पाठशाला, आग, समुद्र, सभी नुक्कड़ पर कलाकार अपनी संरचना द्वारा प्रस्तुत कर सकते है। गीत-संगीत, नृत्य नुक्कड़ नाटकों में यथावश्यक प्रयुक्त भी किये जा सकते हैं। सामूहिक गान (कोरस) नुक्कड़ नाटक का एक प्रसिद्ध उपकरण है जिसका उपयोग नाटक के अंत में लोक संबोधन के लिए किया जाता है।

अभिनय नाट्य रचना विधान में एक अपरिहार्य तथ्य माना गया है, नुक्कड़ नाटक में और भी अधिक सशक्त रूप में यह निहित है। इस प्रकार अभिनय के आधार पर नुक्कड़ नाटक को नाट्य परंपरा को अलग कर नहीं देखा जा सकता है। नुक्कड़ नाटक बिना किसी रंग मंचीय उपकरणों की सहायता के लिए बिना सहज और सरल रूप से "मोबाइल ड्रामा" के रूप में कही भी किसी भी जगह खेले जा सकते है, खेले जाते है, जिससे उसकी अभिनय क्षमता का पता चलता है।

नुक्कड़ नाटक प्रायः रंग संकेतों से शून्य ही होता है। कोई भी मंचीय नाटक नुक्कड़ पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। नुक्कड़ नाटक की सार्थकता उसकी प्रस्तुति होने में ही है। रंग संकेतों के बारे में सफदर हशमी कहते हैं कि - कास्टयूम्ज और प्रापर्टीज केवल इसलिए नहीं होना चाहिए कि उनके होने से हम एक यथार्थ का भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं। इनका कार्यशील होना जरूरी है। हम ने अकसर देखा है कि एक टोपी, एक बैल्ट और एक झंडे से अभिनेता अपने आप को पुलिसवाले के रूप में स्थापित कर पाता है। एक खादी टोपी से नेता, गले में एक रंगीन रुमाल से गुंडा बन जाता है।"

नुक्कड़ नाटक के अधिकाधिक प्रभा विष्णु और लोक-ग्राह्य होने के पीछे एक कारण यह है कि उसकी प्रस्तुति के दौरान का वातावरण,उस के पात्र और उसकी गतिविधियों रंग मंचीय नाटक की तरह विशिष्ट न होकर सामान्य होती है। वह किसी अतीत की घटना को पौराणिकता, ऐतिहासिकता का आवरण नहीं होता और समसामयिक, वर्तमान माहौल को ही अपने कथ्य में डालकर उसे दृश्यत्व देता है, इसलिए दर्शक की अनुभूति का तादात्म्य नाटक के पात्रों के साथ हो जाता है।

रूप गत स्तर पर नुक्कड़ नाटक हमारी लोकनाट्य परंपरा रूपों से काफी करीब है। हर नुक्कड़ नाटक रचना अपने परिवेश से ही कथ्य ग्रहण करती है। इस प्रकार किसी भी दशा में नुक्कड़ नाटक को नाटक से अलग करके देखना ना इंसाफी है। वह हमारी नाट्य परंपरा के सत्त विकसित होने के दौरान ही उसी

से निकला एक नव्य नाट्य रूप है। नाटक और नुक्कड़ नाटक के अतः संबंध की पुष्टि भी दोनों में निहित अभिनय, दृश्यत्व, कथोपकथन, संवाद योजना जैसे तत्वों के आधार पर ही होती है।

नुक्कड़ नाटक की सीमा राजनैतिक दायरे तक ही नहीं वरन उसकी परिधि में जन-जीवन-मूल्यों को प्रभावित करने वाले समूचे परिदृष्य का समावेश हो जाता हैं। परिवेश गत वैषम्य के परिणाम स्वरूप उपजे दबावों और समसामयिक आग्रहों ने नुक्कड़ नाटक को जन्म दिया है। कोई भी कला सर्वथा के लिए किसी वर्ग विशेष अथवा प्रवृत्ति विशेष की बंधुआ नहीं रह सकती। यहीं नुक्कड़ नाटक के साथ हुआ है - चुकीं जनवादी रंगकर्मी जनवाद को फैलाने, उसे पुख्ता करने निकले है, इसलिए ज्यादा कसे मर्यादा दर्शकों तक पहुँचना उनकी खास जरूरत है। बड़े बड़े शहरों के बड़े बड़े प्रेक्षागृहों से चिपके रहकर यह जरूरत पूरी नहीं की जा सकती। जनता के बीच जाना ही है, इसलिए जाहिर है कि नाटक का कथ्य, प्रस्तुतिकरण की शैली, पात्रों की संरचना यानी कि हर वह चीज जो नाटक से जुड़ी हुई है उसके स्वरूप में बदलाव तो आयेगा ही।

किसी विशिष्ट रंगमंच और विशिष्ट वर्ग से नाटक को मुक्त होना है तो उसे अपनी तरह से स्वरूप-कथ्य गत परिवर्तन का शिकार तो होना ही पड़ेगा। नुक्कड़ नाटक में भी शासक वर्ग की कला के कठघरे को तोडा है। नुक्कड़ नाटक के जन्म और विकास के बारे में डॉ. रमेश उपाध्याय इस प्रकार लिखते हैं कि - "उसका जन्म और विकास हुआ है, जनता की अपनी कला के रूप में जिसके जरिए जनता स्वयं शिक्षित, सचेत और संघर्षशील होना चाहती है। नुक्कड़ नाटक केवल नाट्य रूप ही नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है।"

नुक्कड़ नाटकों की कथा वस्तु प्रायः किसी न किसी अत्याचार या संवेदन पूरक दबाव की चर्चा करती है। शोषण के अनेक रूप इसमें दिखते हैं। स्त्रियों के बलात्कार, मजदूरों की हड़ताल, मजदूरों की दुर्दशा, दहेज के लिए जलायी जाने वाली स्त्री की व्यथाएँ, बढ़ती महँगाई आदि रोजमर्रा जिन्दगी से जुड़ी छोटी

या बड़ी घटनाओं का सम्यक विश्लेषण प्रस्तुत करना नुक्कड़ नाटक का अपना कथ्य गत वैशिष्ट्य है। पारिवारिक समस्याएँ नारी समस्याएँ व सामाजिक अन्याय जैसी चीजें नाटक के कथ्य बन जाते हैं। नारी को केन्द्र में रखकर नुक्कड़ नाटकों की वस्तु बहुत कुछ स्पष्ट कर देती है -

ऋऋ लड़की.....आज मैं आप को अपनी कहानी सुनाना चहती हूँ। लोग मेरे शरीर की कहानी सुनाते हैं। मेरे जिस्म की नंगी तस्वीरें दिखाते हैं। मेरा मासूमियत का कलाम बताते हैं। लेकिन मेरी कहानी है कि मैं रोज आत्म-दाह करती हूँ। रोज अपने घर, दफ्तर, मिल और बाजार में बेइज्जत होती है।.....और मेरी शादी के दहेज के लिए मेरा घर-संसार तहस-तहस हो जाता है।

नारी को केन्द्र में रखकर नुक्कड़ नाटक न केवल दहेज बल्कि उसकी अस्मिता से जुड़ी अन्योन्य समस्याओं व शोषण का चित्रण भी करता है। जन नाट्य मंच द्वारा लिखित "औरत" नाटक से सामाजिक रूढियों के दबाव के तहत नारी की पराधीनता का चित्रण देखिए - "औरतः चार बच्चे है। कमजोर, गंदे और ची-पी करते हुए 24 साल की उमर में चालीस साल की बुढयिा लगती हूँ। मुंह अंधेरे जागती हूँ। घर का काम-काज करती हूँ, चक्की पर जाती हूँ, रोहूँ साफ करने, दोपहर को चौका-बर्तन कर फिर काम पर जाती हूँ, शाम ढले लौटती हूँ। फिर सारा काम - ससुर जी के मरने के बाद से ही मेरा आदमी शराबी हो गया है।.....रात-दिन मारपीट और गाली-गलौज करता है। थाने में नाम दर्ज है उसका वर्तमान आर्थिक व्यवस्था की असमानताएँ जन जीवन को पूरी तरह से अपने कब्जे में लिए हुए हैं। देश की आर्थिक नीतियाँ भी सामान्य को शिकार बना रही है। अनेक नाटक बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार पर अपने प्रतिक्रिया दिखाकर हिन्दी नाट्य जगत को एक नई दिशा दिलाने की प्रयत्न करते हैं। शोषित-पीड़ित जन से प्रतिबद्ध नाटक में एक मिल कर्मचारी की कथनी इस प्रकार व्यक्त किया गया है - चार ; (आगे आकर) मैं दयाल, पेपर मिल में मशीन मैंन हूँ। मेरा नाम राधे श्याम है। मुझे हर महिने दो सौ रुपये मिलते हैं। अगर आफिस के इंचार्ज बाबु नाराज हो जाए, तो इस में दो-तीन दिन की तनख्वाह कट जाती

है। बाबु नाराज ही रहते हैं। डेढ-दो सौ के बीच झूलती हुई तनख्वाह और घर में चार सदस्यों का पेट, उनकी जरूरतें। घर में बूढी खांसती हुई माँ है, सयानी कुंवारी बहन है और है दो पढनेवाले। बहन ने एम.ए किया है, पर बेचारा अभी तक उसकी शादी नहीं हो पाई। न तो हमारे पास नोटों की गड्डी है और न बहन नौकरी पेशा। लोग या तो सोना चाहते हैं या सोने का अंडा देने वाली मुर्गी।"

आर्थिक मूल्य संक्रमण के दौर में बेकारी व बेरोजगारी ने भी एक विभीषिका का रूप धारण कर लिया है। बेकारी की समस्या के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले भ्रष्टाचार अनेकताओं को जन-नाट्य मंच दिल्ली के ही नुक्कड़ नाटक राजा का बाजा" के माध्यम से वास्तविकता के साथ उभारा गया है - प्रतिकोरस ; राहों की गर्द फूंकता दरवाजों को खटखटाता अर्जियाँ लिखता यातनाएं करता रामेश्वर ; हर जहर से लौटा हूँ मायूस। कोरस ; भीड़ खडी है नीचे उम्मीदवारों की अपनी-अपनी माँ के राज दुलारो की यहीं कोई चालीस हजार लड़के आए हैं जनरल नॉलेज रास्ते में भी रटते आए हैं। राजनैतिक जरूरतों के तहत जन्मे नुक्कड़ नाटकों की वस्तु के मूल में अधिक से अधिक रूप में राजनैतिक विश्लेषण होता है। आज की दूषित राजनीति में जनता के आक्रोश को नुक्कड़ नाटक अभिव्यक्ति देते हैं। भ्रष्ट राजनीतिक प्रवृत्तियों पर व्यंग्य करते हुए उसकी असलियत को जनता के सामने रखना नुक्कड़ नाटक के कथ्य का अपना अलग वैशिष्ट्य है। पहली बार हिन्दी नाट्य जगत में राजनीति संबंधों पर खुल कर जन भाषा में विश्लेषण मिलता है -

जादूगर रू नहीं जमूरे, नहीं। इस देश का बंटादार नहीं होगा इस मजमें में खड़े और बैठे तमाशबीन कोई काठ के उल्लू नहीं हैं। पर अच्छी तरह जानते हैं कि आज जो कुछ मैंने दिखाया वह हाथ की सफाई नहीं जादू टोना नहीं, बल्कि पिछले पैंतीस साल के हिन्दुस्थान की सच्चाई है। (दर्शकों से) मेहरबानों.... मैंने जो मंत्री आज पेश किया वह भाड़े का जमूरा नहीं य हिन्दुस्थान का समाजवादी शहंशाह है.. आपको

अपनी आँखें खुली रखनी होंगी।..... आपको सोचना होगा, आपको फैसला करना होगा कि आपके दुश्मन कौन है ?

वस्तुतः परिदृश्यगत दबावों में राजनैतिक विसंगतियों ने सर्वाधिक रूप से नुक्कड़ नाटक के लिए वस्तु प्रदान की है। यह आमतौर पर देखा जाता है कि राजनैतिक सरोकारों से जुड़े कथ्य को नुक्कड़ नाटक अधिकाधिक रूप से अभिव्यक्त देता है। संभवतः इसका कारण यही है कि राजनैतिक वैशम्य के विचलन के परिणामस्वरूप जन जीवन जितना अधिक प्रभावित होता है उतना अन्य सामाजिक, आर्थिक आदि से नहीं। व्यवस्था की अस्तव्यस्त को, जन के आक्रोश को नुक्कड़ नाटक ने अपने कथ्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है।

भारत देश पुरातन काल से ही विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों का समन्वित रूप लेकर चलता रहा है। अनेक वर्षों तक भारत में धर्म लोगों को जोड़ने के लिए एक शक्ति के रूप में काम कराया। लेकिन मध्ययुग के आसपास धर्म कुछ ठेकेदारों के हाथ में चला गया है। उनके हाथों में धर्म जाने के बाद से ही राष्ट्रीय एकता और आखण्डता को खतरा पैदा हो जाता है। नुक्कड़ नाटक समसामयिक समस्याओं को अपने कथ्य बनाकर चलने के कारण इस पतनोन्मुख समाज को और मानसिकता को आमंत्रण देता है। इस क्रम में, हिंसा -विरोधी स्वर, धार्मिक साम्प्रदायिक एकता के लिए अपील, एक नुक्कड़ "हत्यारे" के कथ्यांश के माध्यम से द्रष्टव्य है - सूत्रधार रू मौत फिर मौत है, आगाज से अन्दाज तक मौत न हिन्दू है, न मुसलमान। इनसान का खून आपको अच्छा लगता है न मुझे।..... मिट्टी की फितरत है कि वह मिट्टी से जुदा नहीं होती। मुल्क के अमन परस्न बाशिंदों में फूट डालने वालों के पूरे लड़कर के बावजूद इस देश के लोग मुहब्बत से रहने के राज से बखूबी वाकिफ हैं।" दरअसल, नुक्कड़ नाटक का जन्म और विकास जनवादी आंदोलन के साथ-साथ हुआ है। कोई भी साहित्यिक विधा अथवा कला जब महनतर उद्देश्यों को साथ लेकर चेतना के धरातल से गुजरती है तो वह बहुत स्वाभाविक है कि कड़वे यथार्थ को

अभिव्यक्त देने के क्रम में अनेक आपत्तियों से गुजरना पड़ता है। एक स्वस्थ समाज एवं व्यवस्था की परिकल्पना में नुक्कड़ नाटक ने सामाजिक-राजनैतिक बदलाव का जो बीडा उठाया है, वह एक प्रकार की खुली चुनौती भी है।

साधारण रूप से कोई भी बदलाव यूँ ही नहीं आ जाता बल्कि उसके मूल में एक चेतना विद्यमान रहती है और इसी चेतना से प्रतिष्ठित होकर नुक्कड़ नाटक आम आदमी तक अपनी पैठ कायम करता है। शोषित, पीड़ित, सर्वहारा को अपने अधिकारों का बोध कराते हुए नुक्कड़ नाटक कभी भी हिंसा या प्रतिहिंसा का आवाहना दर्शक से नहीं करता। फिर भी हम इसको क्रांतिधर्मी इसलिए कहते है कि राजनैतिक विसंगतियों से जन साधारण को भली भाँति अपना कराते हुए उसे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सचेत करता है। नुक्कड़ नाटक की यह चेतना धर्मी प्रवृत्ति ही उसके क्रांतिधर्मी होने की पृष्ठभूमि बनती है।

किसी भी काल अथवा विधा की सार्थकता, प्रासंगिकता युगीन संदर्भों से जुड़ी होती है। समसामयिक संदर्भों में आज की जरूरतों के तरह विकास नुक्कड़ नाटक भी इसका अपवाद नहीं है। उसकी प्रासंगिकता के मूल में आज के तमाम संदर्भ और आग्रह जुड़े हुए हैं। क्योंकि .....नाटक विधा ही ऐसी है जो अपनी जीवन्तता, सरलता और अपने असर अन्दाज की वजह से जनता के व्यापक हिस्से के बीच जनवादी चेतना और स्वस्थ वैकल्पिक संस्कृति के फैलाने में बहुत कारगर होती है।.....यह हमारी समझ है कि सशक्त जन नाट्य आंदोलन को देश व्यापी स्तर पर खड़ा करना आज बहुत जरूरी ही हो गया है।

हिन्दी नाटक में सामान्य जन जीवन से जुड़कर चलने की बात देखी भी जाती है लेकिन नुक्कड़ नाटक का सार्थक्य अधिक व्यापक है। सीधे साधे रूपों में जन से जुड़कर बिना किसी वैयक्तिक स्वार्थ के, मात्र मनोरंजन के लिए कला के पक्ष को नाटककार उसे जन-पक्षधर भी सिद्ध करना नुक्कड़ नाटक की

अपनी खास विशेषता है। शोषित, पीड़ित जन और सर्वहारा के प्रति प्रतिबद्धता का भाव लेकर उसके स्वयं को "जन" से जोड़ लिया है। यह विशेषता अन्य नाट्य विधाओं में देखने को नहीं मिलती है।

अनेक विषम परिस्थितियों में से नुक्कड़ नाटक बाहर आकर जंगल में आग की तरह हिन्दी पट्टी एवं पूरे देश में फैल गयी। देश के कोने-कोने में अनेक रंग मंडलियाँ सामने आई और देखते-देखते एक सार्थक रंग आंदोलन का रूप धारण किया है। नुक्कड़ नाटक की लोक प्रियता के रहस्य, दर्शक की साझेदारी है। प्रेक्षक से सीधे तादात्म्य स्थापित कर लेना नुक्कड़ नाटक की कला भी है। राह चलते लोगों को रोकना बहुत मुश्किल काम है, वह काम नुक्कड़ नाटक आसानी से करता है। आज भी केवल प्रयास से नहीं रूक सकता, उसे कुछ आकर्षण भी चाहिए। नुक्कड़ नाटकों में आकर्षण भी है कुछ मनोरंजन तत्व भी। हास्य व्यंग्य से शून्य नुक्कड़ नाटक की कल्पना भी नहीं की जा सकती, उसका वस्तु तत्व बहुत समृद्ध है। यही नुक्कड़ नाटक की कलात्मकता को बढ़ाती है।

समाज परिवर्तन को दृष्टि में रखकर नुक्कड़ नाटक बाहर आया है। रंगमंच की श्रृंखलाओं को तकनाचर करके सामान्य लोगों के आगे नाटक प्रक्रिया को लाकर रख दिया है। एक विधा की सार्थक भूमिका नुक्कड़ नाटक पूरा करके दिखाया है। सामाजिक, सार्थक और उत्तेजक कथ्य वाले इन जन जागरण प्रधान प्रासंगिक प्रदर्शनों ने जन सामान्य में एक नई हलचल पैदा की है। हिन्दी रंगमंच व्यक्ति परिवेश से समाज परिवेश को बदलने वाले समय में नुक्कड़ नाटक का उदय हुआ है। उसी समय में व्यक्ति अपने परिवेश से बाहर आकर सूक्ष्म के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना हिन्दी नुक्कड़ नाटक की वैशिष्ट्य है। साहित्य का मूल मकसद समाज, समाज व्यवस्था और सामाजिक संबंधों के बुनियादी बदलाव के लिए चेतना जगाना होना चाहिए। नाटक एक ओर मनोरंजन का साधन है और दूसरी ओर मनुष्य की ज्ञान वृद्धि और भावात्मक एकता में भी सहायक है। लेकिन खाली मनोरंजन से कुछ नहीं होता है। अगर

कोई विधा समाज का अवलोकन करने से काम नहीं चलता है। उसे परिवर्तन का मार्ग दिखाने में ही उस विधा का महत्व है।

2.4 नाट्य रूपांतरण

नाटक की परंपरा हमारे आदि नाट्य साहित्य में प्रारंभ से ही विद्यमान रही है, किन्तु उसका स्वरूप और समय-समय पर बदलता रहता है। उसी बदलाव के एक रूप नाट्य रूपांतरण है। किसी एक रूप को दूसरे रूप में अंतरित करना रूपांतरण कहलाता है। यह किसी भी माध्यम से घटित किया जा सकता है। हिंदी नाट्य प्रवाह में रूपांतरण एक विधा की प्रमुखता पाकर साहित्य की गरिमा को और भी अग्रसर कराकर विकास यात्रा पथ पर निरंतर अग्रसर है।

रूपांतरण अर्थात एक रूप को बदलकर दूसरे रूप में उस रूप का परिवर्तन करना। यह रूपांतरण साहित्यिक विधाओं में भी हो सकता है तथा साहित्येतर भी हो सकता है- भोलानाथ तिवारी इस विषय में कहते है - रूपांतरण (Adoptation) इस शब्द का अर्थ है रूप को बदलना। अनुवाद के इस प्रकार में रूपांतरकार मूल को अपनी रूची, सुविधा तथा आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित करके भाषा में रखता है। इसमें मूल सामग्री, संक्षिप्त या विस्तृत, सरल या कठिन तथा विद्या -रूप में परिवर्तन। अर्थात कहानी से नाटक, नाटक से कहानी आदि होकर आती है। पात्रों के नाम, देश काल वातावरण आदि परिवर्तन किये भी जाते हैं और नहीं भी।

स्वातंत्र्योत्तर परिवेश ने अनेक नवीन प्रयोगों के लिए प्लाटफार्म तैयार करने में सफल हुई है। अनुवाद का अगला रूप इस रूपांतरण की सार्थकता पर दृष्टि लगाते हुए गिरीश रस्तोगी इस प्रक्रिया को नीचे दिये गये वक्तव्य से परिभाषित करते हैं कि — "नाट्य रूपांतरण न गौण वस्तु है, न द्वितीय तृतीय स्तर की चीज। यह भी सृजन है -एक मौलिक कृति का पुनर्सजन इस लिए उसका तात्पर्य किसी बनी बनायी

रचना केवल इस्तेमाल करना नहीं है – उस रचना में अंतर्निहित दूरगामी संभावनाओं और काल एवं साहित्य के विलक्षण संबंध सूत्र को तलाशना, पुराना और नवीन सौंदर्य बोध के साथ बड़े समूह तक सम प्रेषण करना है। लिखित शब्दों को दृशयात्मक लय, टोन और भिन्न आकार देना है।

हमारे देश में रूपांतरण की प्रक्रिया अत्यंत प्राचीन रही है। रामायण और महाभारत की कथाओं को नाट्य की रुप में अभिनय करते हुए प्रस्तुत किया जाता था। यह प्रक्रिया कुछ लोगों का व्यवसाय बन गया था। – रामायण और महाभारत के ये व्यावसायिक कथा वाचक स्थान पर कथा-पारायण आयोजन रचते थे। ग्राणीन जनता के धार्मिक और सांस्कृतिक ज्ञान के यहीं शिक्षक होते थे।

सामान्य वर्ग पुरातन काल में अशिक्षित ही थे, उस समय पढना लिखना हर कोई नहीं जानते थे फिर भी रामायण तथा महाभारत की कथा सब को मालूम थी। इस का श्रेय इन रामायण तथा महाभारत के "कथावाचकों को ही जोता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इतिहास और पुराणों के लेखन के बाद उसमें जो कथा या गाथाएँ मिलती हैं उनके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता महसूस हो गयी, चाहे वह धार्मिक कारणों से ही क्यों न हो। इस आवश्यकता के कारण कहानी अथवा अख्यान के रूप में मिलने वाली वस्तु को अनेक माध्यमों के द्वारा रूपायित करने की परंपरा का श्री गणेश हो जाता है – पहले अधिकतर नाटक कथा गायन के रूप में ही होते थे।

पचासोत्तर रंगकर्म की तीर्वगति प्रयोग शीलता और उत्साह ने नवीन कृतियों, नवीन संभावनाओं की तलाश की ओर विभिन्न देश विदेश कृतियों के नाट्य रूपांतरण पर लोगों का ध्यान केन्द्रित हुआ। बंगला. मराठी, गुजराती, कन्नड़ आदि भारतीय भाषाओं के साथ-साथ फ्रेन्च, जर्मन, अंग्रेजी रूसी आदि भाषाओं की श्रेष्ठतम नाट्य कृतियों के अनुवाद और रूपांतरण भारतीय रंगमंच को प्रभावित किया। नाट्य रूपांतर की विशिष्टता पर दृष्टि लगाते हुए डॉ. नगेन्द्र इस प्रकार लिखते हैं कि – "अच्छे साहित्य को जनता तक पहुँचाने के लिए कल्पनाशील नाट्य कर्मियों और नाट्य मंडलियों ने कविता, कहानी,

उपन्यास आदि के नाट्य रूपांतरों का सहारा लिया है। प्रेमचन्द,यशपाल, श्रीकांत की कहानियाँ, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, भवानी प्रसाद मिश्र आदि ख्यातिलब्धि कवियों की कविताओं के नाट्य रूपांतरण और पाठ बढ़ी सफलता से किये गये है। मन्नुभंडारी के महाभोज" का नाट्य रूपांतर बेहद जनप्रिय हुआ। नाट्य रूपांतर की इस कला से देश विदेश के किसी भी रचनाकार की कृतियों को दर्शकों तक पहुँचाया जा सकता है और इस टेकनीक से हम श्रेष्ठ साहित्य के प्रति संस्कार वान दर्शक भी तैयार कर सकते हैं।"

साधारण रूप से हर साहित्यिक विधा के लिए अपने निश्चित स्वरूप, शिल्प, विशिष्ट सौन्दर्य और शर्ते होती हैं अनेक भेद होने पर भी इन विधाओं के कहीं न कहीं संबंध सूत्र परस्पर एक दूसरे से जुड़ते ही हैं। काव्य को नाटक, कहानी को नाटक और उपन्यास को नाटक के रूप में रूपांतरण कर सकते हैं। इस पर गिरीश रस्तोगी का वक्तव्य सही लगता है कि - "आज का समय विधाओं और कलाओं के अंतर संबंधों के बिलकुल घुलमिल जाने का है। रंगमंच से विधाओं और कलाओं का इतना अधिक अंतः संश्लेषण इस समय हुआ ही है -संचार माध्यों और फिल्म मीडिया से इतना अधिक रचनात्मक संबंध कहानी- उपन्यास और काव्य का बना है कि विधाओं और माध्यमों, साहित्य और कलाओं के सूक्ष्म जटिल रिसते और उससे होनेवाले सृजन-पुनः सृजन को लेकर अनेक सवाल उठते हैं - उठे हुए हैं और कोई निर्णयात्मक उत्तर की स्थिति संभव न हो सकी है क्यों कि चुनौती, प्रयोग की संभावनाएं कभी समाप्त नहीं होती और सृजन की प्रक्रिया का कोई गणित या व्याकरण नहीं होता।

हिन्दी रंगमंच के आरंभिक दौर में जहाँ काव्य पाठ, कहानी के नाट्य पाठ को महत्व दिया गया, वहीं रंगा दोलन के तीव्र दौर में मुख्यतः कहानी और उपन्यासों के नाट्यांतरों ज्यादा संख्या में आने लगा। मूल कृति की रचनाकार- कहानीकार उपन्यासकार-की अपनी प्रतिक्रियाएँ, रचनाकार की भूमिका, बाहरी हस्तक्षेप को लेकर अनेक सवाल उठे। निर्देशक रंगकर्मी, कलाकार की अपनी कल्पना और अपने

दृष्टिकोण, निर्देशीय अवधारणा एवं कृतित्व के प्रश्न भी खड़े हुए हैं। असंख्य कहानियाँ-विशेष कर प्रेमचन्द की नाट्य रूपांतर से बृहद् समूह के बीच पहुँची। अन्य देश-विदेशी कहानियों के भी रूपांतरण मंच, दूरदर्शन, फिल्म के लिए भी हुए।

कहानी या उपन्यास को रूपांतरित करने पर मौलिकता को हानी पहुँचाती है। नाट्य रूपांतरण में पाठकों को दर्शक के रूप में देखना पड़ता है। इस नाट्य रूपांतरण प्रक्रिया को विश्लेषित करते हुए गिरीश रस्तोगी इस प्रकार लिखते हैं कि - सवाल किसी भी रतना को एक नई सृष्टि के रूप में लाने का है -केवल नाटक बना देने का नहीं। कथाकार के कथ्य को मूल संवेदना को निश्चित रूप से आरंभ से अंत तक रूपांतर करते समय सुरक्षित रखना है। कोई जरूरी नहीं कि हम उस कृति को ज्यों का त्यों अंत तक लेकर चले - हमारे सामने जटिलताएं, चुनौतियाँ रंगमंच की है। रंगमंच की निरंतरता, शर्तें, क्रिया तत्व और संप्रेषण को ध्यान में रखते हुए अगर कुछ या कोई दृश्य या स्थल छोड़ना पड़ता है, तो अनिवार्य तौर पर कहीं कुछ जोड़ना पड़ता है चाहे संकेत, चाहे व्यंजनाएं अथवा शब्द, वाक्य या दृश्य भी तो वह उस रचना को नष्ट करने के लिए नहीं - उसकी जीवंत शक्ति को ऊर्जा देने के लिए। पचासोत्तर हिन्दी नाट्य विधाओं में यह रूपांतरण बड़ी सशक्त विधा के रूप में पहुँचता है। हम स्थूल रूप में इस नाट्य रूपांतरण को दो भागों में विभक्त कर सकते

हैं जैसे -1. उपन्यास का नाट्यरूपांतरण 2. कहानी का नाट्य रूपांतरण।

इस विधा में जो कुछ भी परिवर्तन देखा जाता है उसको शैली के अनुसार ही रखा गया है। इस विधा के अंतर्गत जन्मे संभावनाओं पर हमें दृष्टि लगाने से ही इसकी महत्वपूर्णता हमें मालूम पड़ता है

2.4.1 उपन्यास का नाट्य रूपांतरण

किसी भी विधा को उससे भिन्न विधा के रूप में बांधना और एक विशेष कला गत माध्यम से जोड़ना बहुत जटिल और साहस का कार्य होता है। साधारण रूप से उपन्यास की प्रक्रिया बड़ा बृहद होता है। उपन्यास में सारा जीवन का दर्शन बिखेर कर दिया जाता है। उपन्यास का आकार, घटनाओं, पात्रों की अनेकता और विस्तार, अनेक उतार चढ़ाव, विभिन्न विषय और स्थितियाँ ज्यों का त्यों नाटक रूप में लाना संभव नहीं है। उपन्यास में सीमाएँ कम, स्वतंत्रता ज्यादा होती है।

उपन्यास को नाटक के रूप में बदलने पर विषय को संवादों में बांधकर अवांछित को छोड़कर, आवश्यकता को जोड़ना पड़ता है। उपन्यास को नाट्य रूपांतर करते समय तीन विषय को दृष्टि में रखना पड़ता है कि (1) उपन्यास की मूल आत्मा, लेखक के व्यक्तित्व, दृष्टिकोण तथा स्तर की रक्षा करनी चाहिए। (2) उस मूल आत्मा को नाट्य विधा का संश्लिष्ट स्वाभाविक और उपन्यास के अनुकूल स्वरूप प्रदान करना है। (3) नाट्य रूपांतरण करते समय दर्शक, अभिनेता आदि का ध्यान रखते हुए रंगमंच की सीमाओं, संभावनाओं, शर्तों आवश्यकताओं आदि सभी के प्रति पूर्ण सतर्क रहना चाहिए।

साधारणतः उपन्यास को रूपांतरण करते समय रूपांतरकार के पास निर्देशक की रचनात्मक दृष्टि और साहित्यिक समझ के साथ दोनों के संतुलन की योग्यता होनी चाहिए। अपने कृति को नये रूप में प्रस्तुत करना उतनी आसानी नहीं है। पाठक के पास जो समय रहता है उतना समय दर्शक के पास नहीं होता है इसलिए उपन्यास के कुछ बन्दि कमजोर लगाने से उसे सशक्त बनाना चाहिए।

पचासोत्तर परिवेश अनेक उपन्यासों को नाटकों के रूप में परिवर्तित करके एक नयी विधा का सृजन की है। लेकिन मैं ने चार प्रसिद्ध उपन्यासों के नाट्यांतरण को विश्लेषित किया। प्रेमचन्द द्वारा लिखित विश्व प्रसिद्ध उपन्यास गोदान" को नाटककार विष्णु प्रभाकर ने "होरी" नाम से रूपांतरित किया हैं। फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आंचल" को वहीं नाम से हृषीकेश सुलभ" ने रूपांतरित किया हैं। महाभोज उपन्यास को मन्नुभंडारी ने ही नाट्य रूपांतरण करके सक्षम बनायी है। श्रीलाल शुक्ल द्वारा लिखित

प्रसिद्ध व्यंग्य उपन्यास "राग दरबारी" को गिरीश रस्तोगी द्वारा नाट्य रूपांतरित हो कर प्रसिद्धि पायी है।

रूपांतरकार अपनी सुविधा के अनुसार नाट्यरूपांतरण में बहुत से परिवर्तन करते रहते हैं। महाभोज उपन्यास छोटा है इस लिए नाट्यरूपांतरण में पात्रों तथा दृश्यों आदि को जोड़ कर कथा को विस्तृत किया गया है। गोदान" उपन्यास के 304 पृष्ठों को होरी में 78 पृष्ठ बनाया दिया गया है और रागदरबारी के 326 पृष्ठ को रंगनाथ की वापसी" में 83 पृष्ठ बना दिया गया है। इस प्रकार कहीं निकाला, कहीं कुछ बदला तो साथ ही कहीं जोड़ भी गया है जिससे आकारगत परिवर्तन दिखाई देता है।

होरी" नाट्यांतरण में केवल गाँव की घटनाओं को केन्द्र में रखकर रचना की गयी। शहरी घटनाओं का वैसे भी होरी से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था इस लिए शहरी घटनाओं को छोड़ दिया गया है। इस नाटक की प्रतिक्रिया करते हुए रूपांतरकार विष्णु प्रभाकर इस प्रकार लिखते हैं कि - हर निर्देशक अपनी दृष्टि से उसकी प्रस्तुति करता है मगर मूल कथा के साथ कोई स्वतंत्रता नहीं लेता। होरी में स्वीकार करना पड़ेगा। हमने उपन्यास के अंश को छोड़ दिया है जिस का संबंध शहरी जीवन से था। प्रेमचन्द जी अगर स्वयं इस नाटक को लिखते तो निश्चय ही वे इस अंश को छोड़ देते है। समय की दृष्टि से नहीं बल्कि प्रभाव की दृष्टि से भी।"

नाट्य रूपांतरण में भाषा शैली को बदलने की कोशिश तो नहीं की गई है। फिर भी कुछ शब्दों को बदलना जरूरी हो जाता है। कहीं संदर्भ के अनुसार तो कहीं संक्षिप्तीकरण के लिए जैसे - (उपन्यास में) धनिया ने लजाते हुए कहा - "ऐसे ही बड़े लचीले जवान हो कि साली-लहजे तुम्हें देखकर रीझ जायेंगी। होरी ने फटी मिरजयी को बड़ी सावधानी से सह करके खाट पर रखते हुए कहा।

(रूपांतर में) धनिया : धीरे-धीरे, दाँत बाहर निकल आऐँगे।ष्ष् ऊपर संवादों से हमें पता चलता है कि नाट्यरूपांतरण में राय साहब का प्रसंग नहीं है तो स्वाभाविक है। लेकिन उपर्युक्त संवाद नाटकीयता से युक्त है। अतः उस प्रसंग को बदल दिया और संवाद रखा गया। उपन्यास में होरी राय साहब के पास जाने की बात करता है तो धनिया लाठी-मिरजई, जूते, पगडी लाकर देती है तब होरी कहता है - (उपन्यास में) क्या ससुराल जाना है, जो पाँची पोशाक लायी है? ससुराल ने भी तो जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे दिखाऊँ। होरी के गहरे साँवले पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मदता झलक पड़ी।" (रूपांतरण में) होरी जोर जोर से कल्ला कर रहा है।

तब धनिया कहती है कि दाँत निकलाऐँगें। इस प्रकार कई उदाहरण हमें मिल जाएंगे जिस में बात को सटीक बनाने के लिए कहीं बहुत कुछ तथा कहीं कुछ परिवर्तन किए गये हैं। इस का मंचन भी बहुत ही प्रख्यात हुआ है। कलाकारों को उसमें अभिनय करने से बहुत ही आत्मसंतुष्टी मिली है। इसमें होरी का पात्र निभाने वाले हीगल कहते है कि - "उससे एक प्रश्न किया गया है कि किस नाटक में, कौन सा रोल करने पर आपको सबसे अधिक संतोष प्राप्त हुआ तो उनका स्पष्ट उत्तर था कि होरी का रोल करते हुए मुझे सबसे अच्छा लगा, मैं जैसे उसके चरित्र से एकाकार हो जाता था।"

मैला आँचल" के रूपांतरण में भी बहुत कुछ छोडा गया है। घटनाओं का क्रम भी थोडा बहुत बदल गया उपन्यास में तो वर्णन लेखक करता है तो नाट्य रूपांतरण में इसके लिए सूत्रधार, नटी तथा विदूषक पात्रों को सृजित किया गया है। (उपन्यास में) गाँव में खबर तुरंत बिजली की तरह फैल गई मलेटरी बहरा चेथ; को गिरपत कर लिया है और लोबिन लाला के कुँए से बालटी खोलकर ले गये है। यद्यपि 1942 के जन आंदोलन के समय इस गाँव में न तो फौजियों का कोई उत्पात हुआ था। और न आंदोलन की लहर ही इस गाँव में पहुँच पाई थी, किन्तु गाँव भर की घटनाओं की खबर अफवाहों के रूप में यहाँ तक जरूर पहुँची थी।..... मोगलाटी टीशन पर ...ध् दुहाई बाबा लहसिंह।"

ऊपर बताया गया विषय उपन्यास की प्रथम घटना है जिसका विवरण रेणु दे रहें हैं। लेकिन नाट्य रूपांतरण में अनेक परिवर्तन पाया जाता है। हृषीकेश सुलभ द्वारा नाट्यरूपांतर में घटना का इस तरह रूपांतर किया गया है। पहले सूत्रधार नटी और विदूषक आते हैं, नृत्य करते हैं। नाटक को इस तरह प्रारंभ करते हैं कि – (रूपांतर में) समाजी एक ; का हुआ रे धिकला? का हुआ?

धिकला : अरे गाँव में मलेटरी घुस आई है। भागो रे भाई, भागो..... समाजी दोरू अरे भोरे– भिनसारे गाँजा का चिलम चढाकर आया है का रे? धिखला रू हाँ–हाँ, बनिया का बेटा भूख से मरे, लोग कहे निशा में मातल है। अरे मलेटरी घुस आई है गाँव में। बहरा चेथरू गिरफ्तार मलेटरीवाले लोबन लाल के कुएँ से बाल्टी खोल कर ले गये।"

मैला आँचल" आंचलिक उपन्यास है। इसकी भाषा शैली आँचल विशेष की भाषा से युक्त है। कुछ शब्द तो बिलकुल ठेठ बोलियों के हैं। वैसे मूल लेखक और नाट्यरूपांतरकार दोनों ही बिहारी के हैं। मंच के लिए भाषा शैली सटीक नहीं है इसलिए भाषा शैली को मंच के अनुरूप रखने का प्रयास किया गया है। हिन्दी रंगमंच के लिए भी उसका विशेष स्थान है। राजनीति की विद्रूपताओं से लेकर प्रेम की कोमलतम संवेदना तक को रचने वाले रेणु के उपन्यास का यह नाट्य रूप प्रयोग धर्मी चेतना के कारण सघन प्रभाव छोड़ता है।

महाभोज" नाट्यरूपांतरण में भी कुछ घटनाओं को नहीं रखा गया है। साथ ही कुछ अन्य घटनाओं को जोड़ा गया। मूल लेखक और रूपांतरकार एक होने से, जो संवेदना उपन्यास में हम पाते हैं वहीं संवेदना नाटक में भी मिलती है। संवादों को अच्छी तरह व्यक्त किया गया है। उपन्यास में अंत की घटना को नाट्य रूपांतरण से निकाल दिया गया है और एक नयी घटना को जोड़ा दिया गया है। नाटक को और भी सशक्त बनाने के लिए ये बदलाव किये जाते है। नाट्यरूपांतरण के अंत से रूपांतरकार भी संतुष्ट नहीं है वे इस विषय में कहती है कि –

नाटक की समाप्ति पर सूत्रधार का शब्दहीन संवाद इस बात को तो स्पष्ट कर देता है कि स्थितियाँ अब कहने-सुनने से परे चली गयी हैं, लेकिन इस से उपन्यास में विद्रोह और संघर्ष की जिस निरंतरता की ओर संकेत है, वह कहीं-न कहीं धुंधला होकर टूटता सा लगता है बेहतर तो यह होता कि महेश किस प्रकार बिंदा के संघर्ष को आगे बढ़ाने की पुष्टि करता कि विद्रोह की आग दबायी तो जा सकती है, पूरी तरह कुचली नहीं जा सकती।

रागदरबारी नाट्य रूपांतरण में कई पात्रों को तथा कई स्थलों को छोड़ दिया गया है। चुनाव के वर्णन, गाँव का मेला, मंदिर में पुजारी का प्रसंग आदि छोड़ दिया गया है। इस उपन्यास के नाट्य रूपांतर पर दृष्टि लगाते हुए गिरीश रस्तोगी लिखती है कि - राग दरबारी में नाटकीयता कथा की संबद्धता, निश्चित आरंभ, मध्य, अंत और पात्रों का बंध-बंधाया स्वरूप नहीं है।..... इसलिए एक ओर उसका नाटयरूपांतर असंभव सा काम भी लगा और रह-रहकर उसका देश व्यापी व्यंग्य और मानवीय संवेदना आकृष्ट भी करती थी। एक बार नहीं, उपन्यास को कई बार पढ़कर कम से कम दस बार उसके लक्ष को और उसे दर्शकों के सामने पहुँचाने की दृष्टि के साथ पले उपन्यास की रूप-रेखा मस्तिष्क में बनी, फिर कागज पर आयी।

साधारण रूप से नाटक में आरंभ से ही दर्शकों की मानसिक भूमिका को उपन्यास की मूल संवेदना की सही पकड़ने के लिए तैयार करना है। कम से कम उपन्यास के कथ्य को संप्रेषण करने के लिए सूत्रधार का प्रयोग अनिवार्य होता है। जहां तक नाटक का आरंभ उपन्यास के आरंभ से भिन्न है इस के मंचन में कथानक में अनेक परिवर्तन किए गए हैं -

(उपन्यास में) "अब तुम किस दर्जे में पढते हो रूप पन? उनकी शकल से लगा कि उन्हें यह सवाल पसंद नहीं है। वे बोले, टेन्थ क्लास में हूँ..... तुम कहोगी उसने तो मैं दो साल पहले भी था। पर मुझे शिवपाल गंज में इस क्लास से बाहर निकलने का रास्ता ही नहीं सूझ पड़ता।.....

तुम जानते नहीं हो दादा, इस देश की शिक्षा-पद्धति बिलकुल बेकार है। बड़े-बड़े नेता यहीं कहते हैं। मैं उनसे सहतम हूँ.....ध् (रूपांतर में) "..... अपनी बताओ कुछ। क्या हुआ, दसवीं कक्षा से तुम्हारा रिश्ता टूटा या नहीं?.....नाराज क्यों होता है। मैं क्या जानता नहीं हूँ कि पढने से और वह भी खासकर दसवीं कक्षा में पढने से तुम्हें बहुत प्रेम है। रुप पन रूसाली अपने देश की शिक्षा-पद्धति ही बड़ी ना कामयाब है.....जो लड़के पास हो जाते हैं न, वे बेशर्म लड़के हैं और ऐसे बेशर्मी कुछ ही लड़के करते हैं और अब? अब क्या है? अब तो बाप भी नकल कराए और गुरु भी नकल कराये, माँ नकल के गुरु सुखाये जिसे देखो फस्ट क्लास।

मंच की दृष्टि से यह रूपांतरण अनेक बार खेल चुके हैं। 1978 में एक महीने में पांच प्रस्तुतियाँ हुई। जिसके माध्यम से यह नाट्य रूपांतरण कितना सफल है, कहा जा सकता है। इस नाटक को रूपांतरण करने में और मंचित करने में प्रसिद्ध रंगकर्मी गिरीश रस्तोगी का दायित्व ज्यादा है - नाट्य-रूपांतर करते समय मेरे सामने उपन्यास भी स्पष्ट था और उसकी रंग मंचीय संभावनाएं भी। इसीलिए रंग मंचीय दृष्टि से उसके नाट्य रूप के तैयार करते जाने में मेरे सामने कोई संकट नहीं था। बल्कि नाट्य लेख के साथ ही रंग मंचीय संकेत, स्थितियाँ प्रकाश एवं संगीत के निर्देश, प्रस्तुति के नियम आदि उभरते-बनते गयी। सबसे कठिन थी पूरे दृश्य बंध की कल्पना, ताकि उसमें ही पूरे उपन्यास को प्रस्तुत किया जा सके -

नाट्य रूपांतरण में साधारणतः मूल कथानक का परिवर्तन तो होता ही है। लेकिन आधार भूमि से कोई भी रूपांतरकार पूरा हटकर कहीं भी नहीं लिखता है। जो कुछ मूल कथानक में होता है उसे रंगमंच के अनुसार परिवर्तित करके हमें प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्न करता है। साधारणतः कहानी रूपांतरण में कथानक परिवर्तन कथा के विस्तार के लिए किया जाता है। उपन्यास में इसका उलटा होता है। अधिकतर उपन्यासों के नाट्य रूपांतरों में पात्रों की संख्या. दृश्यों की संख्या आदि को घटाकर कथानक

परिवर्तन किया जता है। ऐसा भी देखा गया है, अगर उपन्यास के नाट्य रूपांतरण में किसी वजह से अगर पात्रों की संख्या, दृश्यों की संख्या आदि बड़ा दी जाती है तो कहीं-न-कहीं कुछ पात्रों, दृश्यों को निकाल भी दिया जाता है।

रंग मंचीय परिकल्पना की दृष्टि से भी यह नाट्य विधा मशहूर हुई है। खासकर होरी" श्रंगनाथ की वापसी" अनेक प्रदर्शन दे कर सफल सिद्ध हुए हैं। रंगमंच के लिए ये नाटक बिलकुल उपयुक्त साबित हुआ है। अपने नाट्य प्रस्तुति पर मन्नुभंडारी इस प्रकार कहती हैं कि - "अगर पत्र-पत्रिकाओं नाट्य समीक्षकों और सबसे अधिक दर्शकों की प्रतिक्रियाओं पर विश्वास किया जाये तो यह नाट्य जगत की एक अभूत पूर्ण घटना है। नाट्य विद्यालय के रंग मंडल के सधे और मँजे हुए कलाकारों का अभिनय- सभी बातों का कुछ ऐसा संतुलन ताल-मेल बैठ गया था कि नाटक के प्रभाव में एक बार तो दर्शकों को स्तब्ध कर दिया। कथ्य की प्रासंगिकता को देखते हुए यह विश्वास तो हम सभी को था कि दर्शक सहज ही इसके सहभागी हो जाएंगे, लेकिन नाटक इस हद तक उनको आंदोलित और उद्वेलित कर देगा, इसकी कल्पना नहीं की थी। वस्तुतः इस प्रभावोत्पादक सफलता का इसकी प्रस्तुति को ही है।

2.4.2 कहानी का नाट्य रूपांतरण

नाट्य रूपांतरण में कहीं न कहीं कुछ न कुछ तो परिवर्तन आवश्यक होता है। कहीं-कहीं एक दो शब्दों के ही परिवर्तन मिलते हैं तो कहीं कहानी में अनेक नए दृश्यों को जोड़कर उसको नया रूप दिया जाता है। इससे कहीं थोडा बहुत तो कथानक पर असर पड़ता ही है। उदाहरण के लिए अगर किसी कहानी में एक या दो तीन दृश्य है और कथानक सीमित है, तो उसमें नई दृश्यों को जोड़कर उसके कथानक को भी व्यापक रूप दिया जाता है।

पचास के बाद हिन्दी में आवश्यकता ऐसे नाट्य लेखन और रंगमंच की है जब वैविध्य पूर्ण प्रयोग, अनंत कलाओं की गूंज और शिल्प दिखाई दे। लोक नाट्य शैली, नुक्कड़ नाट्य शैलियों के भी और हिन्दी नाटक की अपनी अस्मिता का अन्वेषण करते हुए यह तभी संभव है जब हिन्दी रंगमंच नियमित और प्रयोग शील होना है उसकी जडें व्यापक और गहरी होना है।

छटे दशक तक आते-आते रंगमंच इतना सक्रिय सशक्त माध्यम विविध रंगी और रचनात्मक लगा कि कई कवि-कथाकार नाट्य लेखन की ओर मुड़े हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मणि मधुकर, गिरिराज किशोर, मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे ने उस समय हिन्दी नाट्य को संमृद्ध किये हैं। कथाकार से नाटककार बनना इतना आसान नहीं है। प्रस्तुतीकरण प्रक्रिया से जुड़ना और परिवर्तित संस्करण को लाना एक दृश्य विधा की जटिल संरचना का प्रमाण है। इस प्रक्रिया के बारे में गिरीश रस्तोगी इस प्रकार लिखती हैं कि – " कथाकार से नाटककार अथवा कथा लेखन से नाट्य लेखन तक आने की प्रक्रिया इतनी जटिल है और कथाकार के लिए वस्तुतः अपने भीतर अपने सोच और कल्पनाओं में, भाषा और संरचना में इतना बदलाव लाने की जरूरत होती है कि उससे कथा वस्तु का संघटन, पात्रों की परिकल्पना और चित्रण, भाषा और शिल्प सब अचानक प्रभावित होता है। इस संघर्ष और अनजाने व्याप्त इस कमजोरी से दृश्य पक्ष के दबाव से लेखक अपनी रचना में व्यक्त होता दिखता है।

कहानी का रूपांतरण यह प्रक्रिया समकालीन परिवेश से उपजा हुआ है। कहानी का रूपांतरण क्या है? इसी सवाल से शुरूआत करें तो कह सकते हैं कि कहानी पढते समय पाठक जिस अनुभूति का साक्षात्कार करता है और सूक्ष्म रूप से छुपा हुआ जो दृश्य संसार उसके सामने बनाता संवरता है उन दृश्यों को रचना के भीतर से तलाश करके मंच पर प्रदर्शित करने से ही कहानी के रूपांतरण का रूप बनता है। एक पाठक जब कहानी को पढता था या सुनता है, उसी समय कहानी के पाठ के समानांतर

वह कहानी को दृश्यात्मक रूप से भी देखता चले, इसी कल्पना को देवेन्द्रनाथ अंकुर ने अनेक रंग प्रयोग से साकार किये हैं।

दरअसल, इस प्रयोग में कहानी से उस अदृश्य मर्म को पकड़ने की कोशिश है, जो कहीं एक दो शब्दों या वाक्यों के बीच उपस्थित रहता है। इस प्रक्रिया में कहानी की दुनिया छोटी होते हुए भी उन कई अर्थ छायाओं को उजागर करती है, जितनी केवल पढने पर अनुभव नहीं किया जा सकता। कहानी के नाट्य रूपांतरण में कथानक परिवर्तन के नाम पर कथा के विस्तार को देख सकते हैं। चयनित पाँच कहानियों में यही देखा गया है कि सभी कहानियों के नाट्यरूपांतरण में कथा को विस्तृत किया गया है। इस प्रकार विस्तार के लिए नाट्य रूपांतरण में अनेक दृश्यों को जोड़ा जाता है।

रूपांतरण एक तरह से आम आदमी की कहानी को समझाने के लिए प्रयत्न करता है। क्योंकि पाठक अगर कहानी को समझ भी नहीं पाता है तो उसके सामने विकल्प होता है कि वह कहानी को कई बार पड़े - कहानी में अधिकतर वर्णन होता है। यह अलग बात है कि किसी कहानी में अपवाद के रूप में संवाद अधिक मिल जाते है। नाट्य रूपांतरण में अधिकतर यह संवादों के रूप में बदल जाता है। यह भी विस्तार का एक कारण है। कहानी की नाट्य रूपांतरण तब सृजन होता है और कथानक की बिन्दुओं को विस्तार के साथ लेकर चलता है।

यदि नाटक का परंपरागत चौखट टता है और एक कहानी, अपने मूल स्वभाव के अनुरूप छोटे-छोटे परिवर्तनों आदि के साथ रंगमंच पर प्रस्तुत की जाती है, जिससे दर्शक को कहानी का भी रस मिलता है और नाटक का भी। सहज, सरल लगते हुए भी इस विधा की अपनी कठिनाइयाँ है. इस पर नेमिचन्द्र जैन स्पष्ट रूप से इस प्रकार लिखते है कि - "इन सब उपलब्धियों के बावजूद, यह बात अपनी जगह सही है कि कहानी का रंगमंच नाटक के रंगमंच का स्थानापन्न नहीं हो सकता। आज के दौर में एक हद तक वह कुछ जरूरतों तो पूरी करती, पर एक था अधिक कहानियों एक वास्तविक नाटक की जगह

नहीं ले सकती। कहानी का रूपांतरण एक नए आस्वाद के लिए, जायका बदलने के लिए तो ठीक है, पर इसे ही रंग कार्य का ए मात्र या प्रमुख रूप मानना एक तरह का सरलीकरण है।

प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी सत्याग्रह" के नाट्यरूपांतरण को देखा जाये तो कहानी को सिर्फ आधार बनाया गया है और उसके अनेक घटनाओं को जोड़कर एक नया नाटक बना दिया है। कहानी में जहाँ मात्र 11 पृष्ठ हैं कहीं इसके नाट्य रूपांतरण में 57 पृष्ठ हैं। रूपांतरण में बहुत कुछ जोड़ा गया है। कहीं-कहीं कुछ बदला भी गया है। लेकिन फिर भी शैली को मूल के अनुसार रखा गया है। उदाहरण इस प्रकार है - कहानी में रू काग्रेस से हुजूर कहे कि तुम हड़ताल बन्द करा दो, तो सबको सरकारी नौकरी दे दी जायेगी। उसमें अधिकांश बेकार लोग भरे पड़े हैं, यह प्रलोभन पाते ही फूल उठेंगे। रूपांतर में रू "ऐसा कीजिए हजूर, आप राजनीतिक पार्टियों से कह दें कि हड़ताल वापस ले लो तो सबको सरकारी नौकरी दे दी जायेगी उनमें अधिकांश बेकार लोग भरे पड़े हैं। इस रूपांतर में तो सफदर दृश्य भी कथयगत विषय को और भी सशक्त और प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए समूहगान का सहरा लेते हैं। जिस शैली में कहानी के संवाद हैं, उसी शैली में संवाद को गाना बनाकर विस्तृत किया है। जैसे -

खान बहादुर मैं चाहु तो चलती हवा को रोक हूँ ठहरी को चला हूँ सूखे में बाढ कर दूँ मैं सैलाब सुखा दूँ पत्थर को आब कर दूँ मैं पानी को जला हूँ अजी, ये सब तो मामूली बातें हैं। अगर मैं ठान लूँ तो गेहूँ के गिरने भाव को मैं फिर से चढा हूँ सोने के दाम काट दूं चाँदी के बढ़ा दूं। कहानियों में विविधता की है। थोड़े-से परिश्रम से ही अलग अलग कथ्य को, अलग-अलग शैली को, अलग-अलग भाव दशा को, अलग-अलग सामाजिक परिवेश को कहानियाँ सुनी जा सकती है। ऐसी विविधता नाटक में बहुत आसानी से नहीं मिल सकती। कथाओं का जो विराट और विपुल साहित्य संसार हमारे सामने हैं, इसमें कथ्य का बड़ा विस्तार है। अनेक तरह के अनुभव को कहानियों के माध्यम से रंगमंच पर लाया जा सकता है और उसे दर्शकों तक पहुँचाया जा सकता है। इसी प्रकार शिव मूर्ति द्वारा रचित कसाई बाड़ा"

कहानी को स्वयं उन्होंने ही नाट्य रूपांतरित किया है। कहानी के सारे घटनाओं को नाट्य रूपांतरण में प्रस्तुत किया गया है। बल्कि कुछ संवाद, पात्र आदि जोड़े गये हैं। लेकिन घटनाक्रम कहानी के क्रमानुसार नहीं है। कहानी में कथा का आरंभ ऐसे होता कहानी में रू गाँव में बिजली की तरह फैलती है कि शनिचरी धरने पर बैठ गयी है, प्रधान जो के दुआरे। लीड़रजी कहते हैं, जब तक प्रधानजी उसकी बेटी वापस नहीं करते, शनिचरी अनशन करेगी, आमरण अनशन नाट्य रूपांतरण में पहली घटना कुछ इस प्रकार है - गाँव की पगडंडी रात का अंधेरा। एक 15-16 वर्ष की लड़की भागती जा रही है गाँव की ओर। उसके पैरों पर और एकाध बार पूरे शरीर पर प्रकाश पड़ता है। स्टेज से उसके ओझल होती ही चार-पाँच भयानक आकृति वाले कद्धावर गुंडा टाइप लोग मंच पर भागते हुए आते हैं। लड़की का पीछा कर रहे ये लोग मंच पर आकर हांफते हुए दाहिये-बाहें देखकर जायजा लेते हैं और फिर वे नेपथ्य की तरफ भागते हैं। रह-रहकर पड़ने वाली हल्की रोशनी में खूंखार आँखें चमकती है।"

कहानी के लेखक और नाट्य रूपांतरकार एक होने पर भी रूपांतरण में कहीं कुछ जोड़ा भी गया है, कहीं कुछ छोडा भी गया और कहीं कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं। कहानी में जो आंचलिक बोली की प्रयोग किया गया है नाट्य रूपांतरण में भी वहीं उपयोग किया गया है। लेकिन रूपांतरण की नाटकीयता आँचलिकता आदि का भाव लाने के लिए भाषा शैली में थोडा बहुत परिवर्तन किया गया हैं। 50 से अधिक बार इस कहानी का मंचन हुआ है। बहुत सफलीकृत नाट्य प्रस्तुतियों में कसाई बाड़ा" को भी गिनाया गया है।

प्रसिद्ध रंगकर्मी मोहन राकेश द्वारा लिखा गया प्रसिद्ध कहानी परमात्मा का कुत्ता" को जैनेन्द्र मित्तल ने व्यापक बनाने का प्रयत्न किया। इसलिए कहानी की घटना के साथ-साथ कुछ और घटनाओं को भी नाट्य रूपांतरण में स्थान दिया गया है। कहानी में परमात्मा का कुत्ता (किसान) का कोई नाम नहीं हैं। लेकिन नाट्य रूपांतरण में उसको "साधुसिंह" नाम से संबोधित किया गया है। नाट्य रूपांतरण को

विस्तृत बनाने के लिए कुछ घटनाएं जोड़ी गई है। कहानी का आरंभ कुछ इस प्रकार कहानी में रू बहुत से लोग यहाँ-वहाँ सिर लटकाए बैठे थे जैसे किसी का मातम करने आये हो। कुछ ले..... हो जाती है या नहीं। प्रस्तुति में उपर्युक्त वर्णन को कुछ सीमित कर दिया गया - रूपांतर में रू किसी छोटे जिले की कचहरी का दृश्य। मोटर का हॉर्न तांगे व घोड़े के टापों की आवाज। खोम चेवाले.... पास प्रकाश होती है।

इस कहानी के नाट्य रूपांतरण में बहुत कुछ जोड़ा गया है। और कहीं कुछ बदला भी गया। फिर भी भाषा शैली का ध्यान रखा गया है, भाषा शैली को बदल नहीं गया है। ये अलग बात है कि सुविधानुसार कुछ शब्दों आदि को बदला गया है। कहानी में जहाँ लड़के का पात्र हैं वहीं नाट्य रूपांतरण में उसे लड़की बना गया है ताकि मंचन में और भी भावुकता का निर्माण हो सके। जैसे - कहानी में; यह मेरे भाई का लड़का है जो अभी से तपोदिक का मरीज है। रूपांतर में रू यह मेरे भाई की लड़की है जो अभी से तपोदिक की मरीज हो गई है।" परमात्मा का कुत्ता" कहानी में अधिकतर बोलचाल की भाषा ही है। क्योंकि कहानी का विषय भी ऐसा ही है। लेकिन नाट्य रूपांतरण के भाषा शैली में अंतर नहीं आया है। यह रूपांतरण मंचन की दृष्टि से सफल हैं। इसको प्रकाशित रूप में भी पाया जा सकता है।

नंगी आवाजें सहादत हसन मंटो की प्रसिद्ध कहानी है। इसको जितेन्द्र मित्तल ने रूपांतरित किया है। इस कहानी से एकाध घटना तो निकाला गया है। लेकिन विस्तार से नाट्य रूपांतरण को बढ़ाया गया है। कहानी में 7 पृष्ठ है तो नाट्य रूपांतरण में 62 पृष्ठ है। इसका घटना क्रम भी कहानी के अनुसार नहीं है मंचन को दृष्टि में रखकर घटनाक्रम को रखा गया है। रूपांतरकार ने अपने अनुसार अपनी भाषा रखी, लहजा पात्रों के अनुसार रखा। केवल एक ही वाक्य को नाट्यरूपांतरकार किस प्रकार संवाद रूप दे दिया है, उसको समझने के लिए नीचे दिया गया उद्धरण से हमें पता चलता है - कहानी में रू मेरा शादी कर दो, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा। रूपांतरण में ; गामा : (अटकते हुए) भो....लू.. भोलू ; नशों में) हूँ....ध् गामा ; (सकुचाते हुए) भोलू भोलू ; (थोड़े तेज स्व में) हाँ। चुप्पी (गामा चारों तरफ देखता है फिर

हिम्मत जुटाकर) गामाः ..... भोलू... भोलू ; (नाराजगी से) क्या है? चुप्पी भोलू ; अबे कुछ कह भी रहा है? गामा : (झटके से) भोलू मेरी शादी कर दें।"

नाटक में नाटकीयता होती है। उस पर जोर देने से ही नाटक के पूरे तत्व सफल हो जोते है। कहानी में केवल शादी कर दो" पंक्ति को नाटक रूपांतरण में एक पृष्ठ का संवाद किया गया है। रूपांतरण के संवाद में आत्मीयता की झलक मिलती है निम्न उदाहरण से विषय ज्यादा प्रभाव पूर्वक मालूम पड़ता है – कहानी में रू भोलू शर्मा गया। फिर बोला, वह जो कल्लन है, उसने तो हद ही कर दी है..... साला रात भर बकवास करता रहता है....साली उसकी बीवी की भी जबान तालू से नहीं लगती... बच्चे रो रहे हैं.... पर वह। रूपांतरण में ; "गामा रू यह पूछ क्या नहीं हुआ? इस की कल्लन की तो.... जब तो साले ने टाट लगाकर ऊपर सोने का इंतजाम किया है तब से सारी कालोनी को हवा लग गई है, जिधर देखो टाट के परदे लटके हुए है और परदों में ...किसी की धोती कहीं पड़ी है तो किसी का तहमत कहीं। बच्चे रो रहे हैं.. मगर साला फौजी अपने काम में लगा है। कल्लन तो रात भर बकवास करता है और उसकी बीवी की जुबान तो तालू से लगती ही नहीं है। दायें बायें जिधर भी नजर डालों कुछ न कुछ हो रहा होता है। अजीब आवाजें आती है, ऐसे में नींद क्या आयेगी ? खाका।"

इस प्रकार की स्थानों पर ऐसे परिवर्तन किये गये हैं जिस के माध्यम से भाषा शैली बदली है। लेकिन जहाँ भी भाषा में फर्क आया वह सकारात्मक रूप में ही पाया गया है। रूपांतरकार जितेन्द्र मित्तल ने नाट्य रूपांतरण के माध्यम से कहानी के एक नई जिन्दगी प्रदान की हैं। नाट्य रूपांतरकार को सराहना करते हुए कहा गया है कि – मंटो जैसे सिद्ध हस्त कथाकार की इस पेचीदा कहानी का नाट्य रूपांतर निश्चय ही एक जोखिम भरा काम था। जितेन्द्र मित्तल ने जिस अद्भुत कल्पनाशीलता से कथ्य को नाट्य रूप में परिवर्तित किया है वह निःसंदेह उन्हें एक जागरूक नाटककार के रूप में दर्शकों –पाठकों के सामने ला

खड़ा करता है। नंगी आवाजें निः संदेह दर्शकों और पाठकों की चेतना को झकझोरते हुए, सोंचने की एक नई दिशा देता है।

पचासोत्तर नाटक की उपलब्धियों में इस कहानी नाट्यरूपांतरण एक नयी विधा के रूप में विस्तार पूर्वक साकार हो उठा है। कथाकार के शैली से नाटककार अथवा कथा लेखन से नाट्य लेखन तक आने की प्रक्रिया इतनी जटिल है और कथाकार के लिए वस्तुतः अपने सोच, कल्पना, भाषा और संरचना में बदलाव लाने की जरूरत है। कहानी लेखन से नाट्य लेखन तक जाने पर होनेवाले परिवर्तनों को प्रसिद्ध नाट्यकर्मी गिरीश रस्तोगी इस प्रकार व्यक्त करते हैं - "

1. कथा संघटन और परिकल्पनाएँ 2. निरर्थक, अनपेक्षित विस्तार 3. अतिरिक्त सतर्कता और शिल्प गत नवीन प्रयास का बल 4. शाब्दिक पक्ष की प्रधानता 5. पात्रों का स्पष्टीकरण और विश्लेषण अधिक 6. प्रत्यक्षत्व का अभाव.....आदि-आदि।

नाटक दृश्यात्मक है। उसमें कोई तात्कालिक या क्षणिक दृश्य का उपभोगता नहीं होता है, अगर होता भी तो उससे संपूर्ण नाटकीय प्रवाह प्रभावित होता है। लेकिन कहानी में जिन्दगी का कोई न कोई टुकड़ा मौजूद रहता है। इसलिए उस टुकड़ा को विस्तृत बनाने के लिए रूपांतरकार को उन नाटकीय स्थितियों, रंगयुक्तियों के चयन, बिंबों-प्रतीकों-संकेतों के चयन और प्रयोग, शैली और शिल्प गत नवीता की ओर अधिक ध्यान देना पड़ता है। इस पर पचासोत्तर नाट्य जगत में ज्यादा ही प्रयोग मिलते हैं।

हिन्दी साहित्य जगत में बहुत विधाओं में प्रयोग करके अधिक रंगकर्मी तादात्म्य स्थापित करते हैं। हिन्दी नाटक के कर्म को आगे ले जाने के विधा के रूप में यह नाट्य रूपांतरण प्रक्रिया सामने आता है। खाली किसी भी कृति को संवाद बद्ध कर देना ही नाट्य रूपांतर नहीं हो। पाठ्य दृश्य को रंग दृश्य बनाकर कल्पनाशील से काम लेना पड़ता है। कभी-कभी दर्शकों तक स्थिति को संप्रेषित करने के लिए नये ढंग

से पूरे दृश्य को सोचना पड़ सकता है। प्रेमचन्द और रेणु के कहानियों से यही कठिनाई को सामना करना पड़ा है।

यह विधा स्पष्ट रूप से दर्शकों को लेकर बाहर आयी है। रंगमंच के लिए नयी प्राण प्रतिष्ठा करने के लिए किए गए प्रयत्नों को दर्शक सफल भी किए हैं। सारे के सारे कहानी नाट्य रूपांतरण दर्शकीय चेतना से सफल हुए हैं। जो गहराई कहानीकार द्वारा मूल संवेदना के रूप में प्रयुक्त हुआ है वहीं संवेदना को रूपांतरकार ने अपनी कल्पना शक्ति से अधिक प्रभावशाली ढंग से एक नये विधा के रूप में प्रयुक्त किया है। निष्कर्ष के रूप में कहना है को आधुनिक संवेदना और रंग मंचीय संवेदना दोनों पैदा करने का श्रेय इस रूपांतरण प्रक्रिया को मिलता है।

2.5 अनुवाद

हर संस्कृति की कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं, उन विशेषताओं के अनुरूप, उस संस्कृति की भाषा में कुछ विशिष्ट शब्द और अभिव्यक्तियाँ होती हैं। अनुवाद आज की सर्वाधिक चर्चित विधा है। आज हिन्दी में लगभग हर विषय पर अनुवाद किया जा रहा है जैसे तकनीकी क्षेत्र, व्यावसायिक, सूचनापरक और साहित्यिक सभी प्रयुक्तियों के स्तर पर अनुवाद अनिवार्य बन गया है।

डॉ. शशिमुदिराज के मतानुसार – "अनुवाद का इतिहास भी उसी क्षण में आरंभ हुआ होगा जिस क्षण मानवीय भाषा के किसी अंश पर अंगुली रखकर किसी मानव समूह ने कहा होगा कि यह हमारी भाषा।" भारतीय साहित्य जगत के लिए अनुवाद कोई नयी बात नहीं है, यद्यपि अनुवाद प्रक्रिया से संबंधित विभिन्न पक्षों, सिद्धांतों समस्याओं और उनके निवारणीपक्षों या प्रतिपादक कालांतर में हुआ है। वर्तमान भारतीय भाषाओं में उपलब्ध रामायण, महाभारत, भागवत जैसे काव्य में प्रचलित अनुवाद प्रक्रिया के ज्वलंत उदाहरण है।

समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य विकास के क्रम में अनूदित रचनाओं का किसी न किसी रूप में योगदान रहा। अपनी मात भाषा या परिचित किसी भाषा में उपलब्ध अनूदित भाषा से अध्ययन से पाठक कई साहित्यिक सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों से संबंधित ज्ञान भी प्राप्त करता है। इसके साथ ही साथ हम यह देख सकते है कि इस तरह के अनुवाद के भावों व विचारों में एकरूपता की झांकी देखी जा सकती है। हमारे देश में या संसार के अन्य देशों में अगर लोगों के भावनाओं व विचारों के धरातल पर एक करना है तो उसका एक ही सेतु हो सकता है और वह है अनुवाद सिर्फ अनुवाद।

सातवें दशक में हिन्दी नाट्य लेखन के साथ-साथ भारत की अन्य भाषाओं को बेहतरीन नाटकों का हिन्दी में अनुवाद एवं मंचन की प्रक्रिया भी आरंभ हो गई। उस समय हिन्दी में नाट्य लेखन के अभाव को पूरा करने के लिए और हिन्दी रंगमंच को गति, प्रयोग शीलता और सृजत धर्मी चेतना देने के लिए यह अच्छा कदम था।" हिन्दी भाषा में जो उल्लेखनीय अनुवाद हुए है उनमें प्रमुख है - गिरीश करनाड़ के तुगलक, हयवदन, ययाति, बादल सरकार के एवं इन्द्रजीत, बाकी इतिहास, पगला घोड़ा, अंत नहीं, जुलूस, बुआँजी, विजय तेंदुलकर के खामोश अदालत जारी है, घासीराम कोतवाल, गिधाड़े, आद्य रंघाचार्य का सुनी जनमेजय इत्यादि। भारतीय भाषाओं के साथ विदेशी नाटकों के अनुवाद एवं मंचन की ओर भी प्रवृत्ति बढ़ी है। शेक्सपियर, मोलियर, ब्रेख्त, चेखव, बेकेट आदि की रचनाएं अनुवदित होकर मंचित भी हुए हैं।

अनुवाद मनुष्य सभ्यता के विकास के एक दूसरे ही पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है - भाषाओं का संप्रेषण असहाय स्थिति को पहुँच गया तब अनुवाद की आवश्यकता महसूस हुई। इस अभिशाप को वरदान में परिणत करने का उपाय खोजा गया अनुवाद में विभिन्न भाषाओं के इस महासागर में अनुवाद ही सेतुबंध बनकर आया। इस प्रकार हमने मानवीय सभ्यता के विकास की एक समानांतर दिशा अनुवाद के माध्यम से उद्घाटित की।

डॉ. नगेन्द्र के कथानुसार कथ्य और कथन का समन्वय रूप ही साहित्य है। यह साहित्य सृजन जितना क्लिष्ट कार्य है, इस का अनुवाद में उतना ही जटिल है। साहित्य का अनुवाद" कहने पर अनुवाद का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो जाता है और साथ ही साथ संबंधित समस्याएं भी विभिन्न एवं असंख्य हो जाती हैं। इस संदर्भ में नेमिचन्द्र जैन का राय सही लगता है कि – "आज भी हमारे देश की प्रत्येक भाषा में उच्च कोटी के अभिनय नाटकों की इतनी कमी है कि रंगमंच के उत्थान की कोई भी योजना अथवा परिकल्पना देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं के नाटक साहित्य के अनुवाद के बिना पूरी नहीं हो सकती। वैसे भी संसार के रंगमंच के इतिहास में रंगकर्म के उत्कर्ष के युग अनिवार्य रूप से अन्य भाषाओं की श्रेष्ठ नाटकों के अनुवाद के युग भी रहे हैं। संसार की कम उन्नत भाषाएं ऐसी हैं जिनमें शेक्सपियर, इन्सन आदि महान नाटक कारों की रचनाएं अनूदित होकर अभिनीत न हुई हो।

वास्तव में, भारतीय भाषाओं के नाटक हिन्दी में अनूदित होकर खेले जाने की इस प्रक्रिया ने पूरे देश के रंगमंच को प्रभावित किया, क्योंकि हिन्दी केन्द्रों विशेषकर महानगरों में इसके प्रदर्शनों से अन्य भाषाओं में रंग कर्मी भी उनसे परिचित हुए। धीरे-धीरे हिन्दी अनुवाद से या फिर सीधे ही, देश की अन्य भाषाओं में नाटकों के अनुवाद का सिलसिला चल निकला। ठीक उसी तरह जैसे हम दुनिया की दूसरी तमाम भाषाओं की नाटकों या दूसरी रचनाओं को अपनी भाषा में अनुवाद उसके अंग्रेजी अनुवाद से करते हैं।

अनूदित नाटकों के माध्यम से हिन्दी रंगकर्मी को अनेक प्रकार की सामाजिक स्थितियों, विविध चरित्रों और कथ्योंवाले नाटक को खेलने का मौका मिला और उसके साथ अनेक शैलियों और शिल्पों के नाटकों से भी उसका सामना हुआ। इससे हिन्दी में नाट्य प्रदर्शन की कला को बहुत थोड़े ही समय में समर्थ होने का अवसर मिला। हिन्दी रंगमंच में यह काम अभी तक ठीक से नहीं हो पाया है। पर हिन्दी रंगमंच का भविष्य बहुत कुछ इस चुनौती का सफलता पूर्वक सामना करने पर ही निर्भर है।

भाषा शैली की दृष्टि से नाटक को अनुवाद करना है तो एक अच्छे अनुवादक के सामने कई प्रश्न उभर जाते है और देखा जाये तो उसे भाषा शैली की दृष्टि से कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पठनीय नाटकों के अनुवाद में अनुवादकों को ज्यादा परेशानी नहीं होती, लेकिन अगर वो अभिनय प्रधान नाटक का अनुवाद करना चाहता है तो उसके सामने कई समस्याएँ एक साथ उठ खड़ी होती है। अनुवाद को वास्तविक समस्या का समाधान तब करना पड़ता है जब उसे अपने अनुवाद को अभिनय भी बनाना पड़ता है।

नाटक के अनुवाद के लिए सबसे आवश्यक शर्त यह है कि उसे रंगमंच का ज्ञान होना चाहिए। मूल नाटक की मंच-परंपरा का तथा जिस काल की जिस भाषा में अनुवाद किया जा रहा है, उसकी मंच परंपरा का मूल परंपरा को जाने बिना अनुवादक नाट्य को उन प्रतीकात्मक संकेतों को नहीं पकड़ पाएगा। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अनुवाद एक भाषा के दूसरी भाषा में जाने का संघर्ष है। रूप, शैली, अर्थ की विविध छवियों से जुड़े हुए रचनात्मक साहित्य के स्तर पर अनुवाद का संघर्ष सुस्पष्ट है। यहाँ अनुवाद निश्चय ही पुनर्रचना ही प्रक्रिया और संघर्ष से गुजरता बादल सरकार ने बंगाली नाटक जगत में नाटककार के रूप में सब का ध्यान आकर्षित किया है। उनका नाटक बाकी इतिहास" को हिन्दी में नेमिचन्द्र जैन ने अनुवाद किया है। क्षेत्रीय जीवन को व्यक्त करने में, भाषागत सामीप्य को दिखाने में नेमिचन्द्र जैन सक्षम होते हैं। पात्र की अवस्था, जीवन के अभिनय उसके भावात्मक और बौद्धिक स्तर आदि को, संपूर्ण नाटक के मूल मंतव्य की अभिव्यक्ति को अनुवादक स्पष्ट संप्रेषण करते हैं। बोल चाल की भाषा की उपयोग करके नेमिचन्द्र जैन इस नाटक को हिन्दी दर्शक के मन बहलाव नाटक बनाये हैं। नीचे दिया गया उदाहरण से हम इस विषय को और भी स्पष्ट रूप से मान सकते हैं। यदा - वासु ; खबर सुनी है? शरदः क्या खबर? वासुः आपके हरीकिसन बाबु जाने वाले हैं। शरद : कहाँ जाने वाले हैं? वासु : कोई अच्छी नौकरी हाथ लग गयी है। शरदः हूँ... ये बात कितनी बार सुन चुका हूँ। वासु : नहीं, नहीं,बड़ी गरम खबरद्य चलो गये तो आपकी असिस्टेंट प्रोफेसर कौन रोक सकता है? शरद

: इससे अच्छी नौकरी हरीकिसन को कोई नहीं देगा, समझो। ऐसी खबरों पे कान देना बेकार है।"

भारतीय रंगकर्म में प्रतिभावान कलाकारों में गिरीश करनाड़ एक है। कन्नड़ रंगमंच को सुसंपन्न करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय रंगमंच के सफल प्रस्तुतियों में इस "तुगलक" को भी गिनते है। यह नाटक बीते युगों की स्मृति को जगाकर आत्मोत्सर्ग के वातावरण को पैदा करते हैं। एक व्यक्ति के मशहूर रूपों को छोड़ कर उनका सही व्यक्तित्व की परिचय इस नाटक में मिलता है। "तुगलक" की निजी और मानवीय जीवन के अन्वेषण को पकड़ने में गिरीश करनाड़ सफल सिद्ध होते हैं। गिरीश करनाड़ के प्रयत्न को दृष्टि में रखकर इब्राहीम अल्काजी इस प्रकार लिखते है कि – किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के द्वि-स्तरीय जीवन का पारस्परिक संबंध क्या था उसके सार्वजनिक और शासकीय जीवन और उसके अपने और व्यक्तिगत जीवन में? शासन संबंधी जीवन में व्यस्त रहने का मतलब पारिवारिक और व्यक्तिगत खुशियों की बलि में दिखाई पड़ता था। चरित्र को व्यक्तिगत जीवन के परोक्ष में छिपी ताकतों और दबावों का नतीजा प्रायः राजनीतिक चालों में भी देखने को मिलता था। इन सब नाटकीय घटनाओं का विवेचन हमें राजनीतिक परिस्थिति को समझने-बुझने की नई दृष्टि देता है।"

इस नाटक "तुगलक" को हिन्दी में प्रसिद्ध रंगकर्मी बी. वी. कारंत ने अनुवाद किया। नाटक के अनुवाद की भाषा में एक आश्चर्य जनक प्रवाहः और चमत्कार है। इसमें ओज पूर्ण, प्रभावशाली लंबे-लंबे भाषण को अच्छी तरह अनुवादक ने हिन्दी कृत किया है। वास्तव में इस नाटक को नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा के लिए ही तैयार किया गया है। भाषागत अपनापन को बी.वी. कारंत स्पष्ट रूप से परिलक्षित रखने की चेष्टा इस नाटक में करते हैं। नीचे दिया गया उद्धरण से हमें यह विषय स्पष्ट लगता है। यथा – ढिढोचरी : सुनो ऐ दिल्ली शहर के बाशिंदों ! हुजूर ए आला शाहे शाहन, वालिएँ-जहाँन का ताजा फरमान सुनो। आज श्याम को नमाज के बाद, वही मस्जिद के सामने वही सेहन में एक खास जलसा होगा। इस जलसे में बंगाल के शेख इमानुद्धीन, हिन्दुस्थान के आली मर्तजा बुजुर्ग, लोगों को खिताब करेंगे। अवाम को अपने पाक ख्यालात से नवाजेंगें, इनसाफ पसंद सुलतान के तर्जे-अमल का मुफस्तिल तफ्सिरा पेश

करेंगे। बादशाह सलामत से सरजद हुई गलतियों, जुल्मों और मजहबी बेकायदगियों का पूरा जायजा लेंगें।

कन्नड़ में लोक नाट्य शैलियों में लिखा हुआ प्रसिद्ध नाटक "हयवदन" है। इस नाटक को भी बी.वी. कारंत ने ही हिन्दी में अनुवाद किया। "हयवदन" यक्ष गान शैली में लिया गया है। लोक नाट्य शैली में इस नाटक को खेला गया है। देवदत्त, कपिल, पद्मिनी के बीच में होनेवाले इस नाटक में पूर्ण मनुष्य की तलाश की प्रयत्न है। भागवत और नट-नटी द्वारा कहानी सुनने की प्रक्रिया अनुवाद में भी अपनी रूप खो नहीं बैठी है। मनुष्य आकार और घोड़े के चेहरे से "हयवदन" की सष्टि निश्चित ही गिरीश करनाड़ की विशेष दृष्टि की अभिव्यक्ति है। यथा - भागवत : क्यों भाई ? तुम्हें क्या हुआ? नट2 : कब से चीख रहा हूँ, पर आप कान ही नहीं देता भागवत : क्यों क्या कहना है? नट2 : आपने हमारे साथी नट से कहा कि मैं घोड़े का चेहरा देखकर डर गया हूँ। लेकिन चेहरा मोहरा ही नहीं, कान के सिरे से लेकर पूँछ की गुच्छी तक पूरा-पूरा घो...ध् इस नाटक का अनुवाद बी.वी कारंत ने अच्छी तरह किया है। इसमें स्थानीय बोली की इस्तेमाल भी किया था। मूल भाषा में जो सामीप्यता है वहीं अनुवाद भाषा में भी दिखाने का प्रबल अनुवादक करते हैं। मुहावरा और शब्दों का सही इस्तेमाल किया गया है। हिन्दी प्रदेशों में अकसर सुनने वाली गीतों की भी प्रयोग हुआ है। जैसे "आया एक सवर। जाने किस देश का बाँका सरदार? जान क्यों उसके सीने पर मोतियाँ के फूल लाल-लाल है, नयन बने हैं पत्थर के दाने, देह पड़ी है ठंडी? उजला घोडा दौड़ता चला ताल -सरोवर, पहाडों-खेतों के पार दिशाहीन-पथहीन। आया एक सवार। जाने किस देश का बांका सरदार श्घीसाराम कोतवाल" मराठी के प्रसिद्ध नाटककार विजय तेंदूलकर द्वारा रचा गया है। इसको वसंतदेव ने हिन्दी में अनुवाद किया था। संगीत, नृत्य, गीत और वाक् विन्यास को सही रूप में अनूदित करने में वसंदेव सफल हुए है। इस नाटक में भी लोक नाट्य के ज्यादा तत्वों का उपयोग हुआ है। हिन्दी के कस्बाती बोली को अच्छी तरह उपयोग किया गया है। एक पतनशील विलास प्रिय समाज ही घासीराम कोतवाल जैसे व्यक्ति को जन्म देती है और हत्या भी करती है। बहुत

प्रभावशाली ढंग से खेला गया यह नाटक अनुवाद जैसा लगता ही नहीं है। बी.वी कारंत के निर्देशन में हिन्दी प्रदेश में अनेक बार यह नाटक खेला गया है। नीचे दिया गया उद्धरण पढने से इस नाटक के अनुवादक की भाषागत क्षमता का हमें परिचय मिलता है द्य यथा –

“औरत: गजब हो गया सरकार, हमारी रच्छा करें। हमारे आदमी को और देवर को कुतवाल के सिपाई पकड़ के ले गिये हैं। मेरे ससुर अन्तै सिधारे हजूर, उनकी अर्थी को चिता पै नहीं धरने दे रये हैं। बारने का परिमिट बनाया है सिरकार, असली है, उसको जाली कैते हैं। हम क्या करें माई बाप, सुबू से लहास मसान में डली है, कुत्ते जमा हो गिये हैं – अनदाता इन्साफ होय!”

इस प्रकार पचास के बाद अनुवाद हिन्दी नाटक के एक विधा के रूप में उभरकर बाहर आता है। हमें केवल भारतेन्दु हरिश्चन्द द्वारा अनूदित मुद्राराक्षस और मोहन राकेश द्वारा अनूदित मृच्छकटिक ही सबसे उल्लेखनीय और उपयोगी थे। लेकिन सत्तर के बाद बी.वी. कारंत, वसंत देव जैसे अनुवादक ने बंगला, मराठा, कन्नड़ भाषाओं से अनेक नाटकों को हिन्दी में अनूदित किये है। “तुगलक” और श्घासीराम कोतवाल” दोनों नाटकों का अनुवाद इतना वपूर्ण है जैसे पहली बार पढने से ही उसको हमें अनूदित रचना समझने में असफल हो जाते हैं।

वास्तव में पद्यात्मक नाटक का एक ऐसा विशेष तत्व है जिसकी अनुवाद में रक्षा विशेष रूप से कठिन हो जाती है लेकिन “हयवदन”, श्घासीराम कोतवाल” नाटकों के अनुवाद में शिल्प गत सूक्षमताओं को साथ लेकर अनुवादक ने जीवन के मानवीय संबंधों की सघन 3 द्य पद्यों के रूप में अच्छी तरह अनुवाद किए हैं। उपलब्धि परक विषय यह है कि विभिन्न पात्रों की अपनी-अपनी भाषा पत्रों नुरूप विविधता और विभिन्नता से रहते हुए भी पत्रों नुकूल भाषा की सही रूप में उपयोगीकरण हुआ है।

भारतीय भाषाओं में से ही नहीं अंग्रेजी भाषा से ब्रल्तोल्ट बेख्त, इब्सन, बर्नाड़शा, बेकेट आदि विश्व प्रसिद्ध नाटक कारों के कृत्यों को भी हिन्दी में अनुवाद होकर देश की कई भाषाओं में लोक प्रिय ही नहीं हुए है, गलभग उन्हें मौलिक नाटकों जैसी स्वीकति मिली है। मल नाटकों के भावों, विचारों और शिल्प के संदर्भ की रक्षा अनुवादकों द्वारा हुआ है। यह संतोष की बात है कि पिछले दस पंद्रह वर्षों में हिन्दी के रंग जगत में नाटकों के अधिकांश अनुवाद प्रदर्शन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ज्यादा प्रयत्न हो रहे हैं। इन प्रयत्नों से यह अनुवाद विघा अपने संप्रेषण शक्ति को और बड़ा कर गतिमान है।

निष्कर्ष

एक नाटककार अपनी नाट्य रचना के माध्यम से जो कुछ भोकता तक संप्रेषित करना चाहता है, वही उसका कथ्य होता है। नाट्य रचना करते समय नाटककार अपने ही जीवन से ऐसी अनुभूतियों को चयन करता है जो न केवल उसकी अपनी होती है बल्कि सबकी। रचना आयो में पर नाटक में जिस प्रकार अपना अलग अस्तित्व, पहचान और वैशिष्ठ्य समाहित है ठीक उसी तरह प्रभावगत आयो में पर भी नाटक विशिष्ठ गरिमा से युक्त है। अपने कथ्य गत विशेषता को दर्शक समूह तक पहुँचतने के लिए पचासोत्तर नाटक अनेक विधाओं की सहायता से संप्रेषन प्रक्रिया का आधार बनता है।

हिन्दी नाटक को विस्तारता प्राप्त कराने के लिए और दर्शकीय संप्रेषण को बढ़ावा देने के लिए अनेक नव्य विधाओं को सृजित करके मूख्य नाट्य विधा को मजबूत किया गया है। गीति नाट्य, लोक नाट्य, नाट्यरूपांतकण, नुक्कड़ नाटक और अनुवाद प्रक्रियाओं से पचासोत्तर नाटक गुजर कर एक नव्य रूप पाकर जन नाटक भी कहा गया है। गीति तत्वों से भरा हुआ “अंधायुग” नाटक लोक नाट्य तत्वों से समाहित हबीब तन्वीर के नाटक हिन्दी रंगजगत के लिए नव्य मार्ग प्रतिष्टित करने में अनवरत साक्षी हैं।

नुक्कड़ नाटक हिन्दी नाट्यांदोलन को एक कदम और आगे ले जाकर सामाजिक क्रिया व्यापारों से जाहिरा तौर पर जुड़ा है। सामान्य जन मानस तक अधिकाधिक संप्रेषण की सुविधा को ध्याम में रखते हुए नुक्कड़ नाट्य प्रस्तुति नुक्कड़ नाटक के रूप में ही सार्थक और प्रासंगिक है। और उसी प्रकार नाट्य रूपांतरण प्रक्रिया भी हिन्दी नाट्य धर्मिता को जागृत करने में सफल हुई है। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यास और कहानियों को नाटकों के रूप में रूपांतरित कर दर्शक की साझेदारी को पचासोत्तर नाटककार स्पष्ट करते हैं। नये सिरे से सोचने के लिए और कल्पना शक्ति को विस्तार बनाने में यह विधा सफल होकर हिन्दी नाट्य सुशोभित करने में सफल होती है।

अनुवाद प्रक्रिया पुरातन काल से नाटक रचना का एक अंग बन गयी है। हिन्दी में पिछले सौ वर्षों से लगातार अंग्रेजी से जो अनुवाद हुई सबसे ज्यादा प्रभाव पचास के बाद के नाटककों से अधिक हुई है। तुगलक, हयवदन, घासीराम कोतवाल, जुलूस सबके सब नाटक अनुवाद को विधा परक संभावना देने में अपनी नर्णायक भूमिका निभाते हैं। इस प्रक्रिया के कारण हिन्दी नाटक बहुत सक्रिय, समृद्ध और बहु मुखी हो सका है।

इस प्रकार हिन्दी नाटक को समृद्ध बनाने में उक्त चर्चित किये गये विधाओं के कारण दर्शकीय चेतना के स्तर पर एक बहुलता मिल गई है। किन्तु कुछ जगह भाषा और रचना के कुछ और भी सूक्ष्म पक्ष हैं जिन पर नजर डालना जरूरी है। इस अध्ययन से हमें यह विषय और एक बार पता चलता है कि नाटक समुद्र जैसा है इस में जितने भी विधा मिलने से ही अनेक विधाओं के लिए प्रायः राह देखती रहती है।

संदर्भ

[1]. अंधायुग – धर्मवीर भारती – पृ –130

[2]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ– 42

[3]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ–23

[4]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ – 35, 36

[5]. रागदरबारी – श्रीलाल शुल्प, गिरीश रस्तोगी – पृ – 12

[6]. रागदरबारी – श्रीलाल शुल्प, गिरीश रस्तोगी – पृ – 21

[7]. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा प्रस्तुत लहरों के राज हंस के परिचय पत्र में प्रकाशित लेखक वक्तव्य से उद्दत

[8]. लहरों के राज हंस – मोहन राकेश – पृ–127

[9]. लहरों के राज हंस – मोहन राकेश – पृ–127

[10]. लहरों के राज हंस – मोहन राकेश – पृ–128

[11]. आधे अधूरे – मोहन राकेश – पृ – 12

[12]. कबिरा खड़ा बाजार में – भीष्म साहनी – पृ– 99

[13]. बकरी – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – पृ–62

[14]. करफ्यू – लक्ष्मीनारायण लाल – पृ– 125

[15]. पाँच नाटक – वजाहत – पृ– 108

[16]. तड़प मुक्ति की – माता प्रसाद – पृ – 60

[17]. मानव समाज – किंग्स लेडेविस – पृ – 318

[18]. भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास –डॉ. पी. यम.थामस –पृ– 36

[19]. साठोत्तर हिन्दी नाटक – लवकुमार लवलीन – पृ–71

[20]. आधे अधूरे – मोहन राकेश – पृ–21

[21]. आधे अधूरे – मोहन राकेश – पृ – 12

[22]. आधे अधूरे – मोहन राकेश – पृ– 92

[23]. सिंहासन खाली है – सुशील कुमार सिंह – पृ– 53

[24]. रागदरबारी – श्री लाल शुल्क – पृ– 16

[25]. साठोत्तर नाटककार – पृ–76

[26]. द्रौपदी – सुरेन्द्र वर्मा – पृ– 19

[27]. बकरी – मोहन राकेश – पृ– 34, 35

[28]. कबिरा खड़ा बाजार में – हानुश – पृ– 15

[29]. वशीयत – नाग बोड्स – पृ– 42

[30]. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक – डॉ. श्याम शर्मा – पृ–69

तृतीय अध्याय

आधुनिक नाटक और आधुनिक नाटक की अनूठी विशेषताएं

3.1 स्वच्छंदतावाद और नाटकीय विषय

उन्नीसवीं शताब्दी तक, अधिकांश यूरोपीय नाटक कारों ने प्राचीन मिथकों या पौराणिक इतिहास से अपने दुखद भूखंडों और स्टॉक पात्रों और दृष्टिकोणों के एक भंडार से उनकी हास्य सामग्री को आकर्षित किया। नाटकीय विषयों के ये विकल्प पेरिक्लिन एथेंस के दिनों से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक की प्राथमिकताओं को दर्शाते हैं। एक ओर, ये विकल्प इस विश्वास को प्रदर्शित करते हैं कि वास्तव में महत्वपूर्ण चीजें केवल उन लोगों के लिए हुईं जो सामाजिक स्तर पर उच्च थेय दूसरी ओर, वे दिखाते हैं कि कलाकारों ने अपनी क्षमताओं का परीक्षण नवोन्मेष के माध्यम से उतना नहीं किया जितना कि नकल द्वारा। इस प्रकार परिचित कथानक और पात्र लिखने लायक बने रहेय नई प्रतिभाओं ने पुरानी सच्चाइयों को नाटकीय रूप देने के नए तरीके खोजकर खुद को प्रकट किया।

हालाँकि, स750 के दशक तक, वही परिवर्तन जो राजनीतिक क्रांति को जन्म दे रहे थे, नाटक को प्रभावित करने लगे। अधिक से अधिक नाटक सामाजिक सीढी के निचले पायदान पर रहने वालों के परीक्षणों और क्लेशों पर ध्यान केंद्रित करने लगे। इस तथाकथित बुर्जुआ नाटक से एक परिवर्तन उभरा जो नाटकीय गतिविधि के महान काल में से एक, आधुनिक युग में समाप्त होता है, जो 1870 के आसपास शुरू होता है।

सामान्य लोगों के अनुभवों में रुचि स्वच्छंदतावाद और इसके सामान्य स्थान के उत्थान के साथ एक उच्च बिंदु पर पहुंच गई। अठारहवीं सदी से पहले के साहित्य में गरीबों ने बहुत कम ध्यान दियाय जब

उन्नीसवीं सदी के लेखकों ने अपना ध्यान इन जीवनों की ओर लगाया, तो उन्होंने उन्हें ष्रोमांटिक" करके शुरू किया। आम जिंदगी कितनी भी गंदी और उबाऊ क्यों न हो, 5 रोमांटिक कलाकारों ने उसमें ईडेनिक मासूमियत का एक निशान देखा। महलों में नहीं रहने वाले जीवन को किसी तरह अदूषित माना जाता था।

यदि प्रारंभिक रोमांटिक लोगों द्वारा चुने गए नाटकीय विषय पूर्वजों द्वारा चुने गए लोगों की तुलना में व्यापक थे, तो जैसा कि हमने सुझाव दिया है, विषयों को प्राप्त उपचार यथार्थ वादी से बहुत दूर था। गरीबों को आदर्श बनाने की प्रवृत्ति ने भी डाकू का महिमामंडन किया, जो आने वाली क्रांतियों का संकेत था। इसके अलावा, एक नए आत्म-जागरूक राष्ट्रवाद को कई तरह के ऐतिहासिक नाटकों में अभिव्यक्ति मिली, जिन्होंने दो बार खोए हुए कारणों, स्वतंत्रता और राष्ट्रवाद की प्रशंसा की।

3.2 नाटक रोमांटिक

विचारों के लिए एक नया सैद्धांतिक आधार जर्मनी में तीन प्रमुख नाटक कारों के काम में उभरारू गॉटथोल्ड एप्रैम लेसिंग, जोहान क्रिस्टोफ फ्रेडरिक वॉन शिलर (1759–1805), और जोहान वोल्फगैंग वॉन गोएथे। इन लेखकों ने नाटकीय सामग्री की अपनी पसंद के लिए नए सैद्धांतिक औचित्य व्यक्त किए। शेक्सपियर के प्रशंसकों के रूप में, जिनके लिए नियोक्लासिसिस्ट नियमों के प्रति उनकी उदासीनता के कारण कृपालु थे, लेसिंग और शिलर ने विशेष रूप से नाट्य ग्रंथों में विविधता और स्वतंत्रता का समर्थन किया।

तीनों में से सबसे विपुल नाटककार, शिलर ने विशेष रूप से नाटकीय भूखंडों की सीमा को चौडा किया। जब उन्होंने अपने विषयों के लिए अतीत की ओर रुख किया, तो उन्होंने गोएथे को आकर्षित करने वाले पौराणिक आंकडों का चयन नहीं किया, बल्कि अपेक्षाकृत हाल के यूरोपीय इतिहास के देशभक्तों का

चयन किया। उनमें से प्रमुख हैं जोन ऑफ आर्क, जिसे द मेड ऑफ ऑरलियन्स (1801) शीर्षक से संदर्भित किया गया है, और विलियम टेल, स्विस राष्ट्रीय नायक (1804)

3.3 क्लोसेट ड्रामा

रोमांटिक काल के चरम पर, जैसे-जैसे अधिक विस्तृत नाट्य प्रदर्शन संभव हुआ, कई कवियों ने नाटक लिखने के लिए नव-शेक्सपियर के नाटकीय पद्य की ओर रुख किया, जिसकी उन्हें कभी उम्मीद नहीं थी। अगम्य लक्ष्यों के लिए रोमांटिक खोज से प्रेरित होकर, इन लेखकों ने नाटकों के मंचन की व्यावहारिक समस्याओं से खुद को चिंतित करना पसंद नहीं किया। इसके बजाय, उन्होंने काव्य संवाद में दार्शनिक मुद्दों का पता लगाने की कोशिश की, जो दर्शकों के सामने विश्वसनीय अभिनय को हरा देते। ऐसे नाटक, जिन्हें प्रदर्शन के बजाय पढने के लिए लिखा जाता है, कोठरी नाटक के रूप में जाने जाते हैं। वड्र्सवर्थ, शेली और बायरन सभी ने इसी रूप में लिखा।

3.4 नाट्य निर्माण के तरीकों में परिवर्तन

उन्नीसवीं सदी के नाटककार कैमरे का अनुकरण करने के लिए उन्नीसवीं सदी के उपन्यासकारों के रूप में उत्सुक साबित हुए, लेकिन फोटोग्राफिक रूप से सटीक दृश्य चित्रों को मंच पर लगाने से पहले प्रौद्योगिकी में प्रमुख नवाचारों की आवश्यकता थी। 1800 के दशक की शुरुआत तक, थिएटर पर्याप्त बैकस्टेज स्टोरेज स्पेस और रिवॉल्विंग टर्नटेबल्स से लैस हो सकते थेय अब नाटकों को एक सामान्यीकृत चित्रित पृष्ठभूमि में प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं थी। 1820 के दशक में कुछ थिएटरों में गैस रोशनी की शुरुआत की गई थी और मध्य शताब्दी तक, केंद्रीय नियंत्रण बोर्ड में तैनात एक तकनीशियन द्वारा प्रकाश प्रभाव की निगरानी की जा सकती थी। एक ही प्रदर्शन के दौरान सूरज की

रोशनी चांदनी बन सकती है और गर्मी पतझड़ में बदल सकती हैय विशिष्ट भौगोलिक स्थानों को मंच पर पुन: प्रस्तुत किया जा सकता है और आसानी से स्थानांतरित किया जा सकता है।

सबसे पहले, इन संसाधनों का केवल कुछ असाधारण प्रस्तुतियों में शोषण किया गया था। शिलर की मेड ऑफ ऑरलियन्स के एक प्रसिद्ध प्रारंभिक उपचार ने फ्रांसीसी ग्रामीण इलाकों और जोआन के बचपन के 7 चर्चों को फिर से बनाया, जो एक राज्याभिषेक दृश्य में सबसे शानदार था जिसमें दर्शकों के पूर्ण दृश्य में मंच पर सैकडों अभिनेता और संगीतकार थे। अंग्रेजी रोमांटिक कवि लॉर्ड बायरन द्वारा लिखित सरदानापालस के एल 850 के दशक में एक लंदन उत्पादन, वास्तव में मंच पर एक प्राचीन बेबीलोनियाई महल की प्रतिकृति स्थापित किया गया था जो हर प्रदर्शन में आग से भस्म हो गया था, जटिल प्राकृतिक निर्माण और प्रकाश व्यवस्था के लिए धन्यवाद उपकरण।

दूसरे शब्दों में, उन्नीसवीं सदी के मध्य में मंच दर्शकों को बड़े पैमाने पर पैनोरमा प्रदान करने में सक्षम था जिसे हम ऐतिहासिक फिल्मों से जोड़ते हैं। पहले के नाटक कारों की कल्पना को हवा देने वाली मर्यादाओं के आलिंगन को सजावटी प्रभाव के प्रति आकर्षण ने ग्रहण कर लिया था। असाधारण मंचन का यह युग अभिनेता पर सेलिब्रिटी के रूप में नए जोर देने के लिए भी उल्लेखनीय है, क्योंकि स्टार कलाकारों ने मंच पर अपने हर आंदोलन का पालन करने के लिए स्पॉटलाइट को कमांड करके परिष्कृत प्रकाश बोर्डों का फायदा उठाना सीख लिया। मंच के बाहर, अभिनेताओं ने रेलरोड़ कारों को किराए पर लिया और अत्यधिक प्रचारित निजी दौरों में यूरोप और अमेरिका को पार किया। मंच की छवि और स्टार पावर ने इतना ध्यान आकर्षित किया कि एक पूरी तरह से नया नाट्य पेशेवर, निर्देशक उभरा। निर्देशक का काम आत्म-अवशोषित अभिनेताओं के प्रदर्शन का समन्वय करना और महंगी और जटिल प्रस्तुतियों के हर विवरण की देखरेख करना था, जिसकी दर्शकों की मांग बढ़ रही थी।

3.5 क्रांतिकारी आदर्शों का पतन

पहले के अध्यायों में उल्लेख किया गया है कि प्रारंभिक रोमांटिक काल और फ्रांसीसी क्रांति के शुरुआती दिनों की महान आशाएं धूमिल हो गईं, और कई डूब गए, आतंक के शासन की घटनाओं में, प्रतिक्रिया, और नेपोलियन युद्ध। उदार उदारवादी सिद्धांत और प्रारंभिक क्रांति के इशारे युद्ध में फीके पड़ गए और अंततः हार गए। रोमांटिक उम्मीद है कि क्रांति दलितों को एकजुट करेगी, रूढविादी, उदारवादियों और कट्टरपंथियों के बीच 8 वैचारिक मतभेदों के रूप में गायब हो गई, इसके बजाय विभाजित वर्गों, समूहों, राष्ट्रों और व्यक्तियों को।

वाटरलू (1815) में नेपोलियन की सेना की हार के बाद के दशकों में, यूरोपीय राजनीति रूढविादी और उदार ध्रुवों के बीच एक पेंडुलम की तरह घूम गई। महान शक्तियों (प्रशिया, रूस, ऑस्ट्रिया) ने अपनी सेनाओं का इस्तेमाल अंतरराष्ट्रीय मामलों में और उन देशों के आंतरिक मामलों में उदार विचारों या राजनीति के किसी भी संकेत को दबाने के लिए किया, जिन्हें वे नियंत्रित कर सकते थे, जैसे कि जर्मन या इतालवी राज्य।

विशेष रूप से फ्रांस में, समाज और सरकार के विभिन्न दृष्टिकोणों के बीच संघर्ष तीव्र थे, और औद्योगीकरण के कारण तीव्र हो गए, जिससे शहरी श्रमिकों का एक नया वर्ग पैदा हो गया, जो कट्टरपंथियों, रिपब्लिकन और डेमोक्रेट्स की बात करने के लिए तैयार थे, जिन्होंने याद किया - और रोमांटिक किया - फ्रेंच क्रांति। यह उम्मीद करते हुए कि वोट की शक्ति सरकार को बेरोजगारी और बेघरता को समाप्त करने के लिए मजबूर करेगी, पेरिसियों की भीड़ ने 1848 में कमचनजपमे को सार्वभौमिक मर्दानगी मताधिकार और सरकार का एक गणतंत्र रूप देने के लिए मजबूर किया। ष्लोगों" का सपना, जैसा कि उनके समर्थकों ने उन्हें बुलाया था, उनके विरोधियों के लिए ष्भीड़" का आतंक बन गया। सेना द्वारा ष्खूनी जून के दिनों" में श्रमिकों के प्रदर्शन के क्रूर दमन ने रूढविादियों और यहां तक कि कई उदारवादियों - जमींदारों, कारखाने के मालिकों, कैथोलिक पदानुक्रम - और छोटे व्यवसायों के

बीच एक नए गठबंधन का संकेत दिया, जो कि डेमोक्रेट्स, रिपब्लिकन और शुरुआती समाजवादियों के खिलाफ था। दूसरे साम्राज्य में।

इस सब की अध्यक्षता नेपोलियन प्प् कर रहा था, जिसे फ्रांस के पराजित शासक परिवारों, बॉर्बन्स और ऑरलियनिस्टों के पक्षपाती, सामाजिक पर्वतारोहियों का प्रतीक मानते थे जिन्होंने उन्हें बदल दिया था। यह गठबंधन, यह याद किया जाएगा, नए पैसे पर बनाया गया था, इसका अधिकांश हिस्सा बैंकिंग या वित्तीय भाग्य पर था, न कि कुलीन जन्म और जमींदार धन पर। नूवो दौलत की सबसे 9 प्रभावशाली उपलब्धि पेरिस का आधुनिकीकरण था, जो एक भीड़ भरे मध्ययुगीन शहर को एक ग्लैमरस शहरी मॉड़ल में बदल रहा था।

3.6 पेरिस:

गुस्ताव कैलेबोट्टे द्वारा एक बरसात का दिननई पेरिस, अपनी आलीशान और खूबसूरती से तैयार की गई वास्तुकला के साथ, ध्यान आकर्षित करने वाली पोशाक और व्यवहार में अपनी सफलता दिखाने के लिए उत्सुक एक नए वर्ग के लिए एकदम सही पृष्ठभूमि थी। हालाँकि, शहरी योजनाकारों का इरादा केवल सौंदर्यीकरण करना नहीं थाय शहर के नए लेआउट के लिए पेरिस को पुलिस के लिए आसान बना दिया। वही चौडे मार्ग जहां फैशनेबल सैर कर सकते थे, भीड़ को नियंत्रित करने के लिए नगरपालिका अधिकारियों के लिए त्वरित पहुंच प्रदान करते थे। पडोस को वर्ग द्वारा अलग किया गया था, काम करने वाले गरीबों को बाहरी इलाके में स्थानांतरित कर दिया गया था या छह और सात उडानों को ऊपर की ओर ले जाया गया था, अक्सर चतुर्भुज भवनों के अंधेरे आंतरिक कोर्ट में। असाधारण रूप से महंगी सार्वजनिक इमारतों ने पूरे यूरोप के पर्यटकों को आकर्षित किया जो उस शहर को देखने के लिए उत्सुक थे जहां कोई भी और सब कुछ बिक्री के लिए था।

3.7 बुलेवार्ड थियेटर

उन्नीसवीं सदी के मध्य में यूरोप औद्योगिक प्रगति के मुनाफे में डूबा हुआ थाय न केवल फ्रांस में, बल्कि इंग्लैंड में भी (जहां इस अवधि का नाम लंबे समय तक रानी विक्टोरिया के नाम पर रखा गया है) और महाद्वीप पर कहीं और, बुद्धि या विरासत की शक्ति के बजाय धन पर आधारित नए शासक वर्ग। थिएटर, हमेशा सामाजिक परिवर्तन का एक बैरोमीटर, अपनी उपलब्धियों का जश्न मनाता है, और दर्शकों ने नाटक की एक शैली में दर्शकों को गौरवान्वित किया है जो उनके स्वाद को पूरा करता है। चूंकि आधुनिक नाटक के विकास के लिए पेरिस की रुचियां विशेष रूप से महत्वपूर्ण थीं, इसलिए हम यहां फ्रांसीसी नाट्य दृश्य के विकास पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

जनता को एक बिक्री योग्य उत्पाद देते हुए नाटककार स्वयं इस माहौल में उद्यमी बन गए। इस अवधि के यथार्थ वादी उपन्यासकारों के विपरीत, जिन्होंने बुर्जुआ वर्ग पर व्यंग्य किया, नाटककार यूजीन स्क्राइब (1791–1861), छोटे एलेक्जेंडर डुमास (1824–95) और विक्टोरियन सरदौ (1831–1908) ने इसे आगे बढ़ाया। स्क्राइब, डुमास और सरदौ ने शाब्दिक रूप से सैकडों नाटक लिखे जो बुलेवार्ड थिएटर का उदाहरण हैं। तुलनीय अमेरिकी पदनाम, ब्रॉड़वे थियेटर की तरह यह शब्द, लाभ के बजाय कला के लिए कम लिखे गए नाटकों को दर्शाता है।

मिथक और इतिहास के स्थान पर, दुखद नायकों और राष्ट्रवादी फायरब्रांड्स, बुलेवार्ड नाटक कारों और उन्नीसवीं सदी के मध्य के अन्य नाटक कारों ने आरामदायक मध्य वर्गीय जीवन पर ध्यान केंद्रित किया। पूर्व–रोमांटिक युग में नाटक, जैसा कि हमने देखा है, विनम्र और सामान्य लोगों के सहानुभूतिपूर्ण चित्रों को शामिल करने के लिए विषयों की सीमा का विस्तार करना शुरू कर दिया था। (2) सदी के रूढविादी मध्य में, हालांकि, मेलोड्रामा, प्रहसन, और क्या जन्म के बजाय धन और शक्ति द्वारा वित्त पोषित विशेषाधिकार की उच्च मध्यम वर्ग की दुनिया पर केंद्रित अच्छी तरह से बनाए गए नाटकों को

कहा जाता था। नूवो की दौलत पुराने अभिजात वर्ग के लोगों द्वारा ईर्ष्या और तिरस्कार दोनों ही थी, जिन्होंने एक ऊँचे-ऊँचे स्नोबेरी के साथ जवाब दिया और उन सभा स्थानों से परहेज किया जहाँ नए अभिजात वर्ग खुद का मनोरंजन करने के लिए गए थे।

अच्छी तरह से बनाए गए नाटक वास्तव में समकालीन टेलीविजन श्रृंखला के पूर्वज थे। शायद ही कभी चरित्र विकास की खोज करते हुए, शैली को जटिल भूखंडों में शामिल स्टॉक आंकडों के बजाय तैनात किया जाता है जो अंतिम-मिनट के नाटकीय खुलासे की ओर ले जाते हैं। नाटकीय प्रभावशीलता के लिए मानवीय संभावनाओं का त्याग करते हुए, इन नाटकों में आम तौर पर अविश्वसनीय संयोगों की एक श्रृंखला शामिल होती है जो लंबे समय से खोए हुए रिश्तेदारों को एक साथ लाते हैं, या एक खलनायक के असली उद्देश्यों को उजागर करने वाले पत्रों से समझौता करते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रारंभिक भय के बाद, सच्चा प्यार और पुण्य (मेलोड्रामा के अपेक्षाकृत सरल नैतिक ब्रह्मांड और अच्छी तरह से बनाए गए नाटक में आसानी से मान्यता प्राप्त श्रेणियां) को अंत में पुरस्कृत किया जाता है।

3.8 थिएटर में दर्शक

उन्नीसवीं शताब्दी में निर्मित थिएटरों के बेहतर तकनीकी संसाधन बड़े पैमाने पर प्रोसेनियम आर्च पर निर्भर थे, जिसने मंच तैयार किया और खेल क्षेत्र और दर्शकों के बीच एक साफ ब्रेक बनाया। पुनर्जागरण इटली में निश्चित परिप्रेक्ष्य के विकास के साथ जुड़े, प्रोसेनियम मेहराब ने दृष्टिहीन यथार्थ वादी पृष्ठभूमि को संभव बनाया जो 1800 के दशक में विकसित हुआ। 1641 में कार्डिनल रिशेल्यू के महल के लिए बिल्ट-इन प्रोसेनियम आर्च वाला पहला स्थायी थिएटर बनाया गया था। जैसे-जैसे अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में नए थिएटर बनाए गए, प्रोसेनियम मेहराब ऊंचे और मोटे होते गए और अधिक भव्य होते गए। विरोधाभासी रूप से, एक उपकरण जिसने मूल रूप से दर्शकों की नजर को खेल क्षेत्र में खींचने का वादा किया था, दर्शकों को कार्रवाई से अलग करने का विपरीत प्रभाव था।

प्राचीन ग्रीस के एम्फीथिएटर, एलिजाबेथन इंग्लैंड के प्रमुख चरण, शास्त्रीय भारत या सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप के कोर्ट थिएटर रूम, वास्तव में लगभग हर नाट्य संरचना जिसे दुनिया इस समय तक जानती थी, नाटकीय प्रदर्शन में दर्शकों और अभिनेताओं को एकजुट करके फली-फूली थी। सभी प्रतिभागियों के लिए महत्वपूर्ण परिणामों के साथ। हालाँकि, उन्नीसवीं सदी का यूरोपीय सभागार एक ऐसे स्थान के रूप में विकसित हुआ था जहाँ दर्शकों के सामाजिक रूप से महत्वाकांक्षी सदस्यों के पास मंच की तुलना में एक-दूसरे के बारे में बेहतर विचार थे। ग्राहकों को अपने थिएटरों में आकर्षित करने की उम्मीद में, मालिकों ने लकडी के बेंचों के स्थान पर असबाबवाला कुर्सियां स्थापित कीं और इन आरामदायक आवासों के लिए अग्रिम टिकट बेचना शुरू कर दिया। इस स्पष्ट सुधार का वास्तव में मतलब यह था कि लोग उस समय थिएटर जाने लगे जब उन्होंने ऐसा करने के लिए खुद को प्रतिबद्ध किया था, बजाय इसके कि जब वे ऐसा करना चाहते थे।

इसके अलावा, सबसे महंगी सीटों में अक्सर नाटक देखने के लिए सबसे खराब परिप्रेक्ष्य होता थाय संरक्षकों ने कई स्तरों में सभागार की परिक्रमा करने वाले चल आर्मचेयर और निजी एंटरूम के साथ दीवारों से बंद बक्से पर कब्जा करने के लिए महंगा भुगतान किया। मंच के चरम किनारों पर, अक्सर प्रोसेनियम में निर्मित बॉक्स सीटों में और प्रदर्शन स्थान के बजाय केंद्रीय शाही बॉक्स की ओर मुख करके, महंगे गाउन और बेजल वाली महिलाओं ने खुद को उनके सामने बैठे लोगों की नजर में प्रदर्शित किया। अन्य थिएटर जाने वाले, नाटकीय उत्पादन की तुलना में व्यक्तिगत मामलों पर भी अधिक इरादे रखते हैं, बॉक्स के अंधेरे रिक्त स्थान में बैठ सकते हैं और एक-दूसरे को फुसफुसा सकते हैं। लंबे मध्यांतरों के दौरान, बॉक्स से बॉक्स में विजटि का आदान-प्रदान किया जाता थाय जब अगला अभिनय शुरू हुआ, तो दर्शक अक्सर अपनी सीटों से हटकर उन लोगों के पास चले जाते थे, जिन्हें वे वास्तव में थिएटर में देखने आए थे।

3.9 सारा बर्नहार्ट

संगीत कुर्सियों के ये खेल इतने आम थे कि एक थिएटर का दृश्य उन्नीसवीं सदी के उपन्यासों का एक प्रधान बन गया। लेखकों ने नाट्य प्रस्तुति के प्रति अपने पात्रों के रवैये को नैतिक मूल्य के गेज के रूप में इस्तेमाल किया। उदाहरण के लिए, टॉल्स्टॉय, संकेत देते हैं कि इवान इलिच ने भौतिकवाद की मिथ्याता का पता लगाना सीख लिया है, जब उनकी पत्नी और बेटी उन्हें महान फ्रांसीसी अभिनेत्री सारा बर्नहार्ट को देखने जाने के लिए उनकी मृत्युशय्या पर छोड़ देते हैं।

संभवतः सदी का अंतिम नाट्य रूप ओपेरा था। अपने इशारों के आकार में और संगीत, नृत्य और तमाशा के माध्यम से इंद्रियों के लिए इसकी सीधी अपील में, ओपेरा ने हमेशा बड़े थिएटरों को भर दिया। जब फ्लॉबर्ट की मैडम बोवेरी डोनिजेट्टी के लूसिया डि लैमरमूर के प्रदर्शन को देखने जाती हैं, तो वह संगीत और मेलोड्रामैटिक कहानी से इतनी प्रभावित होती हैं कि वह लगभग अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण खो देती हैं। वास्तव में, यह कोई संयोग नहीं है कि सदी के महानतम ओपेरा के कई लिब्रेटी (या स्क्रिप्ट) स्क्राइब और 13 सरदौ द्वारा लिखे गए ग्रंथ थे, जो अपने दर्शकों को एक ही समय में रोमांचकारी और चापलूसी करने वाले, अपने दर्शकों को नीरस वास्तविकता से बाहर निकालने में विशेषज्ञ थे।

3.10 प्रोसेनियम चरण की चुनौती

प्रोसेनियम आर्च का संयोजन, पारंपरिक रूप से इससे लटका हुआ भारी पर्दा, और अंधेरा ऑडिटोरियम दर्शकों से कलाकारों को इतना अलग कर देता है कि जनता का ध्यान मंच की कार्रवाई से सामाजिक परस्पर क्रिया की ओर जाता है, जो नाटक कारों के लिए एक विकट चुनौती बन गई थी। आधुनिक थिएटर कलाकारों ने दर्शकों की महत्वपूर्ण भूमिका को दो अलग-अलग तरीकों से बहाल करने की मांग की है, या तो दर्शकों को अभिनेताओं से अलग करने वाले अवरोध की अवहेलना करके या उस पर जोर

देकर। नाटकीय यथार्थ वादी मंच से पहले तथाकथित चौथी दीवार के रूप में अंतरिक्ष का इलाज करते हैं, दर्शकों के साथ रात के लिए अपने पडोसियों की गतिविधियों पर जासूसी करते हैं, अभिनेता उनके सामने अनिवार्य रूप से यथार्थ वादी सेटिंग्स में दिखाई देते हैं। अन्य नाटककार नाटकीय भ्रम और रोजमर्रा की वास्तविकता के बीच की खाई पर जोर देते हैं। प्रारंभिक आधुनिक नाटक कारों ने अपने सामने प्रस्तुत नाटकों में आत्मसंतुष्ट और आत्म-अवशोषित थिएटर जाने वालों को अपने स्वयं के जीवन की दुविधाओं को पहचानने के लिए मजबूर कियाय बाद के आधुनिक नाटककार थिएटर जाने वालों को उनके और उनके सामने के अभिनेताओं के बीच की दूरी का हिसाब लगाने के लिए मजबूर करते हैं। आधुनिक नाटक के प्रत्येक चरण में, हालांकि, नाटककार नाटकीय अनुभव को दर्शक के जीवन का अभिन्न अंग बनाने का प्रयास करता है, न कि केवल एक सुखद मनोरंजन।

3.11 थिएटर और आधुनिक विश्व

नाटक कारों ने अक्सर दर्शकों को विवादास्पद विषय वस्तु और दर्शकों को खुश करने के बजाय चुनौती देने के लिए बनाए गए रूपों का सामना करके अपनी प्रतिष्ठा अर्जित की। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रगति, शहर के जीवन का विस्तार, राष्ट्रवाद, सामाजिक वर्गों में परिवर्तन, और एक कृषि से एक औद्योगिक अर्थव्यवस्था की ओर कदम ने नाटकीय विषयों को प्रभावित किया। नाटकों को अक्सर उनकी स्पष्ट या विवादास्पद सामग्री के कारण सेंसर या प्रतिबंधित कर दिया जाता था, जिससे उन्हें केवल छोटे, निजी दर्शकों के लिए प्रदर्शन योग्य छोड़ दिया जाता था। द वेल-मेड प्ले और मेलोड्रामा-उन्नीसवीं शताब्दी की शैलियों का उपहास किया गया था। हेनरिक इबसेन (1828–1906) और जॉर्ज बर्नार्ड शॉ (1856–1950) सहित नाटक कारों ने इन नाटकों के सम्मेलनों को लागू किया लेकिन घटनाओं के बजाय उन्हें सामाजिक और मनोवैज्ञानिक मुद्दों पर अनुकूलित किया। अगस्त स्ट्रिंड्बर्ग

(1849–1912) ने सपनों के तर्क के लिए नाटकीय नियमों को त्याग दिया। एंटोन चेखव 28 (1860–1904) ने अल्पमत और बारीकियों के लिए स्टॉक पात्रों और चरम नाटक को छोड़ दिया।

3.12 स्वतंत्र रंगमंच

आंदोलन: प्रकृतिवाद प्रकृतिवादी थिएटरों में पेरिस में आंद्रे एंटोनी के थिएटर लिबरे, लंदन में जेटी ग्रीन के स्वतंत्र थिएटर, बर्लिन के ओटो ब्रह्म के फ्री बुहने, और कॉन्स्टेंटिन स्टैनिस्लावस्की के मॉस्को आर्ट थिएटर शामिल हैं, जो आधुनिक नाटक कारों को बाहर काम करने की अनुमति देने वाले कई स्वतंत्र थिएटरों में से हैं। वाणिज्यिक थिएटर। प्रकृतिवाद की उत्पत्ति 1860 के दशक में फ्रांस में विज्ञान और सामाजिक व्यवहारों में रुचि रखने वाले एक आंदोलन के रूप में हुई, जो जैविक कारकों के कारण होता है, जो कि रोमांटिकतावाद की भावनाओं और व्यक्तिगत अनुभव में रुचि के विपरीत है। प्रकृतिवाद जीवों के बारे में डार्विन के सिद्धांतों, उनकी उत्तरजीविता, प्राकृतिक चयन और पर्यावरण पर निर्भरता में रुचि के कारण विकसित हुआ।

3.13 आधुनिक अभिनय

प्रकृतिवादी रंगमंच ने अभिनेता के मनोविज्ञान और भावनाओं पर प्रदर्शन के आधार पर यथार्थ वादी मंच पर जोर दिया और नाटकीय अभिनय को खारिज कर दिया। कोंस्टेंटिन स्टैनिस्लावस्की (1863–1938), यथार्थ वादी अभिनय में रुचि रखते हुए, नॉर्वेजियन नाटककार इबसेन के नाटकों में अभिनेताओं को उनकी भूमिकाओं के साथ विलय करने में मदद करने के लिए नॉर्वेजियन फर्नीचर में लाया गया। जॉर्ज प्प्, ड्यूक ऑफ सक्से-मीनिंगेन (1826–1914) ने कलाकारों की टुकडी के अभिनय और विशद भीड़ के दृश्यों में बदलाव पेश किए। साहसी महिला भूमिकाओं ने आधुनिक अभिनेत्रियों की एक नई पीढ़ी को

जन्म दिया जिसमें एलेनोरा ड्यूस, एलिजाबेथ रॉबिन्स और ईवा ले गैलिएन शामिल हैंय वे अपनी सिग्नेचर भूमिकाओं को विकसित करने के लिए अक्सर इबसेन के नाटकों को चुनते थे।

3.14 सौंदर्यवाद और प्रतीकवाद

29 सौंदर्यवाद मुख्य रूप से ऑस्कर वाइल्ड (1854–1900) से जुड़ा था, और कला के लिए कला पर केंद्रित था – एक आंदोलन जिसने कलाकृतियों के सामाजिक या राजनीतिक उपयोग पर सुंदरता पर जोर दिया। प्रतीकवाद बेल्जियम के मौरिस मैटरलिंक (1862–1949), फ्रांस के मैडम राचिल्डे (1860–1953) और आयरलैंड के विलियम बटलर येट्स (1865–1939) से जुड़ा था, और प्रत्यक्ष, सामान्य भाषण के बजाय रहस्यवाद, व्यक्तिपरकता और सुझाव पर जोर दिया। . पेरिस में ऑरेलियन लुग्ने-पो के थिएटर डी ल'उवर जैसे चरणों ने प्रकृतिवादियों के अव्यवस्थित चरणों पर सरल सेटों का समर्थन कियाय लंदन में एड़वर्ड गॉर्डन क्रेग के सार सेट समानांतर प्रतीकवादी सेटिंग्स।

3.15 थिएटर और अवंत-गार्डे

फ्यूचरिज्म, इटली में एफ. टी. मारिनेटी (1876–1944) के नेतृत्व में, थिएटर से मानवीय चरित्र को हटा दिया और कठपुतलियों, मशीनों और निर्जीव वस्तुओं पर भरोसा किया। रोमानियाई ट्रिस्टन तजारा (1896–1963) के नेतृत्व में दादावाद, प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ज्यूरिख में कैबरे वोल्टेयर में फला-फूला और बकवास कविताओं, संगीत के टुकडों और नकाबपोश प्रदर्शनों का निर्माण किया। आंद्रे ब्रेटन (1896–1966) के नेतृत्व में अतियथार्थवाद, सिगमंड फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक और स्वप्न सिद्धांतों पर केंद्रित था। अल्फ्रेड जेरी का किंग उबू (1896) एक प्रतिष्ठित अतियथार्थवादी नाटक बन गया। फ्रांसीसी एंटोनिन आर्टौड (1894–1948) अतियथार्थवाद के सबसे प्रभावशाली नाटककार बन गए और उन्होंने क्रूरता का एक रंगमंच बनाया – जो प्राचीन रीति-रिवाजों से प्रेरित एक मौलिक थिएटर है, साथ

ही साथ मार्क्स ब्रदर्स की फिल्म कॉमेडी भी है। आर्टौड का द थिएटर एंड इट्स डबल (1938) आधुनिक जीवन के पतन को ठीक करने के संदर्भ में प्लेग, आदिम मिथकों और बालिनीज "एनिमेटेड चित्रलिपि" पर चर्चा करता है। अवंत-गार्डे प्रगतिशील कला से जुड़ा, विशेष रूप से समाजवाद और अराजकतावाद से संबंधित। इटली में भविष्यवादी फासीवाद-अत्यधिक राष्ट्रवाद और युद्ध की वकालत से जुड़ गए। दादावादियों ने युद्ध का विरोध किया और वर्ग-आधारित समाजों को नष्ट करने के लिए 30 समाजवाद को अपनाया। अतियथार्थवादी अकसर कम्युनिस्ट पार्टियों में शामिल हो गए। रूसी भविष्यवाणियों ने 1917 की रूसी अक्टूबर क्रांति में समाजवादी के रूप में भाग लिया।

3.16 राजनीतिक रंगमंच:

ब्रेख्त बर्टोल्ट ब्रेख्त (1898-1956) अवंत-गार्डे आंदोलनों के सबसे प्रभावशाली राजनीतिक नाटककार हैं। उन्होंने एपिक थिएटर विकसित किया। एपिक थिएटर उन तकनीकों पर निर्भर करता है जो कथानक और अभिनय के प्रवाह को बाधित करती हैं, जो ब्रेख्त को लगा कि तमाशा देखने के बजाय चिंतन की ओर ले जाएगा। इरविन पिस्केटर ने ब्रेख्त को थिएटर में फिल्म और अन्य कला रूपों का उपयोग करने का मूल्य सिखाया, जिसके कारण कर्ट वेइल (1900-1950) सहित संगीतकारों के साथ सहयोग हुआ।

3.17 सांस्कृतिक नवीनीकरण:

आयरलैंड और यूनाइटेड स्टेट्स डबलिन के एबी थिएटर ने इंग्लैंड से सांस्कृतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित किया, जिसमें लेडी ऑगस्टा ग्रेगरी का आयरिश भाषा का उपयोग करने पर जोर शामिल है। जॉन मिलिंगटन सिन्ज (1871-1909) आयरिश किसानों के रोमांटिक विचारों की इस हद तक आलोचना करते हैं कि पश्चिमी दुनिया के उनके प्लेबॉय ने थिएटरों में दंगों को जन्म दिया।

प्रोविंसटाउन प्लेयर्स यू.एस. में एक छोटी थिएटर मंड़ली थी, जो सुसान ग्लासपेल (1876–1948) और यूजीन ओश्नील (1888–1953) सहित अमेरिकी नाटक कारों द्वारा नए नाटकों को प्रस्तुत करने के लिए समर्पित थी। 1910 और 1920 के छोटे रंगमंच आंदोलन ने ब्रॉड़वे प्रस्तुतियों के वाणिज्यिक और वित्तीय बाधाओं के बिना प्रयोगात्मक नाटकों के मंचन के लिए जगह प्रदान की।

3.18 ट्रेजेडी, मेटा-ट्रेजेडी, मेटा-थियेटर

एडवर्ड एल्बी (बी. 1928), आर्थर मिलर (1915–2005), टेनेसी विलियम्स (1911–1983) और यूजीन ओश्नील सहित 31 लेखकों ने रोजमर्रा के अमेरिकी जीवन में त्रासदी की खोज की, जिसमें शामिल हैं आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत चुनौतियां। मेटा-ट्रैजेडी (जिसे "मेटाथिएटर" भी कहा जाता है) भूमिका निभाने और वास्तविकता और नाटकीय भ्रम के बीच संबंध पर केंद्रित है, और इस विश्वास पर आधारित है कि त्रासदी आधुनिक दुनिया के अनुरूप नहीं हो सकती है। लुइगी पिरांडेलो (1867–1936) के एक लेखक की खोज में छह पात्र और जीन जेनेट के (1910–1986) नाटक प्रसिद्ध मेटा-त्रासदी हैं।

3.19 युद्ध, क्रांति और अवसाद:

1900–1945 1917 की रूसी क्रांति, प्रथम विश्व युद्ध (1914–1919), और 1929 के शेयर बाजार में गिरावट ने प्रौद्योगिकी और औद्योगीकरण की विनाशकारी क्षमता को दिखाया। फ्रेंकलिन रूजवेल्ट की नई डील में एक फेडरल थिएटर प्रोजेक्ट (1935) शामिल था जिसने थिएटर प्रायोजन प्रदान किया। दक्षिण में नस्लवाद और आर्थिक समस्याओं के कारण अफ्रीकी अमेरिकी हार्लेम में आ गए। जोरा नेले हर्स्टन (1891–1960) और लैंगस्टन ह्यूजेस (1902–1967) द्वारा हार्लेम जैज, ललित कला और नाटक के लिए एक सांस्कृतिक केंद्र बन गया। द्वितीय विश्व युद्ध ने आधुनिक नाटक की अवधि को समाप्त कर

दिया, जिसे आमतौर पर एडिसन के प्रकाश बल्ब (1879) के प्रदर्शनों के बीच हिरोशिमा (1945) के परमाणु बमबारी के बीच रखा गया था।

संदर्भ

[1]. दया प्रकाश सिन्हा: इतिहास चक्र, पृ° 51–52

[2]. सुशील कुमार सिंह, अलख आजादी की, पृ° 86–87

[3]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 26

[4]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 14

[5]. राधेश्याम शर्मा (संपादकीय) हरिगंधा पत्रिका, मार्च से उद्धृत (अंक 151 हरियाणा साहित्य अंक 1994 पंचकुला मार्च 2007)

[6]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 15

[7]. डॉ° वीरेन्द्र नाथ सिंह, 'नगरीय समाजशास्त्र', पृ° 199

[8]. मधु धवन, 'आज की पुकार', पृ° 21

[9]. स्वातंत्र्योतर हिंदी नाटक: समस्या और समाधान डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा –प–25

[10]. सर्जना के तेवर, डॉ चन्द्र प 29

[11]. दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज, देवेन्द्र राज अंकुर, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2010 प 49

[12]. गिरीश रस्तोगी, नटरंग, नाटक में नवीनता की मांग प–10 –11

[13]. हिंदी नाटक और रंगमंच पर ब्रेख्त का प्रभाव डॉ, सुरेश वशिष्ठ प 37–38

[14]. सर्जना के तेवर डॉ चन्द्र प 29

[15]. रंग प्रसंग 2010, उषा गांगुली प 80

[16]. नटरंग विवेक – नारायणराय – पृ–15

[17]. नटरंग विवेक – नारायणराय – पृ–15

[18]. नटरंग विवेक – नारायणराय – पृ–16

[19]. टूटे परिवेश – (आमुख से) – गोविन्द चातक – पृ – 7,8

[20]. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : समस्या और समाधान – डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा – पृ-36

[21]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ- 11,12

[22]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ- 12

[23]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ-13

[24]. सिंहासन खाली है – सुशील कुमार सिंह – पृ-9

[25]. सिंहासन खाली है – सुशील कुमार सिंह – पृ- 21

[26]. बकरी – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – पृ – 19

[27]. हानुश – भीष्म साहनी – पृ – 73

[28]. तड़प मुक्ति की – माता प्रसाद – पृ- 15

[29]. श्रीमद भागवत – गीतारहस्य – तिलक – पृ – 435

[30]. हिन्दी साहित्य कोश – धीरेन्द्र वर्मा – पृ – 47

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी नाटक : उपलब्धियाँ एवं परिवर्तन की संभावनाऐँ

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उसकी साधना समाज के विकास और कल्याण की साधना है। गति के धागे से एक क्षण भी व्यक्ति विच्छिन्न हुआ कि समाज के लिए अनुपयोगी हो उठेगा। अतः साहित्य व्यक्ति के अन्-हास की गाथा होते हुए भी सामाजिक विश्वासों और विषमताओं का दर्पण भी होता है। और इसी के चलते आज के युग में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में माना जाने लगा है कि साहित्य समाज का केवल दर्पण ही नहीं अपितु दीपक भी है। जो प्रकाश उस साहित्य के द्वारा पल्लवित होता है उसीसे समाज की गति निर्देशित होती है। साहित्य को सही रास्ता दिखाने में साहित्य को ऊपर उठाने में अपने प्रयास अवश्य करता है। उस प्रयास के पीछे परिवर्तन के विविध आयो में अंतर्निहित रहते हैं।

वस्तुतः साहित्य जनता का मानसिक परिष्कार करता है, उसे एक विशेष प्रकार का बौद्धिक प्रशिक्षण देता है। व एक ऐसी बौद्धिक संस्कृति निर्मित करता है जिसमें सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया सहज रूप में घटित हो सके। जनता के साहित्य को परिभाषित करते हुए मुक्ति बोध ने लिखा है कि - जनता के साहित्य से अर्थ ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन मूल्यों को, जनता के जीवनादर्शों को प्रतिष्ठित करता है, उस अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता हो। इ मुक्तिपथ का अर्थ राजनीति मुक्ति से लगाकर अज्ञान के मुक्ति तक है। अतः इसमें प्रत्येक प्रकार का साहित्य सम्मिलित है, बशर्ते कि वह सचमुच उसे मुक्तिपथ पर अग्रसर करें।

हमें यह विषय मानना बड़ेगी कि समाज का हमेशा ऊध्वगामी विकास ही नहीं होता। अपनी विकास यात्रा में वह मनुष्यता के जिन श्रेष्ठ गुणों को अर्पित करता है और उसकी स्थायी संपत्ति नहीं होते, कभी-कभी वह पीछे की और भी लौटता है और उसके श्रेष्ठ मानवीय मूल्य उसके हाथ छूट जाते है। आज जिस

तरह जातिवाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद और भाषायी संकीर्णता के कारण से समाज पीछे लौटा है, उसका प्रभाव हमें साहित्य पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। नारीवाद, दलितवाद और उत्तर आधुनिकतावाद की विचारधाराओं ने साहित्य की मूल प्रकृति से हटकर जिस तरह रागात्मक प्रभाव पड़ा उसका प्रयोग आज हमारे आँखों के सामने है।

आज साहित्य ही नहीं समूचे मानवीय अस्तित्व ही संकट में पड़ी हुई है। साहित्य की मूल प्रकृति की रक्षा और उसकी स्वायत्तता को स्थापित करने की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी शायद पहले नहीं थी। इस शताब्दी में जन समुदाय और अनेक देश सबसे अधिक मुक्त हुए है पर उस मुक्ति के नाम पर अनेक भयावह नरसंहार भी हुए। इसी शताब्दी में संसार का विचार और व्यवहार, उसकी संस्कृतियाँ और सभ्यता सबसे अधिक केन्द्रीकृत हुई। यह वह शताब्दी भी है जिसमें अनेक जातियाँ और अनेक समुदाय डुबाये गये और अनेक समाज स्मृति वंचित हुए। यह वह शताब्दी है जिसमें आचार और विचार, रहन–सहन, जीवन पद्धतियों का ऐसा विश्वव्यापी एकीकरण हुआ है कि अनेक समाजों और देशों की विशिष्टताएँ, यहाँ तक कि कलाएँ और संगीत तक विलीन हो गए। ग्लोबल विलेज की भावना और भी सुदृढ़ इस शताब्दी का ही फल है। इन सब प्रयत्नों के पीछे संकट अंतः चेतना रूप लेकर प्रस्तुत किया जा रहा है।

मनुष्य के इस लंबे इतिहास में शायद कभी भी राजनीति केन्द्रीय विषय नहीं बनी है लेकिन बीसवीं शताब्दी में पहली बार ऐसा हुआ है। प्रायः कोई भी क्षेत्र नहीं बचा है जो राजनीति के प्रभाव से न बचा हो। हमारे समय की यह बड़ी खेद जनक बात है कि सब कुछ राजनीति से अपने संबंध को स्पष्ट और सुपरिभाषित करने को विवश है। जो भी द्वन्द्वता राजनीति के मूल में है उसका शिकार साहित्य को भी करना पड़ा है। आज राजनीति साहित्य को कब्जा करके रखा है। इस संदर्भ में निर्मल वर्मा कहते हैं --

हमारे समय में शायद यह हुआ है कि मनुष्य की उम्मीद का सारा स्थापत्य ही बदल गया है - इस स्थापत्य में साहित्य के लिए जगह कम बची है। लेकिन एक दिलचस्प अन्तर विरोध यह है कि बावजूद इसके, ऐसा लगता है कि अभी भी जीवन, अस्तित्व, नियति,नश्वरता, प्रेम, जिजीविषा आदि को समझने बूझने के लिए और रोजमर्रा की जिन्दगी में रसे-बसे गहरे आशयों को विन्यस्त्र करने के लिए हम प्रायः साहित्य के पास ही जाते है। सीधे जीवन के अलावा जीवन की असंख्य छवियाँ और प्रतीतियाँ हमें साहित्य और कलाओं में ही मिलती है।

साहित्य मनुष्य, उसकी स्थिति और नियति के बारे में जो चरम प्रश्न पूछता और उनके जो समाधान खोजता है वह उन्हें दूसरे क्षेत्रों की समकक्ष प्रश्नानुकूलता और उत्तरों से जोड़ती-मिलाती है। आधुनिक चरम सीमा में रहने के कारण भारतीय साहित्य विश्वदृष्टियों के आपसी संबंधों और द्वन्द्व को सुस्पष्ट करने के अलावा उन्हें व्यापक वैचारिक परिप्रेक्ष्य में देखती-परखती है। साहित्य में जितने भी विधाएँ है, वे सब इस शताब्दी में चरम उत्कर्ष स्थान पर पहुँचे हैं और अनिवार्य रूप से संत्रासग्रस्त बन पड़े हैं। 1950 से 2000 तक के समय में अन्य विधाओं में नाटक और भी मनुष्य की पक्षधरता लेकर परिवर्तन का शिकार हुआ है। उसके द्वारा आंतरिक वैचारिकता और उसके दबावों से भी ओत प्रोत हैं।

4.1 स्वतंत्र्योत्तर जीवन का सही साक्षात्कार : हिन्दी नाटक

नाटक, निस्संदेह, एक उत्तेजक और चुनौती भरी विषय-वस्तु को लेकर चलता है। प्रत्येक विषय या घटना को जिस रूप में नाटककार पकड़ता है उसमें बड़ी गहरी और महत्वपूर्ण संभावनाएँ होती है; और उसमें निहित प्रश्नों इस देश के लिए बुनियादी सामूहिक और आधुनिक वैयक्तिक आचरण की नैतिकता से जुड़े हुए हैं। पर आधुनिक नाटककार ने इन प्रश्नों का मूलतः बौद्धिक समाधान देना चाहा और समूह गत जीवनानुभव को सही विस्फोटक चुनौतियों को स्वीकार कर परिष्कार विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि - ".....playwright must ever be bound by the fact that his play is designed to

be produced in a material theatre, interpreted actory who are after all only human and before an audience which is exceedingly human"

साहित्य की अन्य विधाओं के परिप्रेक्ष्य में जब हम नाट्यविधा को अधिक उत्कृष्ट या विशिष्ट होने का समर्थन करते हैं तो इसी आधार पर कि उसकी सम्प्रेषणीयता मानव मन की गहराइयों तक अधिक है। साहित्य की अन्य विधाएँ केवल श्रवणेन्द्रियों द्वारा पाठक के मन में रसोद्रेक को मूर्त देता है लेकिन नाटक पात्रों की वेश-भूषा, उनका अंग-विक्षेप, अभिनय आदि संपूर्ण भावों, मानसिक स्थितियों के विविध रूपों को नेत्रों के सम्मुख घटित होते देखकर दर्शक अपना अस्तित्व भूलकर तादाम्य स्थापित कर लेते है। यही अवस्था नाटक की अनन्यता का सृजन करता है।

एक जाग्रत नाटककार समय और समाज से समीपी साक्षात्कार करता है और उसे एक बड़ा अनुभव संसार निर्मित करने की प्रक्रिया में सम्मिलित कर चलता है - आधुनिक नाटककार के कृतियों में यह विषय स्पष्ट लगता है कि कई बार आधुनिक नाटकों में लेखक के बिलकुल निजी अनुभव जोड़ा गया है। वे अपने जीवन को बहत्तर संसार का विषय बनाये है। वस्तुतः कहना है तो आधुनिक नाटककार ने अपने अनुभवों को समाजीकरण किए है। उस प्रक्रिया में लेखक का सर्जनात्मक व्यक्तित्व सबसे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। धर्मवीर भारती को लेकर माता प्रसाद तक सबके अनुभवों का निजी साक्षात्कार आधुनिक नाटक है।

परिवेश से लेखक का निर्माण होता है, यह एक प्रकार से अधूरा सत्य है और इस ओट में यदि लेखन चतुराई करना चाहे तो वह अपनी सामाजिक सांस्कृतिक भूमिका से भी मुक्ति पा सकता है। पर सार्थक परिवेश को नया विन्यास देने का सक्रिय प्रयत्न भी करता है और शब्द ब्रह्म" को चरितार्थ करना चाहता है। स्वीकृति और निषेध, ग्रहण और अस्वीकार की द्वन्द्वात्मकता से सही रचना का निर्माण होता है। माना कि परिवेश से लेखक प्रभावित होता है, प्रेरणा भी ग्रहण करता है, पर वह इसी बिंदु पर रुक ठहर नहीं

जाता। सार्थक लेखक अपने समय-समाज को चुनौती भी देता है, उसे ललकारता है। वह ललकार धर्मवीर भारती अपने नाटक अंधायुग में दिखाते है। परिवेश के बिंदु पर नहीं रुककर उन्होंने सार्थक बिंब को प्रतिष्ठित करते हुए नव्य मानव की संपादनो को निर्मित करने में सफल हुए हैं। द्वन्द्वात्मकता का सही नक्शे को उस नाटक में नाटककार ने परिलक्षित कर मुक्ति का प्रयत्न भी किये हैं। सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति से देखने से अंधायुग के हर पात्र मानवीय जीवन के निकटवर्ती स्वभाव जन्य दीख पड़ते हैं। जिंदगी का सही साक्षात्कार इन नाटक में हमें मिलता है।

नाटक एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया है, जिसमें प्रयोगधर्मिता की संभावनाएँ निरंतर मौजूद रहती हैं। अपने प्रारंभिक चरण से लेकर आजतक नाटक किसी न किसी रूप में सतत प्रवहमान है। उसका अस्तित्व भी मानव की अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। कहीं वह दैवीय सानिध्य पाकर मनोरंजन का साधन बना है तो कहीं वैदिक कालीन दौर से गुजरता हुआ संस्कृत परंपरा का अनुगामी रहा है। एक समय में वह केवल एक वर्ग के हित के लिए ही रचाया गया है तो दूसरी दौर में लोक संस्कृति की विरासत के रूप में। कहने का आशय यह है कि नाटक किसी काल को अपने से ग्रस्त नहीं रहने दिया है। युगीन आग्रहों, आवश्यकताओं के तहत अनेकों बार नाटक अपने रूप -रचना-कथ्य वैविध्य का शिकार होता रहा है।

नाटक की अपनी सीमाएँ होती हैं लेकिन उसके नियम-उपनियम चिरस्थायी न होकर युगीन अपेक्षाओं,आग्रहों के तहत खुद-ब खुद बदलते रहते हैं। नाटक समसामयिक परिवेश और परिवर्तनशील मानवीय अभिरुचियों के अनुसार अपना रूप, शैली-शिल्प और अंतर्वस्तु स्वयं ग्रहण कर लेती है। मध्य वर्गीय जीवन के नंगा साक्षात्कार आधे अधूरे में जिस तरह प्राप्त हुआ है उस तरह के कोई अन्य विधा में नहीं मिलता है। इस काल में मानवीय मूल्यांकन समग्र रूप से मिला है वह नव्यतम नाटक को विकसित करने में सहयोग देता है। कमनीय जीवनानुभवों को चित्रीकरण करने में, उसे परिवेशगत बनाने में नाटककार ने अनेक प्रयोग किये हैं। उनके हर प्रयोग आज हमें स्पष्ट नजरिये से दृष्टिगोचर होता है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय नाटक कारों पर न केवल तद्युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा अपितु पाश्चात्य चिंतकों से भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। मार्कस के वर्ग संघर्ष, जोला के प्रकृतिवाद, फ्रायड के मनोविज्ञान तथा डार्विन के विकासवाद आदि सिद्धांतों का प्रभाव भारतीय समाज पर ज्यादा पड़ा। आधुनिक समाज व्यक्ति स्वातंर्त्य के नारों से उथल पुथल हुआ। हिंदी नाटककार भी सम-सामयिक संदर्भों में उन समस्याओं के प्रति सजग हुए हैं। सुरेंद्र वर्मा, मोहन राकेश अपने नाटकों द्वारा स्वातंर्त्य के पाश्चात्य ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटकों का स्वर बदला है। ऐतिहासिक नाटक केवल इतिहास संबंधी आख्यायन न करके जन जीवन का सम-सामयिक अर्थों में मूल्यांकन करता हुआ अग्रसर हुआ है।

रंगमंच की दृष्टि से आधुनिक काल में नाटक और भी जन सामान्य तक पहुँच गया है। नाटक का सही जान रंगमंच से ही मिलता है। नाटक का तात्पर्य ही उस रचना विशेष से है जिसका अभिनय रंगमंच पर किया जा सके - नाटक एक दृश्य काव्य है और इसका दृश्य-काव्यत्व तभी सार्थक हो सकता है, जबकि वह रंगमंच पर अभिनीत हो। धर्मवीर भारती काव्य नाटक "अंधायुग" नाटक में व्यक्ति के युद्ध से संत्रस्त एवं संतप्त जीवन को आधुनिकता के परिवेश में नवीन भावाभिव्यक्ति प्रदान की है। नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में -- ".....अंधायुग के कारण भारतीय रंग जगत में हिंदी रंगमंच का दर्जा एकाएक बहुत ऊँचा उठ गया।"

"आषाढ़ का एक दिन", लहरों का राजहंस" के नाटकों के पात्र समय के साथ टूट गये हैं और अंतर्द्वन्द्व से झूजते हैं। आधे अधूरे के द्वारा मध्य वर्गीय संबंधों के बिखराव का स्पष्ट अभिव्यक्तिकरण हुआ है। बकरी, सिंहासन खाली है आदि नाटकों द्वारा निश्चय ही रंग मंचीय संभावनाओं के और भी विकसित हुआ है। स्वच्छ परिवार की परिकल्पना आधुनिक नाटकों का एक सार्थक कथ्य बनकर सामने आता है द्यमाताप्रसाद और नाग वोड्स के द्वारा लिखा हुआ दलित साहित्य में अनेक नूतन प्रयास एवं प्रयोग

देखने में आये हैं। नाटकीय रंगमंच आज संसार को एक नयी दृष्टि से समझने के लिए उत्सुक कराती हैं। मनुष्य को एक नयी दृष्टि से समझने के लिए रंगमंच एक सशक्त माध्यम का पात्र निर्वाह करता है। एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकन के अनुसार -- "By modern standards] theatre is one of the service of manßs attempt to understand the world and himself–It is not merely a reflection of life] but an active search for the truthßs of eÛistence"

नाटक का सर्वप्रमुख तत्व उसकी नाटकीयता है। उसमें लेखनीय अनुभूति की गहराई के साथ रंग मंचीय तत्वों - विशेष तथा गत्यात्मक अथवा द्वन्द्वात्मक स्थितियों के साथ नाटकीय भाषा का प्रयोग होना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए समकालीन नाट्य लेखन का विकास उनके दिशाओं में हुआ। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेन्द्र वर्मा आदि ने नाट्यानुभूति युक्त अच्छे नाटकों का सृजन किया। प्रगतिशील आन्दोलन के प्रभाव से आम आदमी को मद्देनजर रखते हुए सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से सर्वेश्वर, भीष्म साहनी, कुसुम कुमार आदि ने नाटक लिखे, तो दूसरी ओर स्त्री पुरुष संबंधों और उनसे उत्पन्न मानसिक स्थितियों को उजागर करने के लिए मुद्राराक्षस, मोहन राकेश आदि ने सक्रियता दिखायी। माता प्रसाद आदि ने दलित चेतना भरी जीवनानुभवों को सर्वव्यापी बनाये। इस प्रकार आज हिन्दी नाटक बहुविधा प्रयोगधर्मिता को अपनाते हुए पूरी तरह रंग मंचीय आवश्यकताओं से जुड़ गया है।

इस प्रकार आधुनिक नाटक मानवीय संभावनाओं का समन्वय करके, अनेक मुश्किलों को सामना करना करते हुए आगे बढ़ा है। आदि रूप से आज तक नाटक का मूल मकसद मानवीय अभिव्यक्ती ही है लेकिन वह अभिव्यक्तीकरण 1950 के बाद और बढ़ गया है। अनेक साहित्य महत्व के नाटक लिखे गये है। नाटकीय आलेख को जितनी श्रेष्ठता मिली है रंगमंच को भी उतनी महत्व मिली है। सच कहना है तो आधुनिक नाटक मानवीय जीवन का सही साक्षात्कार है।

4.1.1 कथ्य परक उपलब्धियाँ

साहित्य का विकास एक अनवरत प्रवाह जैसा होता है। इसमें आनेवाले परिवर्तनों को विभाजक रेखा से अलग करना संभव नहीं है. लेकिन पचास के बाद हिन्दी नाटकों के कथ्य में अनेकता का सरोकार मिलता है। केवल हिन्दी में ही नहीं मराठी, कन्नडा, बंगला के रंगजगत को इस काल को निर्णायक और विशेष काल कह सकते हैं। अपने वर्ग को परिलक्षित करने के लिए प्रसाद द्वारा प्रयत्न किया गया है लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि वास्तव में मानव संबंधों को गहराई से विश्लेषित करने वाले तथा जीवन के गंभीर तथा बुनियादी प्रश्नों से सीधा साक्षात्कार कराने बाले नए हिन्दी नाटक की व्यापक रचना और प्रतिष्ठा सन् 1950 के आसपास ही शुरु होती है।

आधुनिक युग की समस्याओं तथा स्थितियों का संबंध एक ओर समग्र मान वाली से है तो दूसरी ओर व्यक्तिगत जीवननानुभवों से है। द्वितीय विश्व युद्ध मनुष्य को अनिश्चित और भयभीत करवाकर उससे उसका नैतिक बोध छीन लिया गया है। मर्यादा, दायित्व आदर्श मानवमूल्य केवल शब्द ही रह गये है। इस युद्ध ने अनेक नये कथ्य जन्म लेने के लिए प्रेरित किया है. वास्तव में विश्वयुद्ध से भारत समाज को कोई रिसता नहीं है लेकिन यूरोपीय समाज और ऐशिया समाज के बीच अच्छा संबंध है। इस लिए द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रति धर्मवीर भारती के द्वारा सही उत्तर मिला है।

व्यक्ति को नये दृष्टि से देखने के लिए एक नया कथ्य अंधायुग नाटक के द्वारा आधुनिक काल को मिला है। आधुनिक काल और अंधों काल में कोई साफ अंतर दिखाई नहीं देता है। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध नाट्य निर्देशक अमरल अल्काजी के शब्दों में – "**Bharati Assumes that darkness is blindness----- In Andha yug the darkness streems from the breakdown of moral Values due to the folly of man] war and destruction inevitable lead to a faith less age where nothing can be relied on- Therefore it is anAnda yug kA yug when Lord Krishna in destroyed He who had before assumed responsibility for our actions is now no longer with us- He was the light] but man himself has cursed and distroyed him"**

महाभारत के आट्ठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभात तीर्थ में श्री कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक की घटनाओं पर आधारित अंधायुग में जो कुछ कहा गया है, जो संप्रेषणीय कथ्य है, वह आज का है। इस लिए अंधायुग की मूल कथावस्तु यद्यपि पौराणिक है, पर उसका कथ्य आधुनिक युग की समस्याओं तथा स्थितियों से बना है। इस नाटक में प्रहरी सामान्य मनुष्य की प्रतीक के रूप में हमें दिखाई पड़ते है। तटस्थ जीवन का सही चित्र हमें इस नाटक में साफ नजर आती है।

किसी भी श्रेष्ठ नाटक को अपनी संपूर्णता एवं सार्थकता पाने के लिए सतत परिवर्तनशील समय के साथ एक लगातार द्वन्द्व की प्रक्रिया से होकर गुजरते रहना पड़ता है। पहली बार आधुनिक नाटकों में बाहरी क्रियाओं और संघर्षों के बजाय अधिकतर भीतरी प्रतिक्रियाओं और द्वन्द्व के द्वारा तनाव की सृष्टि किया गया है - मोहन राकेश के नाटक आधुनिक हिन्दी कथ्य को वास्तविक नये प्रयोगों की दिशा में ले जा सकती है। इस संदर्भ में जयदेव तनेजा का वक्तव्य सही लगता है कि - " हिन्दी रंगान्दोलन में मोहन राकेश के नाटकों की भूमिका के संदर्भ में समग्रतः यह कहा जा सकता है कि आषाढ़ का एक दिन, से हिन्दी के नये रंगान्दोलन की शुरुआत हुई लहरों के राज हंस के दौर में वह परिपक्व हुआ और आधे अधूरे ने उसे व्यापक एवं लोकप्रियता प्रदान करके शौकिया हिन्दी रंगकर्म को अर्द्ध-व्यावसायिक रंगमंच की सीमा रेखा तक पहुँचा दिया।" राकेश के नाटकों के बाद ही हिन्दी रंगमंच को संभावनाओं का पता चला है। अपने नाटकों से उन्होंने हिन्दी नाटक को गंभीर से लेने की कला के रूप में परिवर्तित किया गया है। राकेश हिन्दी नाटक में परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करते हैं। "आषाढ़ का एक दिन" और वर्षों बाद के इस आषाढ़ के दिन की विड़म्बना को तीव्रता से रेखांकित करके नामकरण की सार्थकता को सिद्ध किया। जीवन सौन्दर्य और आनंद की पर्याय आषाढ़ की वर्षा कालांतर में कैसे रहती है, अपने पात्रों के जीवन की त्रासदी से जोड़कर राकेश ने आषाढ़ का एक दिन के रूप में एक करुणा सर्जनात्मक काव्य की रचना की है। एक क्रियाशील कलाकार की अनुभूतिमय जीवन की सही कथ्य गत दस्तावेज यह नाटक है। - निस्संदेह हिन्दी नाटक के परिप्रेक्ष्य में और भाव वस्तु और रूप बंध दोनों के स्तर पर,

आषाढ़ का एक दिन ऐसा पर्याप्त सघन तीव्र और दृष्टि ज्यादा आधुनिक और सूक्ष्म है जिसके कारण वह सही अर्थ में आधुनिक हिन्दी नाटक की शुरुआत का सूचक है।"

मोहन राकेश का और एक प्रयोग लहरों के राजहंस" नाटक में अश्वघोस के सौदरनद" से संशयग्रस्त व्यक्ति के विशिष्ट स्थिति को ग्रहण करके आधुनिक व्यक्ति की उद्विग्न द्वन्द्व मानसिकता के नाटकीय चित्रण मिलता है। यह आस्था पूर्ण स्त्री, संशयग्रस्त पुरुष की तनाव और द्विविधा की नाटक है। उद्दाम प्रेम को तनावपूर्ण अधिकार से टकराहट होने से किस तरह का परिणाम स्थापित होते हैं, इस नाटक में अच्छी तरह दिखाया गया है। नंद और सुंदरी की टकराहट ने नाटक को जीवांतता तथा इसकी परिणति हीन परिणति ने आधुनिकता प्रदान की है। इस नाटक के उपलब्धियों को दृष्टि में रखकर रमेश अवस्थी इस प्रकार लिखते है कि - यह नाटक एक विशेष रचना पद्धति और शिल्प विधान के अनुसार एक सुगठित और तर्क संगत रूप बंधन से अधिकांश आधुनिक नाटक कारों ने अब मुक्ति पाली है।

मोहन राकेश के पहले दो नाटकों के पुरुष पात्र अंत में घर छोड़कर चले जाते हैं। लेकिन तीसरा नाटक "आधे अधूरे" में स्त्री पुरुष पात्र अनेक नीयत के बीच में फँसकर घर में रहने के लिए बाध्य हो जाते है। इस नाटक की कथ्य बाद में अनेक नाटकों को प्रेरणा भी दी है। मोहन राकेश अपने कथ्य में जो आत्म परिधान और प्रकृति के स्वरूप को रचाये है उसमें स्त्री पुरुष संबंध और नारी स्वातंर्त्य के स्वर गौण बन जाते हैं। परवर्ती नाटकों में इसी को मूल कथ्य बनाया है। स्वातंर्त्योत्तर हिन्दी नाटक को कथ्य गत दिशा देने में आधे अधूरे नाटक सफल हुई है। दिल्ली के निर्देशक प्रसन्ना मोहंती के अनुसार - "Aadhe Adhure is a situation of our society which is modern middle class family with tripical criticism and study- 1 उपलब्धि की दृष्टि से देखने से मोहन राकेश के नाटक के कथ्य बहुत छोटा होता है लेकिन उसके भीतर उनकी गहरी सूक्ष्म और विशाल दृष्टि से बहुत गंभीर विषय चर्चित होते हैं। कालिदास. नंद, महेन्द्रनाद और मल्लिका, सुन्दरी, सावित्री हमारे आँखों के सामने बसी हुई जिंदगी से

लिये गये पात्र हैं। आधुनिक कथ्य का प्रमुख विषय असंत्रुप्त है। कहीं भी कोई भी पात्र आधुनिक नाटक में संपूर्ण आनंद का आस्वादन नहीं करती हैं। राकेश अपने नाटकों में महान घटनाएँ रखकर उसे विशिष्ट नहीं बनाया है केवल संवेदनाओं के टकराहट के कारण उस कथ्य को और विशिष्ट बनाया है।

आधुनिक काल में मध्य वर्गीय परिवार एक सशक्त कथ्य बनाकर बाहर आता है। असंतुष्ट, कुण्ठित, अतृप्त जीवन नाटक का विषय बन गया है। स्त्री, पुरुष बच्चों के बीच जो अंतर्द्वन्द्व अब तक छुपाया गया है लेकिन मोहन राकेश उन जीवन रहस्यों को खोलकर समाज के सामने रख दिया है। कथ्य की दृष्टि से हिन्दी नाटकीय जगत को सोचने के लिए एक नया विषय, परिवार की प्रस्तावना, संबंधों की सही संकेत, समस्याओं को हल ढूँढने के लिए निरंतर संघर्ष की भिन्न धरातलों की तलाश का एक नया पहलू हमें दिखाई देता है।

राकेश द्वारा विश्लेषित किया गया स्त्री पुरुष संबंधों के यथार्थ परक प्रामाणिक चित्रण को और भी तीव्र, उत्तेजक और सौन्दर्य बोध बनाकर सुरेन्द्र वर्मा ने सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक", द्रौपदी", "आठवाँ सर्ग" नाटक लिखे। मूल्यों के बदलाव और दाम्पत्य संबंधों की गहरी तादम्यता की कथ्य सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" नाटक में स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। इस नाटक के बारे में रामगोपाल बजाज के शब्दों में - काल विशेष से बढ़कर नाटक विषय की दृष्टि से ही हमसे संबंध जोड़ता है। विशेषकर उसमें नाटककार ने एक काल खण्ड में कथा का आधार डालकर पात्रों को गरिमा देने का प्रयास किया है जो आज के जीवन में व्यक्तित्व के स्तर पर कम पड़ गया है क्योंकि रोजी की समस्या ने आदमी को बहुत ओच्छे स्तर पर जीने को मजबूर किया है। फिर भी स्त्री पुरुष की परस्पर अपूर्णता और पूरकता की ग्रन्थि जितना ही जटिल, शाश्वत प्रश्न है उतना ही सरल भीध् स्वतंत्रता के पश्चात नाटक विषय वस्तु और चरित्र की दृष्टि से वैचारिक स्तर से जुड़ गया है। आज का नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा सामाजिक वर्गीकरण के बंधनों को स्वीकार नहीं करता।

सामाजिक विषय को लेकर ऐतिहासिक परिवेश में रखकर यथार्थ वादी शैली के द्वारा सुरेन्द्र वर्मा ने अपने कथ्य बनाये हैं। स्त्री पुरुष के बीच काम संबंधों में जो कोमलता होती है उसको आक्रामक कथ्य बनाकर अनुभव का क्षेत्र विस्तृत करके जीवन के रहस्यों को स्पर्श करना वर्मा की विशेषता है। इस कथ्य की प्रयोगधर्मिता को बताते हुए देवेन्द्र कुमार गुप्ता के शब्दों में – "आधुनिक दृष्टिकोण को लेकर लिखे गये इस नाटक में काम संबंधों के अद्वितीय चित्रण मिलता है। ओक्काक करुणा, आक्रोश और तमाम विसंगतियों के बावजूद महत्तरिका और उसके यौन प्रसंगों को दिलचस्पी से सुनता है। काम संबंधों के चित्रण के साथ साथ शासक और शासक तंत्र के पारस्परिक संबंध और नपुंसकता के नाटकीय अभिशाप को भी चित्रित किया है।"

प्रसाद के बाद के नाटकों के स्त्री पात्र अतृप्त आकांक्षाओं की प्रतीक हो उठी है। "आषाढ़ का एक दिन" की मल्लिका, लहरों की राजहंस" की सुंदरी, "आधे अधूरे" की सावित्री, "द्रौपदी" की सुरेका, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" की शीलवती, "आठवाँ सर्ग" की प्रियंमंजरी, "कारफ्यू" में मनीषा सभी के सभी इसी मानसिकता से परिचालित है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर पहली बार आधुनिक हिंदी नाटकों में मानसिक द्वन्द्व के साथ-साथ स्त्री पुरुष संबंधों की मर्यादित व्याख्या करने के कारण और एक कथ्य हिंदी नाटकीय परंपरा को मिली।

डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल ने करफ्यू का सांकेतिक उपयोग किया। शहर में ही नहीं हमारे रोजमर्रा जीवन में भी करफ्यू लगाया गया है। विवाहित जीवन के बाद के सहज और विश्वसनीय दाम्पत्य के बारे में अनेक प्रश्न चिह्न लगाते हुए नव्य कथ्य का परिचय आधुनिक नाटकों में मिलता है। कुल मिलाकर यह तलाश मात्र चमत्कार एवं युवावर्ग की भोगवादी उच्छृंखलता बनकर रह जाता है। कला के लिए कोई सीमा नहीं आधुनिक संबंध और स्थिति यहाँ सीधे और सरल न हो कर जटिल और संश्लिष्ट है। आज कोई भी

व्यक्ति को सही या गलत कहना मुश्किल है। हिंदी नाटक के उपलब्धियों में मानवीय संबंधों के अलग कोणीय दृष्टि की प्रयोग निश्चय ही अन्यतम स्थान को प्राप्त करती है।

रचनाकार को परिवेश और युग से सदा प्रभावित रहता है उसे उपेक्षित कर वह कुछ भी सृजित नहीं कर सकता। आधुनिक हिंदी नाटक कारों को सब से ज्यादा परिवेश ने ही प्रभावित किया है। नाट्यानुभूति को पहली बार शब्दों के द्वारा भीष्म सहानी के नाटकों में अभिव्यक्त किया गया है। "हानुश" और कबिरा खड़ा बाजार में" नाटकों द्वारा भीष्म साहनी कलाकार की संवेदनशीलता का परिचय दिये हैं। हानुश का व्यक्तिगत सत्य और उसकी व्यक्तिगत त्रासदी एक वर्ग का सत्य था, कलाकार वर्ग की त्रासदी थी। शासन द्वारा प्रताड़ित उस कलाकार का सामूहिक सत्य, जो हर युग में होता आया है। इसलिए इन दो नाटकों में कलाकार की यह अनुभूति देश और कला की सीमा को लांघकर व्यापक अनुभूति बन जाती है। कबीर और हानुश नाटकों के बारे में लवकुमार लवलीन के वक्तव्य सही लगता है कि -- भीष्म साहनी का नाटक कबीरा खड़ा बाजार में मूलतः संवेदना को लेकर आगे बढ़ता है जिस संवेदना का नाटक हानुश है। दोनों का संबंध मध्यकालीन अंधनगरीत्व, शासकीय तानाशाही,अत्याचार, शोषण, कष्ट पूर्ण जीवन स्थितियों, व्यापक धार्मिक असहिष्णुताओं,कट्टरता, विडम्बित परिस्थितियों और इन सबके विरुद्ध अभिव्यक्ति के जन स्वातंर्त्य और मानव मूल्यों के लिए लड़ाई करने वाले दो सृजक कलाकारों से है, जो अपने जीवन मूल्यों को भूलकर अपनी सामाजिक, आर्थिक परिस्थिति को परे रखकर और अंततः अपने जीवन का बलिदान देकर परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ करते हैं।" राकेश के कालिदास में जो पलायनवादिता दिखाई पड़ी है वह भाव कबीर और हानुश में नहीं दिखाई पड़ती है। समस्याओं से दोनों नहीं भागते हैं उनका ठीक तरह से सामना करते हैं यह नव्य कथ्य की विशेषता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने नाटक "अंधेरी नगरी" में जो नीति बतायी है - शासक बदल रहे हैं लेकिन शासकीय नीति नहीं बदल रही है उसी तरह कलाकर का अनुभव मध्ययुग में कबीर और हानुश के ही नहीं पहले भी था और आज भी है। मानवीय मूल्य संवेदनाओं को सही रूप देना आधुनिक नाटकों का

मूलभूत विषय बन गया है। आधुनिक नाटकों में नाट्यानुभूति की सम्प्रेषणीयता भी नाटक की मूल चेतना से जुड़ी जाती है।

आधुनिक नाटकों में राजनीतिक व्यंग्य भरे नाटक अमूल्य निधि के रूप में बाहर आये हैं। राजनीतिक और आर्थिक भ्रष्टाचार का चित्रण बकरी, सिंहासन खाली है, रागदरबारी नाटकों में परिवेश की तमाम समस्याओं का चित्रण मिलता है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाटक बकरी हिंदी नाट्य जगत को ऐसे व्यंग्य भरे प्रतीकात्मक कथ्य प्रदान की है जैसे पशु प्रतीक के विधान द्वारा देश की राजनीति का नंगा चित्र लोगों के सामने प्रस्तुत किया। बकरी नाटक के माध्यम से नाटककार ने राजनीतिक मूल्यों को एक नयी दृष्टि से देखा है। पशु प्रतीक के माध्यम से राजनीतिक मूल्य की स्थापना और उसकी दिशाहीनता एवं मूल्यहीनता को निरूपित करने का यह नाटककार का अपना मौलिक प्रयास है। मुख्य रूप से राजनीतिक मूल्य पर दृष्टिपात करना ही नाटककार का लक्ष्य जान पड़ता है। और नाटक का प्रतिपाद्य विषय भी राजनीतिक संदर्भों से बाहर नहीं।"

अपने परिवेश को यथा रूप प्रतिबिंबित करना आधुनिक नाटक कारों का और एक कथ्य गत विषय है। सिंहासन खाली है" नाटक मूलतः राजनीति परिप्रेक्ष्य का व्यंगात्मक नाटक है और राजनीति की यथार्थ विसंगति को उभारनेवाला भी है। सिंहासन सत्ता का एक ऐसा प्रतीक है जिस पर बैठकर हमारे नेता असत्य, हिंसा और अन्याय की प्रतिष्ठा कर रहे हैं। जनता निरीह और बेबस अपमान भरा जीवन जीती है। यह सब आधुनिक नाटक कारों को सोचने के लिए और जनता तो जागृत करने के लिए नये कथ्य दिये। हमारे देश का संपूर्ण इतिहास राजनीति के कुचक्र, छल और विश्वासघात का साक्षी रहा है और स्वतंत्रता के बाद भी यह क्रम चलता ही रहा है। सबसे बड़ी त्रासदी तो यह है कि जो उस अन्याय और हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाते हैं,राजा और सत्ता के विरोध के नारे लगाते हैं, उसे बागी बताकर समाप्त कर दिया जाता है। सिंहासन की लोलुपता एवं सत्ता पर बैठकर जनता को परेशान करने का यह क्रम

लंबे समय से चला आ रहा है। इस लिए इसकी कोई अंत नजर नहीं आता। राजनीति के समकक्ष आधुनिक हिंदी नाटककार आर्थिक विषय भी अपने कथ्य में समेट लिया है। बकरी के राजनीति भ्रष्टाचार के पीछे, आधे अधूरे में संश्लिष्ट जीवन के पीछे आर्थिक गतिविधियाँ ही निक्षिप्त रही। मध्य वर्गीय मानसिकता को आधुनिक नाटककार अपने कथ्य बनायें हैं। मध्य वर्गीय जीवन का हर एक कार्य के पीछे निहित अंतःचेतनाएँ बहुत सहानुभूति पैदा करने की कोशिश की है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य के परिवेश के अनंतर हिंदी - बंगला - मराठी - कन्नड़ भाषाओं में आधुनिक दृष्टि संपन्न रचना धार्मिकता की सामान्य समानताएँ दिखाई देती हैं। और यह आधुनिकता की समानता मंच को एक विशेष स्थान प्रदान करने के प्रयास में भी दिखाई देती है। गिरीश कर्नाड़ के तुगलक, हयवदन, विजय तेंदुलकर के घासीराम कोतवाल, बादल सरकार के बाकी इतिहास आदि अनेक नाटक हिंदी में अनुवाद होकर हिंदी कथ्य जगत को सुसंपन्न किये थे। बहुभाषी नाटक के कारण हिंदी नाटक का सीधा संबंध संपूर्ण मानवीय और प्रकृतिगत व्यवहार की सोद्धेश्य से भी हो सकता है और भविष्य की धनात्मक प्रेरणा भी मिली।

आधुनिक परिवेश ने नाटककार को सूक्ष्म और गहरी विषयों पर सोचने के लिए मजबूर करती है। स्त्री वादी समस्याओं पर साम्प्रदायिक और दलित जीवन की त्रासदी पूर्ण जीवन पर भी आधुनिक नाटककार अपनी दृष्टि लगाये हैं। अपने नाटकों द्वारा इन्होंने हिंदी साहित्य की मुख्य धारा को प्रभावित किया। मुख्य धारा में आए इन मोडों, परिवर्तनों, प्रभावों ने समय-समय पर कुछ ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की, जिन्हें केवल वही अनुभव कर सकते थे, जो वास्तव में रचना के सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भ से गुजरे हो। नाग बोडस के दलित, माता प्रसाद के अन्त हीन बेडियाँ, धर्म परिवर्तन, तड़प मुक्ति की, झलकारी बाई आदि नाटकों में दलित जीवन के बारे में अनेक स्पष्ट सत्य को हमारे सामने रखते हैं।

इस प्रकार आजादी के बाद अनेक विशिष्ट कथ्य दर्शकों के सामने आये हैं। जो कथ्य गत विशेषता को लेकर नाटककार ने नाटक लिखे हैं उसको रंगमंच के निर्देशक ने और भी विशेष्य बनाये है। देश भर में ऐसा कोई समस्या नहीं जो समकालीन नाटक कारों ने ना चुना हो। अंधायुग से लेकर अन्त हीन बेडियाँ तक हर कथ्य में कोई न कोई उपलब्धि हिंदी नाट्य जगत को प्राप्त हुई है। परिवेश, प्रतीकात्मकता, आधुनिक व्यक्ति की परिकल्पना आदि अनेक विशिष्ट गुण हिंदी साहित्य को आधुनिक उपलब्धि के रूप में प्राप्त हुई है। इस संदर्भ में गिरीश रस्तोगी लिखते हैं कि - नाटककार या तो मनोरंजन प्रधान नाटक लिखते रहें या सामाजिक, राष्ट्रीय जागरण संबंधी या नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न,लेखन इस दौर का लगभग सारा नाट्य साहित्य संख्या में बृहत होते हुए भी मात्र पाठ्यक्रमीय नाट्य साहित्य है जिसमें रंगमंच की कोई स्पष्ट कल्पना या धारणा ही नहीं है - यहाँ तक कि इनमें रंग निर्देश भी पाठ्य है।"

4.1.2.विधा परक उपलब्धियाँ

नाटक की विधा प्राचीन काल से आज तक अनवरत गतिशील है। किसी काल में उसका विकास अधिक हुआ है, किसी काल में कम। लेकिन यह विधा लुप्त नहीं हुई। सम प्रेषण की दृष्टि से नाटक बड़ी सशक्त विधा है। इस नाट्य विधा पचास के बाद अनेक रूपों में अपनी संप्रेषणीयता को व्यक्त करने की चेष्टा करता है

को मजबूत करने के लिए और दर्शनीय चेतना को बढ़त्व देने के लिए पचासोत्तर नाटक अनेक नए विधाओं का सृजन करता है। उसमें गीति नाट्य, लोक नाट्य नुक्कड़ नाटक, नाट्य रूपांतरण और अनुवाद प्रक्रिया मुख्य रूप से लिया जाता है। इन प्रक्रियाओं के अवतरण से हिंदी रंगजगत को अनेक उपलब्धियाँ मिली हैं।

संस्कृत में शूद्रक के बाद आधुनिक युग में भारती का "अंधायुग" उस क्लासिक नाट्य परंपरा का पहला महत्वपूर्ण भारतीय नाटक है"। गिरीश कर्नाड़ का यह वक्तव्य सही लगता है क्योंकि गीति नाट्य को ठीक - ठीक परिभाषित करने, उसकी शक्ति और सीमा उपलब्धि और संभावना को रेखांकित करने तथा इस विधा की नाट्यात्मक क्षमता एवं काव्यात्मक सामर्थ्य को प्रदर्शित करके श्रेष्ठ नाटक का प्रतिमान स्थापित करने में जो योगदान अंधायुग ने दिया है, वह इस केवल हिंदी नाटक ही नहीं बल्कि संपूर्ण आधुनिक हिंदी साहित्य की अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। आंतरिक द्वन्द्व पर दृष्टि लगाना इस गीति नाट्य से ही मिली है। "अंधायुग" और सूखा सरोवर" इत्यादि गीति नाट्य हमें अपनी नैतिक रंगदृष्टि की खोज करने, उसकी अपरिमित सम्भावनाओं को तलाशने और उपलब्धि के विविध सोपानों को रेखांकित करने में बहुमूल्य योगदान दिये हैं।

लोक नाटक मानव के मूल अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। इस विधा पचासोत्तर नाटकीय प्रक्रिया को आगे ले जाने में सक्षम हुई है। लेकिन वैचारिक स्तर पर भावना से मुक्त होकर विचार के धरातल पर नाटकीय क्रियाकलाप से अलगाव का अनुभव करता है। नट-नटी संवाद तथा प्रयोक्ता इत्यादि लोक नाट्य से ही प्राप्त हुआ सफल उपलब्धियाँ है। "बकरी" नाटक से प्रतिरोध की चेतना" हिंदी नाटक को प्राप्त हुआ है। हबीब तन्वीर अपने रंगयात्रा में लोकनाट्य रूप नाचा" से हिंदी नाटक को सुशोभित किया है। मात्र मनोरंजन ही नहीं, वरन सामाजिक परिवर्तन के लिए आवश्यक एक सांस्कृतिक भूमिका का भी लोक नाटक के माध्यम से हो रहा है।

लोक नाटक से हिंदी नाटक किस हद तक प्रभावित हुआ है। नीचे दिये गये वक्तव्य से हमें स्पष्ट होता है-हिंदी के समकालीन नाटकों में साम्प्रदायिकता के विरोध के तथा राष्ट्रीय एकता - स्वातंर्त्य और समता के जो स्वर प्राप्त होते हैं, उनमें एक सीमा तक लोक नाट्यों का योगदान माना जा सकता है।

इसलिए कथ्य के स्तर पर समकालीन हिंदी नाटकों में लोक नाट्यों का ही प्रभाव नहीं पड़ा है, वरन् आधुनिक दृष्टिकोण का भी उन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।"

पचासोत्तर हिंदी नाटक का परिवर्तित रूप नुक्कड़ नाटक समकालीन जीवन की रोजमर्रा की समस्याओं के उत्पन्न संघर्ष की प्रेरणा के परिणाम - स्वरूप उभरा एक नाट्य -रूप, नाट्य प्रयोग है जिसके जरिये कुरीतियों, अंधविश्वासों, आडंबरों, रूढयिों में जकड़ी सामाजिक व्यवस्था का उद्घाटन और प्रवर्तमान पूंजीवादी - सामंती ढांचे की आर्थिक - सामाजिक, राज नैतिक विषमताओं के दुष्चक्र में फँसे जन जीवन की विडंबनाओं, तथा आज की दूषित अवसरवादी, राजनीति और प्रशासन के साथ पूंजीवादी-सामंत गठबंधन को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जाता है। मात्र मनोरंजन के लिए कला" के पक्ष को नकारकर उसे जन पक्षधर भी सिद्ध करना नुक्कड़ नाटक की अपनी खास विशेषता है। जन पक्षधरता ही नुक्कड़ नाटक की सशक्त उपलब्धि माना जाता है।

नाट्य रूपांतरण प्रक्रिया ही पचासोत्तर नाटकीय सशक्त उपलब्धि है। उपन्यास और कहानी जैसे कठिन विधा को मंच के लिए परिवर्तित करना बड़ा ही चुनौती पूर्ण विषय है। गोदान, मैला आँचल, रागदरबारी जैसे सशक्त उपन्यास, परमात्मा का कुत्ता, कसाई बाड़ा, नंगी आवाजें, जैसे कहानियों को रूपन्तर करके दर्शकों को इन महत्वपूर्ण रचनाओं की आत्म और जीवन स्पन्धनों, दृश्यात्मक माध्यम की लय से संप्रेषण करने की चेष्टा की गई है। नये ढंग से, नये सिरे से सोचने और कल्पना शक्ति को विस्तार करने की सुविधा इस नाट्यरूपांतरण से मिलता है। इस प्रक्रिया से पचासोत्तर नाटकीय प्रक्रिया को नयी दृष्टि मिली है।

पिछले पन्द्रह बीस वर्ष में भारतीय भाषाओं में, विशेषकर हिन्दी में नाटकों के अनुवाद की प्रक्रिया बड़ी व्यापक और तेज हो गयी है। इस अनुवाद प्रक्रिया के कारण मराठी, बंगला, कन्नड़ इत्यादि भाषाओं से हिन्दी में ज्यादातर नाटक अनुवाद होकर मंचित हुए है। जुलूस, बाकी इतिहास आदि बादल सरकार के

नाटकों हिन्दी मंच को सुशोभित करने में सफल हुए हैं। गिरीश करनाड़ के "हयवदन", "तुगलक" और मराठी से विजय तेंदुलकर के खामोश अदालत जारी है", घासीराम कोतवाल" आदि अनुवाद होकर 1975 के बाद रंगमंच को जीवंत करने में सफल हुए है। अन्य प्रयोग के कारण भाषागत संस्कृति से हिन्दी दर्शक अच्छी तरह परिचित होते हैं।

इस प्रकार 1950 से 2000 तक के हिन्दी नाटक को सृजनात्मक बनाने में उक्त विधाएँ निर्णयात्मक भूमिका निभाई है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी प्रयोगों में विधागतपरिवर्तन किसी चालू फैशन के कारण नहीं बल्कि एक रचनात्मक भावबोध, और कलात्मक विवेक पर आधारित है। इन उपलब्धियों के कारण पचासोत्तर हिन्दी नाटक अपने क्षेत्र को व्यापक बनाने में सफल हुआ है।

4.2.3 मंच परक उपलब्धियाँ

रंगमंच एक सजीव कला रूप है। मानवीय अभिव्यक्ति के लिए सफल माध्यम के रूप में रंगमंच मशहूर है। पचासोत्तर नाटक रंग मंचीय चेतना से परिपूर्ण है। पचास के बाद नाटक और रंगमंच के संबंध का भी नवारंभ हुआ है। रंगमंच के विकास की गति इतनी तीव्र हो गई है कि नाट्य रचना की दृष्टि से क्रांतिकारी परिवर्तन देखने में आये हैं। पचासोत्तर प्रमुख नाटककार धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल आदि सभी ने न केवल नाटक और रंगमंच के पारस्परिक संबंधों को स्वीकार किया है अपितु स्वयं रंगमंच के अनुकूल नाट्यकृतियों का सर्जन किया प्रसार इस सीमा तक कर दिया है कि दर्शकों में नाटक देखने की अभिरुचि को सघन करने में भी अपूर्व योगदान दिया है।

पचासोत्तर रंगमंच में दृश्यात्मक परिकल्पना एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में स्वीकारा गया है। अंधायुग से लेकर सभी नाटकों में उस प्रत्येक परिवेश के अनुसार दृश्य बंध का निर्माण किया गया है। हिंदी रंगमंच

को उत्कृष्ट बनाने में इस सैटिंग" आधुनिक नाटक के महत्वपूर्ण और आत्यन्तरिक अंग है। अंधायुग, करफ्यू, आधे अधूरे नाटक के दृश्य बंध हिंदी नाटक में महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में ले सकते हैं।

मंच पर प्रस्तुत पूर्व नाटककार और निर्देशक के हाथों में ही नाटक रहता है अन्ततः नाटक दोनों के हाथों से छूटकर अभिनेताओं के हाथ में आ जाता है। पात्र की परिकल्पना करने में पचासोत्तर नाटककार सफल सिद्ध होते हैं। धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, सुरेंद्र वर्मा,भीष्म सहानी के पात्र अपने हर तरह के भावों को प्रकट करने में हिचकते नहीं। मोहम राकेश के पात्रों की चेष्टाओं को दृष्टि में रखकर राकेश वत्स इस प्रकार लिखते हैं कि -- थकान निकालने के स्वर में, कुछ हताशा भाव से, अपराधी स्वर में, छिले हुए स्वरों में, तीखी नजर उस पर डालकर ओछा पड़कर, तिरस्कार पूर्ण स्वर में, धीमा पड़कर, प्रजापति स्वर में, गहरी वितृष्णा के साथ, रुलाई लिए स्वर में, लगभग डांटती, उतावली पड़कर, आँखें फाड़कर देखते हुए, कमजोर पड़कर ढीठपन के साथ, ऊँचे स्वर में इसी तरह हर भाव, हर मुद्रा, हर अंग की हरकत को राकेश ने रंग संकेतों से निर्देशित किया है।"

पचासोत्तर नाटक कारों ने वेशभूषा का प्रतीकात्मक प्रयोग ही अधिक किया है। अंधायुग नाटक को निर्देशित करने वाले सभी निर्देशक महाभारत संबंधी रूप सज्जा एवं वेशभूषा में प्रस्तुत किया है। आधे अधूरे नाटक में काले सूटवाले आदमी, द्रौपदी नाटक में पाँचों नकाब वाले आदमी को अपने पात्र परिचय के लिए इस रूप सज्जा ही ज्यादा सहायता देती है। रूप सजेगा के साथ पचासोत्तर नाटकों के उपलब्धि के रूप में प्रकाश व्यवस्था को भी हम गिन सकते हैं - पात्रों की मनःस्थिति को उभारने में प्रकाश योजना को इस्तेमाल किया गया है। लेकिन नुक्कड़ नाटकों में इस व्यवस्था को गौण स्थान दिया गया है।

पचासोत्तर नाटक को सजाने के लिए संगीत का प्रयोग होता है। संतोष या दुख भरे पूर्ण स्थितियों को तीव्र बनाने के लिए इस संगीत और ध्वनि का उपयोगी करण किया गया है। "अंधायुग" नाटक में अनेक ध्वनियाँ सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया गया है। सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक"

नाटक में भी रात और प्रातःकाल के अनेक ध्वनियों का सुनिश्चित रूप से प्रयोग किया गया है। ध्वनि और संगीत लोक और नुक्कड़ नाटकों का प्राण तत्व है। आधुनिक मंच को आकर्षक माध्यम बनाने में ये सभी तत्व साक्षी है - पचासोत्तर रंगमंच के विकास के साथ निर्देशक का महत्व भी बढ़ा है। पचास के बाद अलग-अलग निर्देशक, अपनी पसंद, रुची के अनुसार एक ही नाटक की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ, भिन्न-भिन्न शैलियों में प्रस्तुत करते हैं, इससे नाटक की संभावनाएँ उजागर होने लगती हैं। प्रदन की पहचान निर्देशक की प्रतिभा से निर्धारित होने लगी है। राम गोपाल बजाज, ओम शिवपुरि, हबीब तन्वीर, बी.वी. कारंत आदि ने सफल निर्देशक के रूप में विख्यात हुए हैं। इस निर्देशन की योगदान पर दृष्टि रखकर नेमिचन्द्र जैन इस प्रकार लिखते हैं कि - पचासोत्तर प्रदर्शनों और प्रयोगों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है दर्शकों के साथ अधिक तादम्य लगाव। अकसर निर्देशक ऐसी युक्तियों का सहारा लेते हैं जिससे नाटक की कार्य व्यापार दर्शकों के बीच में से होता है। प्रेक्षागृह में अभिनेताओं की उपस्थिति, उनके प्रवेश - प्रस्थान उनके जुलूस आदि के द्वारा निर्देशक दर्शकों को तटस्थ नहीं बना रहने देता, कार्य व्यापार में घसीट लेता है, साझीदार बना लेता है। पिछले दिनों अनेक प्रदर्शनों में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ी है।"

पचासोत्तर नाटक की विशेष उपलब्धि उनके दर्शक ही है। अंधायुग, आधे अधूरे, हानुश इत्यादि नाटकों को हजारों दर्शकों ने देखे हैं। पचासोत्तर रंगमंच की महत्वपूर्णता इसी वर्ग पर आधारित है। हिन्दी नाटक के दर्शक सचेत और आधुनिक हैं। इस काल के नाटक की प्रस्तुति में दर्शकों की सहभागिता बढ़ाने के लिए अनेक मंचीय प्रयोग मिलते हैं। अस्सी के बाद यह दर्शक वर्ग सचमुच बहुत सीमित और अल्प हो गया है। यह बड़ी चिंताजनक स्थिति है। दर्शक को इस विधा के प्रति आकर्षित करना समकालीन नाटककार पर ही निर्भर है।

इस प्रकार पचासोत्तर रंग मंचीय उपलब्धियों से हिन्दी नाटक अनेक सफल मोडों को पार कर प्रसिद्धि पाई है। समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच का विकास देश और विशेषतः हिन्दी क्षेत्र की सामाजिक स्थिति से संबंधित रहा है। उक्त उपलब्धियों से सामाजिक स्थितियाँ रंगकर्म तथा रंग चेतना भी प्रभावित होती हैं। आगामी पीढियों को मनोरंजन के लिए विभिन्न रंग युक्तियों, परिकल्पनाओं आदि से परिचय उक्त उपलब्धियों से ही प्राप्त होती हैं।

4.1.4 शिल्प परक उपलब्धियाँ

कथ्य के साथ - साथ युग में पारंपरिक शिल्प को भी नकार कर अनेक नए प्रयोगात्मक उपलब्धियों की खोज की गया। पारंपरिक नाट्य रचना को छोड़कर सम-सामयिक जीवन-स्थितियों के अनुरूप नये-नये नाट्य शिल्प के प्रयोग शुरू किया गया है। इस युग में सदियों के बाद रंगमंच के लिए नाटक लिखे गए। प्रथम चरण में नृत्य, गीत आदि के रूप में द्वितीय चरण में कथा और चरित्र का रंग डालकर नाटक एवं रंगमंच की निर्मित सामाजिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए ही हुई। ज्यों-ज्यों मनुष्य का जीवन सरल से संश्लिष्ट होता गया, उसके रंगमंच में स्वभावतः पूर्ण रचित नाट्यकृति की अपेक्षा होती गई और यह अपेक्षा इतनी बढ़ी कि रंगमंच का पूरा रूप उसका सारा स्थापत्य नाट्यकृति में अंतर्निहित हो गया। आधुनिक नाटकों में विस्तृत रंग संकेतों का प्रयोग अति आवश्यक माना गया। प्रत्येक अंक तथा प्रत्येक दृश्य के आरंभ में दृश्य विधान, स्थान, उद्यान वातावरण आदि का विशद संकेत तो होता ही है साथ ही पात्रों की स्थिति, रंग, आयु, वेशभूषा, उनकी मुद्रा तथा अन्य रंगमंच संबंधी विशिष्ट बातों का विस्तृत चित्र दे दिया गया है। यह हिन्दी नाट्य शिल्प को एक उपलब्धि के रूप में स्वीकारा गया है। आधुनिक नाटक कारों की भूमिका और भी विस्तृत बन गयी है। लक्ष्मीनारायण लाल लिखते हैं कि -नाटककार केवल लेखक ही नहीं है, वह प्रस्तुतकर्ता, निर्देशक की प्रतिभा,अभिनेता और रंग शिल्प पहले की कला से परिचित होने की अपेक्षा रखता है आधुनिक नाटकों की विशेष उपलब्धि भाषा ही है। एक व्यक्ति से

दूसरे व्यक्ति तक अपने निजी उपलब्धि पहुँचाने के लिए एक सरल, सुव्यवस्थित और सशक्त भाषा की आवश्यकता है। भाषा परक अनेक नए प्रयोग करने के लिए हिन्दी नाटक निरंतर सक्रिय रहा है। रूढयिों, परंपराओं, अस्वाभाविकताओं का त्यागकर, नवीन प्रथाओं, विचारों, प्रवृत्तियों और नवीन प्रयोगों को ग्रहन करने की उदारता उसमें सदैव रही है। आधुनिक हिन्दी नाटकों में भाषा एक अनवरत रुप लेकर सम प्रेषण को और भी विशिष्ट बना दिया है।

आधुनिक नाटक कारों ने भाषा शैली का विशेष ध्यान रखा है। अपने नाटकों में अवसर के अनुकूल, प्रांतीय भाषाओं और बोलियों का प्रयोग किया है। आधे अधूरे में पात्र पंजाबी मिश्रित हिन्दी में बोलते हैं। लहरों के राजहंस", "आषाढ़ का एक दिन" के पात्र संस्कृत गर्भित हिन्दी बोलते है। मोहन राकेश के नाटकों में प्रयुक्त होने वाली भाषा सचमुच हिन्दी भाषा की अन्यतम उपलब्धि है। सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में प्रयोग होने वाली भाषा जीवन से जुड़ी हुई है - हबीब तन्वीर अपने नाटकों में छत्तीसगढी कलाकारों से छत्तीसगढ़ भाषा में अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त करवाये हैं। भीष्म साहनी के नाटकों में मध्य वर्गीय जीवनानुभों से जुड़ी हुई भाषा का उपयोग किया गया है।

जब हिन्दी नाट्य जगत में नुक्कड़ नाटक का दौर शुरू हुआ तब जन मानस की भाषा का उपयोगीकरण बढ़ गया है। सफदर हाशमी, असगर वजाहत, डॉ. चन्देश, रमेश उपाध्याय, गुरु चरण सिंह के नुक्कड़ नाटकों में कस्बाती बोलियों का ज्यादातर उपयोग किया गया है। शब्दों से मुक्ति की परिकल्पना करने लगे। इस संदर्भ में देवेन्द्र राज अंकुर लिखते हैं - बीसवीं शताब्दी के रंग इतिहास में पूरे विश्व में नाटक के इसी प्राण तत्व शब्द से ही मुक्ति पाने की कोशिशें होती रही है, और सब से दिलचस्प तथ्य यह है कि जहाँ जहाँ शब्दों को पीछे छोड़ते हुए मात्र अभिनेता की वाणी और शरीर के माध्यम से एक नई रंग भाषा तैयार करने की दिशा में लगातार काम हुआ, वहाँ भी अंततः शब्द ही नाट्य प्रस्तुति के केन्द्र में रहा।" साठोत्तर के बाद लिखे गये जादा तर नाटकों में अँग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग बढ़ गयी है। आधे अधूरे

में,करफ्यू और द्रोपदी नाटकों में जादा तर अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मिलता है। यह बात तो सच है कि पचासोत्तर नाटककार ने अपने नाटकों में भाषा का चुनाव बहुत सोच समझकर करते हैं। दलित नाटकों में तो एक-एक शब्द मनुष्य के आहत से जन्में हुए लगते हैं। असगर वजाहत के पाँच नाटक और नाग बोडस के तीन नाटक" में इस्तेमाल करने वाली भाषा विशिष्ट छाया की सृष्टि करती है।

आधुनिक हिन्दी नाटकों में संवादों पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। अत: नाटक में, संवादों को संक्षिप्त, सरल बनाया गया है। करफ्यू नाटक में संवाद छोटे होते हैं। सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" नाटक में संवाद बड़े-बड़े होते हैं। साधारणतया आधुनिक नाटकों में सरल, चुस्त,प्रभावशील संवाद मिलते हैं। संवादों की दृष्टि से देखने से आधुनिक नाटकों में सुरुचिपूर्ण संवाद और बड़े प्रभावशाली पूर्ण संवाद मिलते हैं। पचास के बाद आधुनिक हिन्दी नाटकों के संवादों में प्रशासनिक मुद्राएँ और भंगिमाएँ सब एक तरह की नहीं है। उनमें से प्रश्न को टालना या उससे बच निकलना भी एक है। सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक नाटक में नीचे दिए गए संवाद निश्चय ही हिन्दी नाटकों में अन्यतम उपलब्धि ही है। जैसे -

शीलवती : सुखी हो? प्रतोश : तुम सुखी हो? शीलवती : मैं ने तुम से पूछा है। प्रतोश : तो दुखी भी नहीं हूँ।....वैभव बहुत कुछ दे देता है, और जो नहीं दे पाता, वह उतना महत्वपूर्ण नहीं लगता। शीलवती : यह क्यों नहीं किया ? प्रतोश : (कृत्रिम आश्चर्य से) यह क्या होता है ?

वस्तुतः भाषा का जगत ही मनुष्य की भावना का जगत भी होता है। हम जो भाषा प्रयोग में लाते हैं वह जीवन और जगत के प्रति हमारी धारणा का प्रतीक भी होती है। एक पात्र की अवधारणा दूसरे के लिए भ्रामक और विवेकशील प्रेक्षक के लिए हास्यास्पद भी हो सकती है। पर आधुनिक नाटक रूढ़ियों और सामान्य के विरुद्ध है। इस लिए उसमें अप्रत्यक्षित, उलझे हुए, असाधारण किस्म के संवाद अधिक मिलते हैं। आज का जीवन असामान्य घटनाओं और जटिल अनुभवों के बीच उलझता जा रहा है। इसके साथ ही

जीवन और जगत को देखने की दृष्टि भी बदली है। अतः आज की बदली हुई स्थितियों के साथ संबंधों का जो अलगाव आया है उसमें संवाद या तो रह नहीं गया है या उसकी मुद्राएँ बदल गयी हैं। वस्तुतः हिन्दी नाटकीय जगत को उपलब्धि के रूप में नकारात्मक, प्रश्न गर्भित, तीखी, तल्ख, कुटिल और यांत्रिक संवाद मिले हैं। केवल भाषा, संवाद योजना ही नहीं हिन्दी नाटक कारों ने अपने सफल संप्रेषण के लिए प्रतीकों और बिंबों को चुना लिए हैं, वहाँ अपेक्षित प्रभाव पैदा करने की कोशिश की गयी है। लहरों के राज हंस", "बकरी", योर्स फेथफुली" आदि नाटकों में प्रतीकों की भरमार प्रयोग मिलती है। आधुनिक नाटकों में नवीन प्रवृत्तियों के द्वारा संवाद रचना में प्रतीक और बिबं योजना की भी किसी प्रकार उपेक्ष नहीं की जा सकती है। लेकिन शिल्प की उपलब्धि के रूप में भारती, राकेश, सुरेंद्र वर्मा ने इसका काव्यात्मक प्रभाव के लिए विशेष प्रयोग किया है।

आज नाटककार इस सत्य से पूरी तरह अवगत दिखाई देता है कि शब्दों की अलग से कोई विशेषता नहीं, उनके अर्थवत्ता वाक्य में उनके विन्यास और रंगीय संभावनाओं पर निर्भर करती है। वस्तुतः संवाद की बोले जाने की प्रक्रिया अभिनय की आधार भूमि है। कई अन्य प्रकारों के साथ नाटकीय संवेदना को रूपायत करने, बिंबों को उभारने, प्रेक्षक की कल्पना जगाने आदि में संवाद मुख्य भूमिका निभाते है। हिन्दी नाटक साहित्यिक प्रवृत्ति से रंगमंच की ओर उन्मुख हुआ है। यह अपने में एक घटना है जिसके दूरगामी परिणाम भाषिक और संवाद रचना के वैविध्य,साम्य-वैषम्य, गति, लय, दृश्यत्व क्रिया तथा भाषेतर माध्यमों के समाहार में दिखाई देते हैं। आधुनिक युग में रूप विधान को लेकर जहाँ कई नए प्रयोग हुए हैं, वहाँ संवाद के क्षेत्र में कोरस, संगीत, नृत्य प्रेक्षक का सामीप्य संबोधन और अलगाव जैसी प्रवृत्तियों को भी अपनाया गया है।

शिल्प गत उपलब्धि में भाषा के आंगन में मौन भी आता है। अंधायुग में विधुर गांधारी के समक्ष युयुत्सा को प्रस्तुत करते हुए उसे आशीर्वाद देने को कहते हैं, किन्तु गांधारी मौन रह जाती है। यहाँ एक वास्तविक

मौन की स्थिति है और दूसरी वह शाब्दिक स्थिति भी, जिसमें शब्द स्वयं मौन के प्रतिरूप हो जाते हैं। आधे -अधूरे में पात्रों के बीच का तनाव, तल्की, उपेक्षा, घृणा आदि जहाँ शब्दों से व्यक्त हुए हैं वहाँ मौन से भी। सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक नाटक में प्रतोष और शीलवती के शारीरिक संबंध में आनंद की चरम परिणति को व्यक्त करने के लिए इसका अच्छा प्रयोग हुआ है। लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में एक पात्र की अपेक्षा दोनों पात्रों के मौन का प्रयोग करना बदलाव के अधिक निकट हुआ है। सामान्यतः इसे विराम के नाम दिया गया है। यह प्रक्रिया भी हिन्दी नाट्य जगत को उपलब्धि के रूप में भी मिला है।

पहले नाटक की भाषा सर्जन की भाषा थी, अब वह सही अर्थों में सर्जनात्मक भाषा है। इसलिए आज यदि इस बात का उत्तर देने की बाध्यता आना पड़े की हम पर्व पीढ़ी से किस बिन्दु पर भिन्न है तो इसके लिए किसी अन्य रास्ते पर न जाकर सर्जनात्मक लेखन की भाषा की सक्षमताओं को पलटना होगा। वस्तुतः यही भाषा अपने सूक्ष्म विषयों में एक नई नाट्य दृष्टि की वाहिका भी बनी। आधुनिक काल के परिवर्तित विकास में नाटक कारों ने भाषा का अन्वेषण ही नहीं किया, उसके साथ एक नई दृष्टि बनाई। उसने इस अहसास को भी अर्जित किया कि भाषा मनुष्य की अस्मिता, अनुभव और चेतना से दूर जा पड़ी हैं। फलतः नाटकों में भाषा अब सीधी सपाट वस्तु नहीं रही, वह मानवीय व्यवहार का अंग बन गयी है।

आधुनिक हिन्दी नाटक ज्यादा अतीतोन्मुखी है। अतीत को हमारे सामने पेश करते हुए वर्तमान को जवाब देने के लिए तत्पर है। इस संदर्भ में सुरेन्द्र वर्मा कहते हैं - व्यक्तिगत रूप से मेरा मन अतीत की स्वर्णिम छवियों में बहुत रमता है। अतीत के वे चरित्र, उनका परिवेश, साज-सज्जा, रहन-सहन, वस्त्राभूषण, चाल-डाल में मुझे एक अद्भुत आकर्षण लगता है। अतीत के झरोखे से अपने वर्तमान को देखना एक सुखद अनुभव है। यूँ सामान्यतः मिथ से चूंकि अधिकांश लोग पहले से परिचित होते हैं, इस लिए चरित्रों और स्थितियों के निर्माण पर अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता सिर्फ उन्हें एक नयी व्याख्या

भर देनी होती है। प्रकारांतर से ये भी अपनी परंपरा को पहचानने और उससे जुड़ने की ही प्रक्रिया है। अपने समृद्ध मिथक साहित्य का प्रयोग हमें करना ही चाहिए" जब अतीत कथ्य बन जाता है तो उसके साथ शिल्प अतीत न बनकर आधुनिक गरिमा से तैयार किया जा रहा है। इस विषय में आधुनिक नाटककार सफल भी हुए हैं। यह भी एक नयी उपलब्धि के रूप में हिन्दी नाट्य जगत को महत्वपूर्ण योगदान दिये हैं।

एक छोटे विषय को लेकर आज नाटक लिखने लगे हैं। गहरी और चिंताजनक विषय छोटा ही हो लेकिन उसमें सम्प्रेषणीयता अधिक मात्रा में मिलती है तो उस कथ्य को लेकर भाषा,संवाद आदि प्रवृत्तियों पर दृष्टि लगाकर उसे महत्त्वपूर्ण कृति बना दिया गया है। आधे-अधूरे से लेकर धर्म परिवर्तन तक हर नाटक में कथ्य छोटी ही रहती है लेकिन उसे कहने का दंग विशिष्ट स्थान प्राप्त कर रही है। इस संदर्भ में गोविंद चातक के शब्द सही लगते हैं- "उनमें व्यंग्य, प्रहार, तीखापन, अप्रत्याशितता, अंतर्विरोध, गोपन, नकार, उलझलूलपन, अश्लीलत्व आदि कई प्रवृत्तियाँ समाहित हो गयी हैं। संवाद अब सीधी प्रशनोंत्तर शैली से बाहर निकलकर मानव व्यवहारों की जटिलताओं को व्यक्त करने लगे हैं। एक और पात्रों की स्थितियाँ और जीवन संदर्भ संवाद रचना में अपनी भूमिका निभाने लगते हैं, दूसरी ओर नाटक कारों की अपनी दृष्टि भी कम महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकती है।"

आधुनिक नाटकों में आये हुए गीतों का वह काव्यात्मक स्वरूप नहीं मिलता, जो प्रसाद आदि नाटकों में पाया जाता है। धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, सर्नेश्वरदयाल सक्सेना,मणि मधुकर, हबीब तन्वीर ने अपने नाटकों में ज्यादातर गीतों का प्रयोग किये हैं। इनकी भाषा, टोन, शब्द विधान आंचलिक है। सैंकडों शब्दों से कहने वाले विषय एक गीत के माध्यम से कह सकते हैं। "बकरी" नाटक में गीत बहुत मशहूर हुए हैं। हबीब तन्वीर नाटकों में छत्तीसगढ़ के लोक गीतों का भी बड़ी चर्चा हुई है। इस प्रकार नाटकीय तत्वों में भी गीतों का प्रयोग एक बड़ी उपलब्धि के रूप में उभरकर बाहर आती है।

बौद्धिक वर्ग के साहित्यिक रंगमंच के साथ आम आदमी के समान्तर रंगमंच की बात बार - बार उठ रही है। इसके अनेक प्रयोग वर्तमान समय में हुए हैं। इप्टा ने नुक्कड़ नाटकों के संदर्भ में मंचीय प्रवृत्तियों और शिल्प उपकरणों से प्रभावी अभिनय के अनेक प्रयोग किये है। सफदर हाशमी के जनम" ने भी नुक्कड़ नाटयान्दोलन को आगे बढ़ाई है। हबीब तन्वीर ने नया थियेटर" में लोक नाटकों का मंचन किया है। यह बात स्पष्ट है कि समकालीन रंगमंच मात्र मनोरंजन का साधन नहीं रह गया - वह सोद्धेश्य के रूप में दर्शकों तक अपनी बात पहुँचाना चाहता है। यह बात सीधे न कह कर यथार्थ संवेदनाओं को मूर्त रूप में उपस्थिति करके दर्शकों के हृदय तक पहुँचायी जाती है। इस प्रकार आधुनिक नाटकों में अनेक युक्तियाँ प्रयोग किये गये है जिससे नाटकों का संदेश बड़ी तीष्णता से दर्शकों तक पहुँच सके।

वर्तमान जीवन की विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए हमारे हिन्दी नाट्य जगत में भी रंगमंच की दृष्टि से एब्सर्ड नाटक की परंपरा विकसित हुई है। ऐसे नाटकों में तमाम रंग मंचीय प्रयोग हुए हैं। नेपथ्य का हटना, दर्शकों में से ही नाटक शुरू किया जाना, घटना, चरित्र न होकर दृश्यों एवं संवादों के माध्यम से विसंगत स्थितियों का बोध कराया जाना, मुखौटों और नकाबों का प्रयोग, एक ही पात्र द्वारा अनेक पात्रों का अभिनय, प्रकाश योजना द्वारा दृश्य परिवर्तन, ध्वनियों के विभिन्न सार्थक प्रयोग, संगीत, आदि समकालीन रंगमंच में ऐसे अनेक प्रयोग किये जा रहे हैं, यह सब हिन्दी नाट्य शिल्प के उपलब्धियों में गिने जाते हैं।

इस प्रकार नाटक संस्कृत में जन्म लेकर अनेक अविभाज्य कालों में से गुजर कर सन 2000 तक आने पर अपने लिए एक स्वतंत्र भाषा को निर्मित कर उसमें अनेक प्रयोग किये गये है। अंक योजना, शब्द प्रयोग, प्रतीक, व्यंग्य सभी स्तरों में एक जीवन दर्शन और नई भाव भूमि को स्वायत्त कर लिखे जा रहे नाटकों ने अभिव्यक्ति के लिए नये प्रकार के शिल्प गत प्रयोग की हैं। परंपरा से अलग हटना इस काल में

सराहना किया जाता है। अनेक परंपराएँ घनीभूत हो गई है। मिट्टी में अनेक परंपराएँ मिल गई है। प्रयोग, प्रयोग केवल प्रयोग ही समकालीन नाटक की प्रवृत्ति बन गयी है।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी नाटक को कथ्य और शिल्प के स्तर में अनेक उपलब्धियाँ मिली हैं। भारतेन्दु अपने नाटकों द्वारा समाज का सही चित्रण करने का प्रयत्न करते है। बाद में प्रसाद ने अपने वर्ग अभिजात्य की रक्षा के लिए प्रयोग धार्मिकता के नाटक लिखते हैं। अपने अभिजात्य वर्ग की दिशानिर्देश देने के लिए और उनके मन में अभिजात्य छाप छोड़ने के लिए प्रयत्न प्रसाद के नाटकों में मिलता है। लेकिन जिस प्रकार प्रसाद इतिहास संबंधी, पौराणिक कथाओं को लेकर हिन्दी नाटक लिखे हैं उसी तरह आधुनिक नाटककार भी लिखे हैं लेकिन - साठोत्तरी नाटक में जो कथावस्तु है वह समकालीन जीवन से ली गयी है और जिन नाटकों में ऐतिहासिक, पौराणिक कथावस्तु है, वह समकालीन जीवन से ली गयी है, वह भी समकालीन जीवन का अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में ली गयी है। अर्थात ऐतिहासिक, पौराणिक कथावस्तु वाले नाटकों का उद्देश्य इतिहास, पुराण के माध्यम से सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति है।"

4.2 परिवर्तन की संभावनाएँ

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम ही नहीं बल्कि वह सामाजिक संदर्भ में ध्रुव सत्य है। हर क्षण हरेक चीज परिवर्तित होती है। समाज के विरुद्ध जाकर ही अनेक सिद्धांत पनपते हैं। समाज के साथ सह जीवन करने से कमजोर हो जाते है। परिवर्तन से ही मानव की मुक्ति होती है। बचपन से यौवन तक यौवन से वृद्धाप्य तक परिवर्तन से ही परिपूर्णता मिलती है। सामाजिक मूल्यों, उद्देश्यों में भी परिवर्तन पाया जाता है। जो व्यक्ति या समाज परिवर्तन को छोड़ देने से बहुत ही थोड़े समय में अंतिम छोर तक पहुँचने की संभावना है।

यह सभी जानते है कि बाह्य जगत का सब कुछ निरंतर बदलता रहता है, राजनीतिक स्तर पर उथल पुथल होती है, आर्थिक स्तर पर नयी योजनाएँ बनती हैं, वैधानिक स्तर पर नये अध्यादेश सामने आते हैं और य सब मिलकर हमारे जीवन को अनजाने ही बदल देते हैं। कुछ सूक्ष्म परिवर्तन को हम पहचान नहीं पाते उसके प्रति सजग नहीं हो पाते और महज प्रतिक्रिया स्वरूप धीरे-धीरे बदलते रहते हैं। बाहरी परिस्थितियाँ आदमी को बदलती हैं, लेकिन बदलाव के दशा में पुराने मूल्य छूटते है और नये मूल्य अपनाये जाते हैं। पुरानी दृष्टि से स्थान पर नयी दृष्टि सामने आती है। संबंधों के स्वरूप बदलते है। मान्यताओं में जो परिवर्तन आता है उसके तहत मनुष्य का जीवन निर्भर रहता है।

एक विशेष नजर से देखा जाये तो शायद मोटे रूप में संस्कृति को दो मुख्य धारओं में बांटा जा सकता है। एक शासक वर्ग का संस्कृति होता है और एक शासिक वर्ग का। आदिकाल से ही वेदों को ब्राह्मण ही पढ़ने लायक बना दिया है तब से हमारा साहित्य दो भागों में बंट गया था। इन दो धारणाओं में साहित्य प्राचीन काल से आज तक पनप कर चल रहा है। जो प्राचीन रूप है वह अब नहीं रहा क्योंकि परिवर्तन सहज प्रक्रिया है। और बार-बार शासित वर्ग की साहित्य को हड़प लेने के लिए अनेक प्रयत्न हुए हैं लेकिन कभी सफलता नहीं मिली। क्योंकि शासित वर्ग का साहित्य निरंतर परिवर्तनगामी है। अपने को समय समय पर बदलते हुए शासित वर्ग आगे बढ़ रहा है।

मार्क्स के अनुसार - मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उसके परिवर्तन, उनका सामाजिक अस्तित्व ही उनकी चेतना को निर्धारित करता है। समाज हरेक स्थिति में अग्रसर होता है। लेखक अपने बदलते हुए प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण में कुछ न कुछ अपना योगदान जरूर करता है लेकिन यह काम वह अपनी मर्जी से ही नहीं कर सकता। लेखक के हर प्रतिक्रिया के पीछे सामाजिक वातावरण में परिवर्तन की झलक अनायास मिलती है। रूपांतर या परिवर्तन लेखक को अपने पिंजरे में बन्द नहीं करवाती है हर परिवर्तन लेखक को ज्यादा प्रतिकूल बनाने लगती है।

परिवर्तन एक निरंतर गतिशील प्रक्रिया से गुजरता है और वह प्रवाहित जल की तरह दिखाई देता है। परिवर्तन प्रगति का चिह्न है। परिवर्तन के बिना प्रगति को हम सोच भी नहीं सकते हैं। परिवर्तन में आधुनिकता छिपी हुई है। हर परिवर्तन एक न एक नयी मोड़ को ही वैज्ञानिक विकास से जोड़ते हैं। आधुनिक प्रक्रिया में परिवर्तन अनिवार्य है। उस अनिवार्यता के पीछे मनुष्य का चाल और समाजगत पक्ष, समाज की गतिविधियाँ आदि अनेक कारण हैं।

बीसवीं शती परिवर्तन के लिए एक मैदान जैसी भूमिका निभाती है। इस शती में अनेक नये विषयों, वस्तुओं की सृजन किया गया है। वैज्ञानिक क्षेत्र में मानव के विकास के साथ स्थान पाने वाले हर वस्तु इसी शती में तैयार हुआ है। चरित्र से राजनीति शास्त्र तक भौतिक शास्त्र से लेकर कम्प्यूटर का तक हरेक क्षेत्र परिवर्तनगामी बन गयी है। परिवर्तन चाहे प्राकृतिक कारणों से हो या मानव कृत्यों से, वह एक स्वाभाविक तथा अवश्यंभावी प्रक्रिया है। हर पुराने पीढ़ी के स्थान में नये पीढ़ी आना अनिवार्य है। उस अनिवार्य सत्य के पीछे परिवर्तन समी हुई है।

परिवर्तन के पीछे वर्ग संघर्ष छिपा हुआ है। कम्यूनिष्ट मानिफेस्टो में कार्ल मार्क्स लिखते है कि – “अब तक के सारे समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। स्वामी और दास, अभिजात वर्ग और जन मानस, भूस्वामी और भूदास, गिल्डों के मालिक और अनेक नौकर यानी दो शब्दों में कहे तो शोषक और शोषित एक दूसरे के विरोध में आमने सामने खड़े रहें हैं औ उनके बीच सतत संघर्ष जो कभी प्रच्छन्न रूप में तो कभी खुले रूप में हुआ, चलता चला आया है और जिसका अंत हर युग में व्यापक समाज के क्रांतिकारी पुनर्गठन में या फिर दोनों ही युद्धरत वर्गों के विनाश में हुआ है..... मगर हमारा युग जो पूंजीपति वर्ग का युग है, एक विशेषता रखता है, वह यह है कि इसने वर्ग शत्रुता को सरलीकृत कर दिया है। समूचा समाज धीरे धीरे दो परस्पर शत्रु खेमों में बंटता जा रहा हैय वह उन दो वर्गों यानी पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच विभाजित हो रहा है जो एक दूसरे के आमने सामने ऊपर लिखे

गये वक्तव्य से हमें पता चलता है कि वर्ग संघर्ष का प्रभाव विश्व व्यापी है। वह मानव जीवन की प्रत्येक पहलू को यानी व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर को प्रभावित करता है। इस वर्ग संघर्ष से जो परिवर्तन आता है वही नव समाज की निर्माण करती है। परिवर्तन जोर से होना है तो इन वर्गों के बीच वैरुध्य तेजी से बढ़ना चाहिए। परस्पर शत्रुता, युद्ध के कारण एक वर्ग और एक नये वर्ग के रूप में रूपांतरित होगी। व्यक्ति से भूस्वामी, भूस्वामी से पूंजीपति बनना हमारे सामने प्रत्यक्ष सत्य है। सो, हम निश्चय रूप से यह कह सकते हैं कि वर्ग संघर्ष से ही परिवर्तन अनिवार्य है। सामाजिक बदलाव में साहित्य की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कहा जाता है कि किसी भी युग का साहित्य उस समय के समाज की आईना होता है। साधारण रूप से ही समाज की प्रवृत्तियाँ तत्कालीन एवं समकालीन साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।

साहित्य सतत परिवर्तनीय विषय है। अन्य क्षेत्रों से ज्यादा साहित्य में परिवर्तन तेजी से पाया जाता है। क्योंकि साहित्यकार की निगाह बहुत तेजी और दूरी तक फैली जाती है। इसलिए 1950 से 2000 तक के हिन्दी नाटकों में परिवर्तन की संभावनाओं को देखना है तो इस आधुनिक समाज, जनता के प्रवृत्तियों, परिवेशगत साहित्यिक मान्यताओं को स्पष्ट रूप से देखना पड़ता है। अन्य विधाओं से ज्यादा नाटक जनता से संबंध रखता है। आधुनिक काल में नाटक अपने क्षमता को और बढ़ाकर अपने में समाज का सरोकार स्पष्ट दिखाई देता है। इसको समझने के लिए आधुनिकता और परिवर्तन के बीच के संबंध को देखना पड़ता है।

4.2.1 आधुनिकता : हिन्दी नाटक

आज कला की गति इतनी तीव्र है और स्थितियाँ इतनी तेजी से बदल रही है कि अगले सौ वर्षों में क्या होगा? मनुष्य की अस्तित्व कैसे होगी, मनुष्य के आस्था के केन्द्र और प्रकृति के साथ उनके संबंधों में किस तरह के परिवर्तन पाया जाता है। मनुष्य के स्वरूप में क्या बदलाव आयेगी उनके साहित्य कला

चेतना की सीमाएँ कहाँ तक पहुँचेगी, सक्रिय साम्राज्यवाद कहाँ तक पहुँचेगी? इस का ठीक- ठीक पूर्वानुमान लगाया नहीं जा सकता। आज नयी शती के प्रथम चरण में जो संभाव्यताएँ, जो चुनौतियाँ हमारे सामने हैं, उन्हीं के संदर्भ में थोड़ा बहुत विचार कर सकते है।

आज मनुष्य बड़ा विषम परिवेश में खड़ा होकर अपने आपको पहचान रहा है। भूमण्डल सिमट का एक इकाई बन गयी है। देश और काल की सीमाएँ मिट रही हैं। जीवन के हर क्षेत्र में यंत्रों का प्रयोग बढ़ गया है। आज स्थिति ऐसी है कि मनुष्य धीरे-धीरे यन्त्र बनता जा रहा है। हम कल्पना कर सकते है कि अगले कुछ वर्षों में प्रत्येक क्रियाशील व्यक्ति को सिरहाने एक कम्प्यूटर होगी और उसके जीवन की गतिविधि उसके द्वारा चलित होगी। आज मनुष्य के लिए कीमती लगा रहा है। मनुष्य का मूल्य उसकी क्रय शक्ति के आधार पर आंका जा रहा है। इन सब के साथ अनिवार्य रूप से आधुनिकता जुड़ा है।

मनुष्य की स्थिति को मुख्यतः अंतर्मुखी और मुख्यतः वस्तु वादी दोनों ही दृष्टियों से देखा-समझा जा सकता है। दोनों को लेकर द्वन्द्वात्मक भी रहा जा सकता है और समन्वयात्मक भी। भारतवासी आज भी भारतीय तथा विदेशी दोनों प्रकार के चिंतनों में, रचनात्मक संदर्भ में ज्यादा आत्मिक संदर्भ में बेहतर समझ पाते हैं। आज रचनात्मकता का क्षय होना शुरू हुआ है। आज साहित्य इंटरनेट के केबुलों में फँसी हुई है। आधुनिक साहित्य एक माने में नए सार्थक और कल्पना पूर्ण रिश्तों की तलाश में स्थित है। आधुनिकता का महत्वपूर्ण लक्षण प्रश्न चिह्न की निरंतरता" आज नहीं रहा है केवल स्वीकार करना आज आधुनिकता बन गयी है।

आधुनिकता की अवधारणा काल मुक्त भी हो सकती है और काल बद्ध भी। सामान्यतः आधुनिकता काल बद्ध ही है। अपने काल वाचक अर्थ में आधुनिकता का अर्थ होगा वर्तमान का बोध, प्राचीन मान्यताओं से छुटकारा पाकर समकालीन परिवेश से सम्पृक्त होना है। युग का यह कहना ठीक ही है - " the mere fact of living in the present is not make a man modern far in that case everyone at present alive

would be so. He alone is modern who is fully conscious of the present." इस प्रकार आधुनिकता का संबंध आज से होता है। जो आज है वह कल का रूप है और कल के लिए परंपरा है। इस लिए परंपरा से जनित आधुनिकता परिवर्तन का अनुगामी है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में - "आधुनिक दृष्टि परंपरा को प्रवाह के रूप में स्वीकार करती है जो निरन्तर अग्रसर रहता है और जिसमें परिवर्तन अनिवार्य है। जीर्ण पुरातन के त्याग, संशोधन तथा पुनर्मूल्यांकन की पद्धति से नव-नव रूपों के विकास की आकांक्षा, वैचित्य और नवीनता के प्रति आकर्षण आधुनिकता के सहज अंग है। अतः रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह और नव जीवन के विकास के लिए प्रयोग के प्रति आग्रह यहाँ अनिवार्य है।

मार्क्स, फ्राइड़, आइनस्टीन अपने अपने संदर्भों में आधुनिकता को परिभाषित किये हैं। तीनों में क्वेचनिंग एट्टियूड़" बहुत तीक्षण स्थिति में है। अपने सिद्धांतों पर संशयात्मक नहीं है। कालानुगुण परिवर्तन उनके सिद्धांतों का श्रेष्ठ लक्षण है। ये तीन सिद्धांत वैज्ञानिक, सामाजिक, शारीरिक, क्षेत्रों में क्रांति लाने में सक्षम रहे हैं। समूचे पुरातन विषयों को परिवर्तित कर नये आलोक को प्रदान करने में अपने भूमिका ठीक तरह निभाई है। इन सिद्धांतों के कारण बीसवीं सदी के जनता के परिवर्तित जीवन केवल भौतिक रूप से नहीं उनके चेतना के विकास के साथ भी जोड़ा गया

इस आधुनिक समाज के साथ परिवर्तन भी जोड़ा है क्योंकि इन दिनों बड़ी उछल पुथल है। विचारधाराओं का और उनके द्वन्द्व का अंत हो चुका है। साधारण रूप से विचार अकसर बाहर से, जैसे दर्शन और राजनीति विज्ञान और धर्म की ओर से आते है, उसे साहित्य अपनी क्षमता के द्वारा काल्पनिक प्रक्रिया द्वारा रूपान्तरित कर देता है। कुछ विचार साहित्य में ही उपजते-विकसित होते है। ज्यादातर साहित्य के नये विकासों या परिवर्तनों को अन्यत्र राजनीति, विज्ञान, मनोवैज्ञानिक आदि में हुए विकासों और परिवर्तनों का प्रतिफल या प्रतिक्रिया मानते रहे हैं -

हमारे समय में प्रायह हरेक तथाकथित स्वतंत्र विचार ने अपनी तानाशाही स्थापित की है। राजनीति में तानाशाही, विचारों में तानाशाही, सिद्धांतों में तानाशाही आखिर साहित्य में भी तानाशाही अपनी प्रभाव दिखा रही है। हिन्दी साहित्य ही क्यों संसार के सारे साहित्य एक न एक क्षण इस तानाशाही के वैचारिकता में गये होंगे। विस्तार से कहना है तो कालगत विशेषता के अनुसार प्रत्येक साहित्य सीमा में एक विषय राज करते समय कोई साहित्यकार यह साहस नहीं करता कि परिचय रहित विषय पर लिखे। इसका मतलब साहित्य को कुछ ही प्रवृत्तियाँ अपने कब्जों में लेकर चलाती है। भारतीय आधुनिक नाटक भी इसके अपवाद नहीं।

आज का बौद्धिक वर्ग संक्रमण काल से गुजर रहा है। स्वतंत्रता पूर्व की आशा, आकांक्षा और महत्वाकांक्षा की अतीत गत अनभतिराजनीति जन्य विशेष की कुण्ठा से ग्रस्त मन, आज के परिवेश को समाज का शाश्वत स्वरूप समझकर भटकन, टूटन और उलझन में फँस गया है। हम भूल गये है कि हमारा दायित्व मात्र व्यक्ति या व्यक्तियों स्थिति अथवा परिस्थितियों, समाज अथवा सामाजिक पद्धतियों और प्राकृतिक अथवा कृत्रिम परिवेश का चित्रण मात्र करना नहीं है। बल्कि हमारा दायित्व सत्य की अवधारणा को समृद्ध करने, आवास को स्वीकार करते हुए यथार्थ को आदर्श तक पहुँचाने का भी है। इस शताब्दी में कृत्रिम परिवेश से हमारी समस्याओं का समाधान देने में सहायता नहीं मिली है।

हमारे समाज में साहित्य जीवन और संस्कृति की शाश्वतता पर बहुत चर्चा होती है। लेकिन संसार के परिणामों को स्पष्ट रूप से देखने से हमें यह लगता है कि कोई चीज शाश्वत नहीं हैं। सब कुछ एक विकासशील प्रक्रिया है, यहाँ कुछ भी शाश्वत नहीं। लेकिन संबंधों में निरन्तर स्वरूप परिवर्तन मिल रहा है। प्रेम भावना छायावादी काव्य में जिस तरह है उस तरह आज नहीं है। मूलभूत वैचारिकता रहती है लेकिन बाहरी सब कुछ बदलता रहता है। उस बदलाव के कड़ी को पकड़ना ही आधुनिता है।

आधुनिकता को हम न छोड़ सकते है और न आधुनिकता की आंधी रूक सकती है, किन्तु उसे अपनी परंपरा के साथ जोड़कर देखना आवश्यक है।

आधुनिक हिन्दी नाटक कारों ने बाहरी स्थितियों की प्रतिक्रिया को कैसे स्वीकार किये है, और आम आदमी की स्थिति को वे किस प्रकार अभिव्यक्त किये है यह बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। निश्चय ही जो व्यक्ति व्यवस्था की अपेक्षा जीवन के साथ जुड़ा होता, वहीं सही रूप में जन-जीवन के असन्तोष और आक्रोश को समझेगा, उसे अभिव्यक्ति देगा। यह काम आधुनिक हिन्दी नाटक कारों द्वारा ठीक तरह पूरा किया गया है। अपने परिवेश और आस पास की परिस्थितियों के बीच मूल्य विहीन तत्वों को पहचानकर उसे सही अभिव्यक्ति दी गयी है।

स्त्री को आधुनिक समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। फ्रायिड ने लिंग-भेद के आधार पर नारी को हीन दिखाने की कोशिश की थी। उसका मानना था कि जो पौरुष पुरुष को प्राप्त है, वह स्त्री को प्राप्त नहीं है। इस कारण स्त्री के मन में सदैव हीन भावना बनी रहती है। किन्तु स्त्री वादी-जीवन दर्शन ने आयड़ के सिद्धांतों का जोरदार विरोध किया है। आज आधुनिक नाटक कारों का मानना है कि पुरुष और स्त्री के बीच लिंग भेद होना स्वाभाविक है, किन्तु इस भेद को पुरुष वर्ग अधिकाधिक रूप से उभारकर अपने को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश करता रहा है, वह उसे मान्य नहीं है। स्त्री के लिए अपनी मन की बात कहने के लिए एक स्पष्ट जमीन आज मिल गई है। आधुनिक हिन्दी नाटकों में स्त्री की अतः चेतना का सही आविष्कार प्रतिबिंबित करने के लिए अनेक यत्न किये गये है, उसमें ज्यादातर सफल भी हुए हैं।

साहित्य को परिवेशगत और कालगत वैकल्पिक शक्तियाँ निरंतर अपने अनुगामी स्वभावों के साथ परिलक्षित करती है। कुछ जमानों में साहित्य को अपने साधन को संपूर्ण करने के लिए साध्य के रूप में बनाये गये है। आधुनिक नाटककार साहित्य को सही मात्रा में अपनी समसामयिकता का अत्यंत तीव्र बोध कराती है। अमिलकर काब्रेल साहित्य के बारे में इस प्रकार व्यक्त करते है - " Cultural

expression, culture is an essential element of the history of a people– Culture is perhaps] the product of this history just as the flower is the product of a plant– Like history or because it is history, culture has its material base the level of the productive forces and the mode of production– Culture plunges its root into the physical reality of the environmental human in which it develops and it reflects the organic native of the society– 1०

आधुनिकता की वैचारिक भूमि पर व्यक्ति स्वातंर्त्य का आग्रह इतना प्रबल है कि व्यक्ति की गुह्य चेतना के अबाध वर्चस्व के आगे घर-परिवार, समाज, राष्ट्र आदि सब कुछ तिरस्कृत हो उठते हैं और अंततः इस व्यक्ति चेतना का अवसर एक नितांत आत्मकेन्द्रित शोकांतिकी के रूप में होता है। इस आधुनिक जीवन की चरमसीमा के बारे में बताते हुए नीलिमा सिन्हा लिखती है कि - "आज पाश्चात्य जगत के ओल्ड-होम भारतीय नगरों में अवतरित हो रहे है। घर के भीतर के बूढ़े और बच्चे एकाकी-उपेक्षित हैं। पॉप कल्चर में बंधकर युवावर्ग मौज-मस्ती में गुम है, परिवार टूट रहें हैं, व्यक्ति प्रधान हो रहा है, समाज नष्ट हो रहा है, कहें तो कुल स्थिति कही उम्र होटलों में मरे अस्पताल जताकर की बन रही है। यह त्रासदी एकाकीपन इस आधुनिकता की नियति और व्यक्ति स्वातंर्त्य की चरम परिणति है।"

आधुनिकता की सबसे बड़ी पूंजी इसका खुलापन और स्वातंर्त्य भाव है। रूढ़ियों की अपेक्षा खुलापन सदैव स्वागत योग्य होता है क्योंकि रूढ़ियाँ सडांध पैदा करती हैं और खुलापन ताजी हवा के झोंके जैसा होता है। स्वातंर्त्य हमारे देश में केवल समूह गत न होकर व्यक्तिगत स्वातंर्त्य की ज्यादा योग देती है। यही प्रवृत्ति आधुनिक नाटकारों के नाटकों में प्रस्फुटित होती हैं। राष्ट्रीय पहचान, व्यक्ति की अस्मिता, सांस्कृतिक गौरव आदि भावनाएँ स्वातंर्त्य पाने के बाद साहित्य के लक्ष्य बन गये है। ये लक्षण हिन्दी नाटक को भी प्रभावित किए हैं। आधुनिकता का बोध "अंधायुग" से लेकर आज तक अप्रतिहत रूप में हिन्दी नाटकों में चलती आ रही है।

आधुनिक हिन्दी नाटकों में व्यक्ति वादी और अंतर्मुखी दृष्टि समकालीन व्यक्ति की अस्मिता की खोज, उसके विघटित होने वाले व्यक्तित्व, स्त्री, पुरुष संबंधों के बदलते स्वरूप, यौन कुण्ठा, अंत संघर्ष और व्यक्ति के निरंतर अकेले होते जाने की निर्वासित मनः स्थिति का चित्रण किया है। लेकिन आधुनिक बोध की आशावादी बहिर्मुखी दृष्टिकोण आधुनिक नाटकों में दिखाई नहीं देता है। सामाजिक समस्याओं का चित्रण तो अच्छी तरह मिलता है लेकिन उसके हल करने का प्रयत्न कहीं नहीं मिलता है। इस तरह के प्रयत्न नुक्कड़ नाटकों में कुछ हद तक मिलता है लेकिन मौलिक नाटकों में भी इस तरह के प्रयत्न करनी हैं।

मध्य वर्गीय जीवन को आधुनिक नाटक कारों ने अच्छी तरह कथ्यदत बनाया है लेकिन खासकर मधय्वर्गीय स्त्री पुरुष संबंध के प्रति ज्यादा अस्पष्ट चेस्टाएँ देखने को मिलती है। नैतिक विषय संबंधी स्त्री चेतना कुछ हद तक व्यवस्था विरोधी लगता है। अन्य विधाओं में स्त्री की जो उच्च स्थिति दिखाई गई वह स्थिति आधुनिक हिन्दी नाटकीय विधा में नहीं दिखाई पड़ता है। सुरेखा, सावित्री, मनीषा, शीलवती सब के सब क्रांतिकारी स्त्रियों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। भारतीयता का अलाव उनके चरित्रों में दिखाई देता है। आधुनिक हिन्दी नाटकों में स्त्री की विच्छिन्नकारी रूप ज्यादा दिखाई गया किन्तु सही स्त्री की अस्मिता का पहचान नहीं मिलता है।

आधुनिकता विराट चिंतन धारा का प्रतिनिधित्व करने के लिए जो परंपरा, इतिहास, अध्यात्म, स्थिरता, रूढ़ि तथा बाह्य यथार्थ के समस्त परिनिश्चित आकारों का विरोध करता है। परंपरागत भारतीय समाज में बदलाव आवश्यक है किन्तु दूसरी ओर आधुनिकता के नाम पर जो कुछ हो रहा है वह सब स्वीकार्य नहीं है। समाज के नये नजर से निर्माण करना है तो आधुनिक दृष्टि की सख्त जरूरत है लेकिन जो दृष्टि को हम अपनाते है वह दृष्टि परंपरा सहित होना चाहिए, ताकि परंपरा रहित नहीं। आधुनिक नाटकों में परिवर्तन के विविध आयो में स्पष्ट रूप में मिलते ही नहीं बल्कि आधुनिकता के विषम मानसिकता को

भी स्पष्ट रूप से दिखाई गई है। इस मानसिकता आषाढ़ के एक दिन नाटक में कालिदास, लहरों के राज हंस में नंद हानुष कबीर, धर्म परिवर्तन में अंबेदकर सब के सब में स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता मनुष्य नित्य कर्मनिष्ठ प्रतिनिधि है। उसने अपनी बौद्धिक क्षमताओं और शक्तियों का विकास विशेष रूप से समाज के एक सदस्य होने के वजह से ही किया है। इसी कारण से वह एक ओर समाज तथा भौतिक जगत से क्रिया प्रतिक्रिया करता है तो दूसरी ओर उस पर स्वयं क्रिया प्रतिक्रिया होती रहती है। हर वस्तु, हर भावना हर सिद्धांत तक संपूर्ण प्रकृति अस्तित्व में आने और अस्तित्व के समाप्त होने की गतिशील प्रक्रिया में रहती है, निरंतर प्रवाह गति और परिवर्तन की स्थिति में रहती है। स्तालिन इस संदर्भ में लिखते है कि - प्रकृति की कोई भी घटना आसपास के घटना क्रम से अलग थलग करके समझी जा सकती, प्रकृति के किसी भी क्षेत्र की कोई भी घटना हमारे नई तब तक अर्थहीन है जब तक उसे आसपास की स्थितियों से जोड़कर बड़ी देखा परखा जाता। इसके विपरीत कोई भी घटना तभी ठीक से समझी जा सकती है जब उसे आस पास की स्थितियों के साथ उसके अभिन्न संबंधों को ध्यान में रखकर समझा और व्याख्यायित किया जाता है क्योंकि आस पास की स्थितियाँ ही उसे अनुकूलित करती है।"

ठीक ऊपर कहा गया विषय के अनुसार आधुनिक हिन्दी नाटकों में बीसवीं प्रकृति के अनुसार चेतना और विचार दोनों के बीच समन्वय दिखाकर वास्तविकता का सही चित्रण मिलता है। उपदेश की विधा में अब अंतर आना चाहिए। अनुभूति की तीव्रता बढ़नी है। हमारे विचारों और भावों की सीमा और भी विशिष्ट और परिलक्षित होनी चाहिए। वास्तविकता का चित्रण ठीक तरह किया जा रहा है लेकिन उसमें सौन्दर्य बोधिता का ज्यादा उपयोगीकरण हो रहा है। 1950 से लेकर 2000 तक के नाटक अपनी सहज सहानुभूति और सौन्दर्य प्रेम के कारण जीवन के उन सूक्ष्म स्थानों तक जा पहुँचा है लेकिन मनुष्य के अंतरंग जो मनुष्यता है वहाँ तक नहीं पहुंच पाई है।

विश्व साहित्य में काव्य के बाद नाटक की परंपरा ही सबसे दीर्घ और समृद्ध है। हमारे हिन्दी भाषा में ही नहीं संसार की किसी भी भाषा में आज श्रेष्ठ नाटक अधिक संख्या में नहीं लिखे जा रहे हैं। इब्सन, ब्रेख्त, राकेश के काल में नाटक जिस प्रकार महत्वपूर्ण अनुभूति की अभिव्यक्ति का सर्वोत्कृष्ट माध्यम था, वैसा आज नहीं रहा। आज भी उपेक्षणीय स्थिति में नाटक नहीं लेकिन उसका प्रभावशाली रूप को बड़ा धक्का लगा है। कविता, उपन्यास, कहानी आदि पाठक तक सीधे पहुँचाते हैं, लेकिन नाटक कठिन विधा है एक नाटक को लेखन के बाद रंगमंच पर पहुँचने से ही उसका मूल मकसद समाप्त होता है। तो नाटक को पाठक तक पहुँचाने के लिए एक नाटककार की ही नहीं अनेक अभिनेता, दर्शक, संगीत, निर्देशक, रंग सज्जा की जरूरत भी है। इस संदर्भ में नेमिचन्द्र जैन का वक्तव्य सही लगता है कि – स्वाधीनता के बाद बीस-पच्चीस वर्ष पहले चार छह अपवादों को छोड़कर महत्वपूर्ण सार्थक अनुभूति को अभिव्यक्ति करने वाली रचनाकारों के रूप में नाटक बहुत कम लिखे गये। उस दौर के अधिक नाटक तो परीक्षोपयोगी थे, या किसी-न-किसी रूप में किसी शौकीय नाटक मंडल की ताक्तालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लिखे गये और उसीके उपयुक्त थे, फिर भले बुरे संवादात्मक उपन्यास अथवा सर्वथा अप्रामाणिक, और मिथ्या भावुकता से आक्रांत थी। साधारणतः हिन्दी के नाटक साहित्य का कलात्मक साहित्यिक स्तर सभी प्रकार से अनुभूति के गुण, उसकी सच्चाई और उसकी अभिव्यक्ति, शिल्प. आदि की दृष्टियों से उसके काव्य या कथा साहित्य से कहीं घटिया रहा है।"

साहित्य अभिव्यक्ति के रूप में नाटक अन्यतम विधा है लेकिन व्यावसायिकता की कमी के कारण नाटक का विभिन्न अनुभूतियाँ सार्थक रूप में आस्वादित नहीं है। लोगों की प्राधान्यताओं में बहुत परिवर्तन पाये जाते है। पचास में लोगों की जो प्राधान्य है वह आज नहीं है। आधुनिकता का प्रारूप और भी बदल गया है। नाटकीयता आज मनुष्य के हर माइने च गई हैं इस लिए कोई रंगशाला में जाकर नाटक देखने को आज उत्सुक नहीं हैं। आज की परिस्थिति ऐसी है न तो नाटक की माँग ही पर्याप्त मात्र में होती ही ना उसे लिखने की कोई प्रेरणा भी नहीं। केवल काल के अनुसार जाना आज का सिद्धांत बन गया है।

4.2.2 परिवेश – हिन्दी नाटक

प्रसिद्ध नाटककार इब्सन ने लिखा है कि रचनाकार का कर्तव्य है कि वह जिस समय और समाज में रहता है, उसके सामाजिक एवं शाश्वत प्रश्नों समझे और दूसरों को समझाए। साधारणत रूप से साहित्यकार संवेदनशील और अधिक प्रबुद्ध व्यक्ति होता है। नाटककार का प्रधान कर्तव्य अपने समय की समस्याओं को चित्रण करना और उनपर चिंतन मनन करने के लिए लोगों को विवश करना और उसका समाधान देना है। नाटक का प्रदर्शन ऐसा हो जिसमें दर्शक अपने बारे में कुछ जान सके। कहने की आवश्यकता नहीं कि नाटक दर्शकों के लिए आत्मज्ञान का, आत्म-साक्षात्कार का, अपने को पहचानने का एक शक्तिशाली माध्यम है। सार्थक नाटक एक ऐसा दर्पण है जिसमें दर्शक अपनी छवी देख पाते है। इस शक्तिशाली माध्यम को उजागर करने के लिए किसी काल और समाज के नाटक को देखा जाए, उसमें तत्कालीन समाज की स्थितियों, सामाजिक स्तर, रहन-सहन, मानवीय आचरण आदि सबका चित्रम होता है। इस प्रकार आधुनिक नाटक में परिवेश एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज परिवेश इतने गहरे बन गई है कि उसका अतिक्रमण पूरी शक्ति के साथ कर सकने में सक्षम नहीं हो पा रहा है। परिवेश के निर्माण में भीतर रचना के एक नए लोक का निर्माण सरल कार्य नहीं है। परिवेश में समय-समाज की पुनर्मुष्टि होती है। परिवेश की परिकल्पना में रचनाकार के सर्जनात्मक व्यक्तित्व, उसकी रचनात्मक क्षमता और ऊर्जा की परीक्षा होती है। आधुनिक हिन्दी नाटकों में मध्य वर्गीय मानसिकता के दवाब के स्पष्ट रूप दिखाई देते है। इस संदर्भ में इमानंदन किशोर का वक्तव्य सही लगता है कि - परिवेश साहित्यकार की अंत दृष्टि मार्जित करता है। वह अपने युग की प्रवृत्तियों का नियमन तो करता ही है, अतीत भविष्य की शताब्दियों की विचारधाराओं की गतिविधियों का अवलोकन भी करता है। परिवेश शिशु की कुशलता के लिए साहित्यकार पिता के समान होता है। वह उसका लालन-पालन कर उसमें सदगुणों का विकास करते हुए भविष्य के लिए संतुलित करता है।"

मनुष्य अनेक परिवेश के साथ जीता है। उसी परिवेश में उसका निर्माण और विकास होता है। नाटककार सामान्य मनुष्य से अलग नहीं है। साधारण मनुष्य के ऊपर भी वे सब प्रभाव एक साथ पड़ते हैं। अंतर यही है कि सामान्य आदमी अपनी चेतना और चिंतन को अभिव्यक्त नहीं कर सकता है, वहाँ उसे लेखक वाणी देता है। अपनी और सामान्य की अनुभूतियाँ निस्संदेह परिवेश से प्रभावित होते रहते हैं। साधारण रूप से साहित्यकार आगे जाना चाहता है लेकिन उसका समाज उसे पीछे खींचना चाहता है। लेकिन सृजनात्मक कलाकार अपने को समाज के हाथों में पराजित नहीं होने देते है। जो साहित्यकार कालकण्ड की अनंत सीमाओं के बावजूद आज भी जीवित हैं वह परिवेश के साथ खड़ा हुआ माना जाता है।

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक नोम चौमस्की का कहना है कि सृजन कर्ता और रचनाकार को परिणाम की चिंता नहीं करनी चाहिए। यदि वह परिणामों को लेकर बैठ जाये तो निर्माण के सारे रास्ते अवरुद्ध हो जायेंगे। मानवता का विकास निर्माण में है। आदमी शायद बिना कुछ नया किये रह ही नहीं सकता। आज साहित्य का यह बढ़ता हुआ सामाजिक पक्ष कई परेशानियाँ और कठिनाइयाँ भी छोड़ दिया है। जीवन की वास्तविकता की उपलब्धि साहित्यकार को एक दिन में नहीं होता वह निरंतर अपनी समझ को बढ़ाता घटाता और बदलता रहता है। – "इसलिए आज का लेखक अपने ही लिखे हुए साहित्य को कल नकारने लगता है। उससे पूछा जाये कि उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना क्या है तो वह उत्तर देगा, वह जो अभी लिखी जानी है। लिखी जाने की तलाश, संभव है, उसकी दृष्टि में कभी पूरी नहीं हो, परन्तु यह अशान्ति और भटकाव है जो रचनाकार को नये आयो में देती है। उसका निजी परिलक्षित होता है। एक आदमी की अनुभूति बाद में सामूहिक चेतना की अनुभूति होती है।

अपने चारों ओर से जो घटित हो रहा है उसका यथावत चित्रण करना परिवेश नहीं कहलाता है। क्योंकि आसपास जो घटित हो रहा है, उसे चित्रित करना साहित्यकार का नहीं, अखबार नवीस का काम होता

है। हम इस विषय पर ध्यान देना है कि साहित्य का क्षेत्र क्रियाओं का नहीं प्रतिक्रियाओं का होता है। हमें यह भी देखना है कि आस पास होने वाली घटनाओं निरंतर परिवर्तित होती रहने वाली परिस्थितियों के कारण हमारे जीवन की संवेदना और दृष्टिकोण में तत्संबंधी प्रतिक्रिया क्या होती है? परिवेश में होनेवाले अनेक सूक्ष्म परिवर्तन को हम पहचान नहीं पाते, उसके प्रति सजग नहीं हो पाते और उसके प्रतिक्रिया स्वरूप धीरे-धीरे बदलते रहते है।

यदि हम यह मानकर चलें कि कृत्रिम परिवेश का पर्याय सांस्कृतिक परिवेश का पर्याय सांस्कृतिक परिवेश है तो हमारी समस्याओं का समाधान होने में सहायता मिलती है। संस्कृति मनुष्य में आचार-विचार आस्था-प्रेम और निष्ठा सद्भावना की ज्योति जलाती है। संस्कृति के चलते ही मनुष्य अपनी पाशविक प्रवृत्ति से मुक्त हो पाता है। संस्कृति ही प्राकृतिक परिवेश पर हावी समाज में व्यवस्था, मर्यादा और नियन्त्रण का सूत्रपात करती है। हमारे जीवन जड़ नहीं है। वह तो क्रियाशील है, इस लिए परिवर्तनशील भी है। संस्कृति भी परिवर्तनशील है। उस परिवर्तनशीलता को पकड़ना परिवेश का प्रधान लक्ष्य है।

बीसवीं सदी में अपने देश में सांस्कृतिक संकट आस्थाहीनता, मूल्यों की अस्वीकृति आदि पर जोर-शोर से चर्चा चल पड़ी है। इसके लिए सारा दोष परिवेश को दिया जा रहा है और कहा जा रहा है कि निष्क्रियता, दायित्वहीनता और अनास्था के इस युग में अस्वीकृति की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त रचनाकार और कुछ नहीं कर सकता। और इस स्थिति के लिए जिम्मेदारी परिवेश को ठुकराया जाता है जो निश्चित रूप से कृत्रिम परिवेश ही हो सकता है।

साहित्य वह सामाजिक दस्तावेज भी है, जो भविष्य के उत्तराधिकारियों के काम आता है। इस दस्तावेज की लिखावट को परिवेश ही रूप रंग देता है। जो कुछ परिवेश में रहता है उसका प्रतिबिंब साहित्य में यथा रूप रहता है। संपूर्ण रूसी साहित्य को देखने से उस साहित्य में समुंदर का वर्णन नहीं मिलता है।

इसका कारण स्पष्ट है कि रूसी में देखने के लिए कोई समुंदर ही नहीं मिलता है। उस प्रकार दक्षिण भारत के रचनाओं में कहीं भी युद्धों का वर्णन नहीं मिलता है क्योंकि वहाँ के लोग कभी भी युद्धों का सामना नहीं किए हैं।

परिवेश रचनाकार को बनाता भी है और तोड़ता भी है। परिवेश के अनुकूल न होने के कारण अनेक साहित्यकार समाज के लिए महत्वपूर्ण साहित्य का निर्माण तो कर सके लेकिन अपने आप में टूट गये जो साहित्यकार अपने लेखन के प्रति निष्ठावान होता है वह अपने परिवेश के प्रति भी ईमानदार होता है – परिवेश रचना को गति देता है और प्रेरणा भी देता है। परिवेश और रचनाकार का संबंध अनिवार्य है। चाहे वह सन्तुलन व तालमेल द्वारा आये, चाहे विद्रोह और प्रतिक्रिया द्वारा आये। परिवेश ही काव्य को बहु आयामिक विस्तार नवीनता और गति देता है।

जो गति वास्तविक रूप में परिवेश द्वारा रचनाकार को मिलता है उसे सचमुच रचनाकार सही रूप में व्यक्त करता है? आधुनिक हिन्दी नाटकों में परिवेश का सफल रूपेणा चित्रण किया गया है लेकिन संपूर्णता नहीं मिलता है। लोक जीवन का सारा व्यवहार परंपरा के रूप में आधुनिक नाटककार को मिला है। उसका सही उपयोगीकरण नहीं हुआ है। ज्यादातर नाटककार ने परिवेशगत अपने अनुभूतियों को चित्रण किया है ताकि वास्तविक परिवेश का। राजकीय परिवेश स्पष्ट रूप से दिखाया गया है, बाकी परिवेश स्पष्ट नहीं हुआ है।

पचास के बाद सभ्यता नये नये सोपानों चढ़ती चली गयी है। व्यक्तिगत और सामाजिक सुरूचियों का परिमार्जन हुआ है। सामन्ती प्रथा की समाप्ति के बाद पूंजीवादी व्यवस्था की जडों पर कुठाराघात प्रारंभ हो चुका है। दास और देवदासी प्रथा कथा हानियों की सामग्री बन गयी है। पद-दलित शोषित और उपेक्षित वर्ग अधिकार चेतना से सुगबुगा उठा है। विज्ञान के बदले चरण के नीचे, संसार ही नहीं ब्रह्मान्ड की दूरियाँ सिमटती जा रही है। मनुष्य को मनुष्योचित दर्जा देने के लिए राज्य को नये-नये नियमों-

उपनियमों की संयोजन करने के लिए इस समय मजबूर किया जा रहा है। यह सब आधुनिक परिवेश का नग्न चित्र है लेकिन इसका रूप आधुनिक नाटकों में नहीं मिलता है। बहुत खेद की बात यह है कि आधुनिक नाटककार आज भी समस्या को तटस्थ तमाशाई" की तरह देख रहे है ताकि कोई पक्ष नहीं ले रहे हैं।

हमारे इस अर्थ शताब्दी ध्वंस की शताब्दी है हम जिस स्वराज की बात कर रहे हैं वह जीवन से अटूट है और उसकी स्वायत्तता किसी अन्य की स्वायत्तता का अतिक्रमण या दमन कर पायी गयी स्वायत्तता नहीं है। शाश्वत सत्य की धारणा कुछ आधुनिक नाटकों में मिलता है। आधुनिक हिन्दी नाटकों में अपने सच को बार-बार जाँचना और उसे बार-बार संदेह के घेरे में खड़ा करना साफ दिखाई देता है। बार-बार आधुनिक नाटकों में उदासीनता और उससे पैदा हो रहे शून्य को भरने के लिए नये विचार मिलता है। इस तरह के नाटक कारों की मानसिकता को दृष्टि में रखकर विजय तेंदुलकर इस प्रकार लिखते हैं कि - मुझे लगता है कि नाटक का तंत्र लेखक को खुद निश्चित करना पड़ता है। नाट्यतंत्र के नियमों से मार्ग दर्शन होगा, लेकिन ऐसा नहीं कि उनके पालन से ही अच्छा नाटक लिखा जा सकता है। विश्व के बहुत से अच्छे नाटक तो इन नियमों के अपवाद ही साबित होंगे। नाटक का माध्यम खून में उतर आना चाहिए, संज्ञा पर उसकी छाप उठनी चाहिए - तभी कोई लेखक अच्छा नाटक लिख सकता है।..... विविध माध्यमों से खुद को आविष्कृत कर देखने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि नाटक सबसे कठिन माध्यम है। बहुत बार लेखक जिसे अपना अच्छी तरह से लिखा गया नाटक समझाता है, वह सच में अच्छा साबित हुआ तो नाटक नहीं होता, और वह नाटक साबित हुआ, तो अच्छा नहीं होता।"

अनेक प्रभावों से परिवेशगत क्षमताओं से आगे जाने वाले नाटक समकालीन हिन्दी रंगमंच से पिछड़ गया। इस पर विक्षुब्द होकर प्रमुख नाटककार असगर वाजाहत कहा था कि - हमारी पीढ़ी अंतिम है। उसके बाद लोग केवल एक दूसरे से सुनकर या किताबों में पढ़कर ही जानेंगे कि हिन्दी में कभी

नाटककार भी हुआ करते थे। इसके लिए अनेक कारण है। मुख्य कारण यह है कि जो दर्शकों के मन में संलग्न है उसके नाटककार प्रतिबिंबित करने में असफल हैं।

साहित्य के मूल्य जीवन मूल्यों से बनते है और प्रतिबद्धता एक गहरी चीज है जो इस बात से तय होती है कि समाज में द्वन्द्व है उसमें लेखक किस तरफ खड़ा है। आज की परिस्थितियों में लेखक और परिवेश का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। रचना की सामाजिकता, उसकी प्रयोजन शीलता से सीधे ही संबद्ध हो जाता है। वर्तमान परिवेश में नाटक सीधे ही कारगर निर्णायक हस्तक्षेप करने में सक्षम नहीं प्रतीत होती क्योंकि जनजागरण का अभाव है। हर राजनीतिक दल और हर सिद्धांत आज जनजागरण की समस्या से ही भयभीत है। आधुनिक हिन्दी नाटककार आज भी द्वन्द्व में है। एक वियन" को लेकर उसको अपने रचनाओं में विकल्प रूप में प्रस्तुति नहीं मिलता है।

विकासशील देशों में अब विश्व पर हावी किया जा रहा है और अब सर्वाधिकारी पूंजीवादी का बोल बाला है। नव स्वतंत्रता प्राप्त देश अब विवश होकर पूंजीवादी वित्तपूँजी के प्रतिष्ठानों के आधीन हो रहे है। विश्वपूँजी प्रतिष्ठान विकासशील देशों के महाजन बन गये हैं और अपनी शर्तों पर ऋण देते हैं। आर्थिक श्रेत्र में अब पब्लिक सेक्टर को समाप्त किया जा रहा है, पिछड़े देशों के बाजार प्रतियोगिता में श्रेष्ठ और उन्नत तकनीक या टेक्नोलॉजीज से सुसज्जित उत्तरी अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप के देश अपने कर्जदार मुल्कों को अपनी पूंजीवादी नीतियों रीतियों पर चला रहा हैं और अपनी भोगवादी संग्रही विषय संस्कृति का प्रचार जारी है। हम इंच इंच पर जाँचने से भी ऊपर कहा गया परिवेश हमें हिन्दी नाटकों में नहीं मिलता है। अपने परिवेश अनेक अपरिष्कृत समस्याओं से भरी हुई है। लेकिन कोई भी नाटककार उन समस्याओं पर दृष्टि नहीं लगाये हैं। आधुनिक नाटककार जो प्रतिबद्धता मानसिक स्तर पर दिखाये हैं वह प्रतिबद्धता बाहरी जीवनानुभवों पर नहीं दिखाई देता है।

संभावना तो यह भी है कि विश्व पूँजवाद अपनी प्रतिद्वन्द्वता का शिकार हो जाए, वह अपने अंतर्विरोध, संकटों द्वारा अपनी कब्र स्वयं खोदता है। अतएव वह जनता के लिए हित की दृष्टि से समाधान नहीं है जैसाकि प्रचारित किया जा रहा है किन्तु साम्यवाद और समाजवाद की सफलता के लिए यह जरूरी है कि वैश्विक स्तर पर जन मुक्ति या क्रान्ति की चेतना का प्रसार हो और तद्वारा कला, साहित्य और दर्शन सब कुछ उपभोक्ता समाज का माध्यम बन गया। जो उपभोक्ता समाज का स्वरूप है उसको बदलने में आधुनिक नाटककार की कोई क्षमता नहीं है। वैश्वीकरण का प्रभाव अन्य विधाओं पर जितना ज्यादा है उतना नाटकों पर नहीं है। आज बहुराष्ट्रीय निगम भी हमेशा देशों पर आर्थिक आधिपत्य स्थापित कर रहे हैं और हमारे निगम को शोषित कर रहें हैं। ऐसे में दलितों, अल्प संख्याकों, जन जातियों सभी को अपने हितों के लिए आपस में न लड़कर समूची विपन्न जनता के हितों के लिए लड़ना चाहिए – लेकिन इसका प्रस्तुतीकरण आधुनिक नाटकों में होना चाहिए। जब साहित्य में इस प्रवृत्ति की भावना मिलता है तब लोगों के मन में यह भावना और भी दृढ़ होगी।

परिवेश के साथ फैंटसी मिलाकर सत्य की धारणा को निकालने की कोशिश की गयी है। आधुनिक हिन्दी नाटकों में नैतिक गिरावट एक लक्षण के रूप में दिखाया गया है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में यह विषय स्पष्ट हुआ है। यह रोग का लक्षण के रूप में दिखाना आधुनिकता के क्रम नहीं गिनाया जाता है। इस संदर्भ में गजानन माधव मुक्ति बोध के विचार सही लगते है कि – "इस मनोवैज्ञानिक केन्द्र से विकसित यह फैंटसी समाज की जिन विशेषताओं को प्रकट करती है, वे विशेषताएँ महत्वपूर्ण होने के कारण फैंटसी और भी महत्वपूर्ण हो उठी है। उसका भावनात्मक आघात अचूक हो गया है। उसका रसात्मक प्रभाव केवल भाव या रस तक ही सीमित न रहकर विचारोत्तेजक बन गया है। दूसरे शब्दों में भावना की राइफिल से विचारों के कारतूस कौंधकर निकल पड़े हैं। इस फैंटसी की यह सफलता द्रष्टव्य, विचारणीय और मूल्यवान है।"

संसार की प्रायः सभी सभ्यताएँ प्रायः ऐसा दौर में पहुँच रही है कि जहाँ हमारे आसपास चीजों का अम्बार लग रहा है पर शब्द कम हो रहे हैं। मन की भावना को कहने के लिए सही शब्द नहीं मिल रहे हैं। आज सादगी से और थोड़ी सी तीजों के साथ रहना लगभग असम्भव हो गया है। यह बात आश्चर्य लगता है कि हमारे पास आज शब्द कम हो गये हैं। साधारण रूप से नाटककार अपने रचना के लिए विषय वस्तु और भाषा ही नहीं य रूप भी अपने परिवेश से भी प्राप्त करता है। हम देखते हैं कि नाटककार नाटक में जिस वस्तु का चित्रण करता है, वह वस्तु हमारे लिए एक हद तक पूर्व परिचित होती है। इसी तरह वह हम में जिस तरह का भाव जगाता है वह भाव भी हमारे लिए एक हद तक पूर्वानुभूत होता है। जो वास्तविक अनुभूति है उसको ठीक तरह से देने के बजाय आधुनिक नाटककार ने अपने परिवेश के प्रभाव में ही काल्पनिक चित्रों और इच्छित विश्व का निर्माण किया।

आज के लेखक की भाषा क्रमशः बोलचाल की भाषा के निकट आती गयी है। गद्य की व्यवहारिक भूमि पर खासकर नाटकों में यह विषय अनुभव हुआ है। बोलचाल की भाषा में जो प्रत्यक्षता दिखलाई देती है, उसके समावेश के कारण नाटक से इसकी दूरी बहुत घट गई है। आधुनिक नाटककार जीवन की सच्चाइयों को उनके सही रूप में प्रस्तुत करना चाहते है। वह परिवेश की असंगतियों को असंगतियों के रूप में ही अवगत नहीं कर चुका है, बल्कि वह इनके कारणों को भी निर्भान्त अवगति की सीमा तक पहुँचकर देख चुका है। पचास के बाद के नाटकों में जिस खुलापन के साथ अभिजाय भाषा को नकारकर बोलचाल की भाषा से कहीं अधिक समीपता दिखलाई देती है। इस संदर्भ में मोहन राकेश की भाषा पर दृष्टि लगाना समीचीन प्रतीत होता है। राकेश की भाषा की विशिष्टता को स्पष्ट करते हुए गोविन्द चातक ने लिखा है - राकेश को ऐसी रंग मंचीय भाषा की तलाश थी जो समसामयिक प्रेक्षक से संबंध स्थापित कर सके। ऐसी सिद्ध बोलचाल की भाषा के सर्जनात्मक स्वरूप को ही मिल सकती है।"

आधुनिक नाटककार की भाषा बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि वह परिवेश के बिना किन पक्षों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और उन्हें उजागर करना चाहता है। यह सत्य है कि परिवेश के विशेष–विशेष पक्षों पर ध्यान केन्द्रित करने का सब से बड़ा प्रेरक स्वयं परिवेश का दबाव है। यही दबाव जान अनजान में उनके प्रति अभिमुखता उत्पन्न करता और युग विशेष के रचनाकारों को एक साथ जोड़ता है। "अधायुग", "आषाढ़ का एक दिन", लहरों के राज हंस" में आधुनिक विभीषिका प्रकट करने का प्रयास तो मिलता है लेकिन परिवेशगत मानसिकता की सक्रियता कुछ कम दिखाई देती है। भाषा परक प्रतीक, बिंब, संवाद सब के सब कारण परिवेश की विशिष्टता को व्यक्त करने के लिए लेखक को रचनात्मक संघर्ष और तनाव झेलना होता है। परिवेश से लेखन को जोड़ने का प्रयत्न और स्पष्ट होना है। रचनाकार स्तर पर भाषा को सम्पेषण की गरिमा से और प्रयोगात्मक बनाने की संभावना है।

जिस प्रकार लेखक का परिवेश रचना को प्रभावित करता है, उसी प्रकार रचना का संसार भी उसके परिवेश को प्रभावित करता है। तभी रचना द्वारा परिवेश को बदलने का लेखक का प्रयत्न सार्थक हो पाता है। जो विचारक रचना और लेखक के परिवेश के संबंध को अस्वीकार करते रहे हैं उन्होंने संभवतः यह कहते है कि रचना लेखक के परिवेश को बदलने में कभी कारगर नहीं होती। आधुनिक नाटक नये ढंग से लिखे गये हैं लेकिन "बकरी" नाटक के सिवा कोई अन्य नाटक नहीं जो बदलाव की चेतना से ओतप्रोत हो। आधुनिक हिन्दी नाटकों में आज भी क्रान्तिकारिता का अभाव है। क्रान्तिकारी दृष्टि से जब नाटक लिखी जाएगी, तब वह पाठक की भावनाओं को इस तरह संयोजित करेगी कि वे भावनाएँ खास दिशा में निर्दिष्ट हो।

कॉड़वेल के अनुसार कला व्यक्ति की भावनाओं को इस तरह बदलती है कि वह इस संसार के प्रति अधिक सूक्ष्मता और गहराई के साथ प्रतिक्रिया कर सके। लेकिन यह भावना आधुनिक हिन्दी नाटकों में दिखाई नहीं देती। जो सामाजिक संदर्भ परिवेश को आधुनिक नाटककार व्यक्त किए हैं उसको

परिवर्तित करने का और लोगों की समूहगत प्रतिक्रिया का प्रारूप कहीं नहीं मिलता है। आधुनिक लेखक पाजिटिव एटिट्यूड" को सही रूप में इस्तेमाल करना चाहिए। आज का परिवेश संकट ग्रस्त है। उसको केवल साहित्यकार ही बदल सकते हैं इस कार्य में नाटककार को अग्रस्थान पर रहने की संभावना है। क्योंकि नाटककार ही अपने परिवेश के प्रति विद्रोह और प्रतिक्रिया का भाव जगाता है। आधुनिक नाटककार सकारात्मक दृष्टिकोण को अनिवार्य लक्षण बनाने जिससे सकारात्मक साहित्य जरूर निर्मित हो सके।

संप्रेषण को सही रूप में अभिव्यक्ति देने के लिए अपने इच्छित परिवेश की नहीं जनता के मन के परिवेश को उपस्थित करना पड़ता है। इस नजरिये से आधुनिक नाटककार को सोचना चाहिए। जटिल परिवेश की नहीं सरल परिवेश को भी ईमानदारी से व्यक्त करना चाहिए। मनुष्य की चेतना को पकड़ने के लिए कोई आधार तो नहीं है लेकिन उस चेतना को उद्दीप्त करने के लिए दार्शनिक चिंतन धारा को देकर सही मार्ग दिखाना आधुनिक नाटककार के प्रथम कर्तव्य है।

आज के इस संश्लिष्ट समाज में नाटककार को किस ओर जाना चाहिए? किस संभावना को आगामी पीढ़ी को देना चाहिए? क्या कोई मूल्य आगामी पीढ़ी को देने के लिए बचेगा? मनुष्य की सोच किस सीमा को छूना चाहती है? क्या नाटककार मूल समाज की ओर अपनी भावनाओं को ऊपर उठा सकता है? आदि प्रश्नों को जवाब देना बहुत कठिन कार्य है। यह स्थिति खास स्थिति है। ऐसी स्थिति में लेखकों, कवियों और नाटक कारों का यह दाइत्व होता है कि वे मूल्यों को प्राप्त करने के लिए जन-जन में कर्म चेतना का संचार करें। नाटक कारों का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस क्लिष्ट समाज को परिवर्तित करने की ओर लोगों की ध्यान आकर्षित करें। हमारा यह दायित्व नहीं है कि परिवेश का चित्रण करके खामोश हो जायें। हम इस विषय पर सचेत रहना चाहिए समाज कैसे होना चाहिए, यह देखना और दिखाना भी हमारा ही काम है और यह काम अनास्था, निराशा, कुण्ठा, निक्रियता से संपन्न नहीं किया

जा सकता। इसके लिए नाटककार प्रतिबद्ध रहना चाहिए समाज के प्रति, देश के प्रति और परिवेश के वास्तविक चित्रण के प्रति जो काल की परिधि में परिवर्तित समाज की कांक्षा से मार्गदर्शक ज्योति बन सके।

4.2.3 आधुनिक हिन्दी नाटक : सर्जनात्मक लेखन की प्रासंगिकता

अंतः कला में यदि कोई चीज शाश्वत है तो यह आकांक्षा प्रासंगिक नहीं लगती है। साधारण रूप से कलाकृति में एक संपूर्णता, एक अर्थ, निर्वैयक्तिक तटस्थता, एक समय हीनता प्राप्त कर लेती है। कोई भी कलाकृति अपने सत्य में संपूर्ण नहीं है, इसलिए हर युग का मनुष्य उसके भीतर अपने सत्य की प्रासंगिकता खोज निकलता है। अलग-अलग युगों की प्रतिकूल अनैतिकताओं और विश्वासों के बावजूद और उनके बीच अपनी प्रासंगिकता कायम रख पाती है। एक शब्द में कहे तो हमें कम से कम कला के क्षेत्र में स्वयं प्रासंगिकता के बारे में नये सिरे से सोचना होगा।

प्रासंगिक शब्द से ही समय की गंध आती है। समय माने जो आज है, आज जो हम है, हम जो आज है। प्रासंगिकता के मूल में यह प्रश्न रहता है कि क्या कोई कलाकृति या कलाकार अपने में इतनी शक्ति, इतनी सामर्थ्य, इतनी सर्वांगीण संपन्नता रखती है कि अपने समय की विशिष्ट परिस्थितियों से उठकर छलांग लगाकर" हमारे समय तक पहुँचता है ? या समय की अवधि से बाहर प्रासंगिकता अपने आप में सक्षम होती है। इन प्रश्नों का समाधान देना बहुत कठिन कार्य है।

वाल्मीकि की काव्य, व्यास की महाभारत, एलोरा की मूर्तियाँ और नयागरा देखने से हम एक क्षण के लिए भूल जाते हैं, किन सामाजिक परिस्थितियों किस ऐतिहासिक क्षण में उनका सृजन हुआ था। देश और कला की सीमाओं का उल्लंघन करते हुए हम अपने को एक ऐसी दुनिया में पाते हैं जो पूर्ण रूप से स्वायत्त हैं। वे हमें उद्वेलित करती हैं। इन विशिष्ट कृतियाँ विशिष्ट सामाजिक स्थिति में जन्म लेने पर भी,

मनुष्य द्वारा सृजित होने के बावजूद वह मानवीय स्थिति की बंदी या ऐतिहासिक सीमाओं के गुलाम बनकर नहीं रह जाती।

जिस युग में हम रहते हैं, वहाँ हमेशा यह कोशिश रहती है कि हर साहित्यकार की प्रासंगिकता पर जोर से चर्चा की जाती है। तोल्स्तोय, शेक्सिपयर, ब्रेख्त सब के सब को अपनी रचनाओं द्वारा इस समाज की चेतना को और भी उद्धीप्त करने में अपनी सहायता करनी पड़ी। रचनाकारों का यह कर्तव्य बन जाता है कि हमें एक बार फिर अपने समय के द्वन्द्वों, शंकाओं और पीढाओं का नया अर्थ खोज सकें - परंपरा मर्यादा के हर मापदंड़ पर साहित्यकार को अपनी राय बताना पड़ता है। राजेन्द्र यादव इस साहित्य की महत्वपूर्णता पर दृष्टि लगाते हुए कहते हैं कि - साहित्य कभी कोई दिशा नहीं देता, कभी कोई क्रांति और परिवर्तन नहीं करता - वह तो औरों द्वारा किये गये विचारों और कर्मों से खद दिशा लेता है, अपने को पैना और प्रभावशाली बनाता है और आगे जाकर अपने - आपको जीवित रखता है।"

आज साहित्य का भविष्य सुखद नहीं है, चुनौती पूर्ण जरूर है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस स्थिति को बहुत पहले ही महसूस किया था- ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों कवियों के लिए काम बढ़ता जाएगा। मनुष्य के हृदय की कृतियों से सीधा संबंध रखने वाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उसे बहुत से पर्दों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों - ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नये-नये आवरण चढ़ते जाएंगे, त्यों - त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी और कवि - कर्म कठिन होता जाएगा।"4" उक्त कथन को नाटक पर भी लागू कर सकते हैं।

आज की भाषा में कहे तो सत्ता संरक्षण से बाजार संरक्षण की पूरी प्रक्रिया में बदले हुए साहित्य और साहित्यकार की स्थिति में बहुत फर्क आया है। इस नये ढंग की सामाजिकता ने अब एक खतरनाक दौर में प्रवेश किया है जहाँ तथाकथित विश्व संस्कृति, विश्व दृष्टि और खुले बाजार की अपसंस्कृति की

वास्तविकता का भी निर्धारण कर रही है। इस संस्कृति में व्यक्तिवाद और कलावादि लेखक भी बच नहीं सकता।

साहित्य जब गहरे सत्ता पर चुनौती देना बंद कर देता है, तब स्वतंत्रता पर वास्तविक संकट होता है। सही रचना एक दायित्वपूर्ण प्रतिपक्ष है, जिसे प्रतिवाद करना आता है और उसे मालूम है कि समाज की चेतना की सुरक्षा, उसे सही दिशा देने का कार्य लेखक को अपने ढंग से करना है। इसलिए शायद हर कलाकार या लेखक अपने समय से असंतुष्ट रहता है, वह समाज की स्थिति गतियों को संकेत भी करता है। आज साहित्य चुनौती देने योग्य नहीं है। खासकर नाटक अपने समाज से चुनौती देना ही सही अपनी अस्मिता को भी ढूंढने लगी है।

आज हमारे देश में बहुत बड़े- बड़े पूंजीपति है। वे ही राष्ट्र की नीतियों का निर्धारण करते हैं। भ्रटाचार में हम पूर्ण लिप्त है। अधिकाधिक धनार्जन की चाह आज हमारी सबसे बड़ी दुर्बलता है। धनार्जन हेतु हम नीति और न्याय को तिलांजिली दे कर अपने वांचनीव मार्ग पर निकल पड़े है। दया, दान, सहिष्णुता, भाईचारा, परोपकार की भावना मृत हो गई है। धनार्जन के क्षेत्र में परिवर्तन की इस आंधी में हमारी जड़ नींव से हिल गई है। यह प्रभाव व्यक्तियों पर ही नहीं नाटक कारों पर भी पड़ा है। इससे बचकर आगे निकलना बहुत कठिन है। इस अनिश्चित स्थिति से नये नये प्रयोग करने में और सत्य की सही अवधारणा देने में आधुनिक नाटक कारों को बहुत ही भयावह स्थिति है।

हमारे इस पराभाव के पीछे मीडिया" तथा अन्य प्रचार माध्यमों का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। मिस यूनिवर्स और फिल्मी तारिकाओं का अंग प्रदर्शन, अश्लील गानों का कु प्रभाव आज की नव युवकों- नव युवतियों को दिग्भ्रमित करने में स्पष्ट उजागर है। फैशन की दुनिया में आज जहाँ हम पहुँच चुके हैं वहाँ से अतीत की ओर हमारा लौटना संभव प्रतीत नहीं हो रहा है। भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति हावी हो चुकी है। इस पाश्चात्य धुन से बचाकर भारतीयता की स्थापना करना प्रत्येक

नाटककार को बहुत खतरनाक स्थिति को सामना करना पड़ता है। इस स्थिति में अपनी प्रासंगिकता को कायम करते हुए नाटककार को आगे बढ़ना चाहिए। जल में तुंबी के समान अपने को बचाते हुए समाज को साकार करने योग्य सपने को देना उनका प्रधान कर्तव्य है। समाज को ज्ञान की गुरुता, दृष्टि की प्रखरता और आचरता देना चाहिए।

कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो होते है उसे रहाण करते हैं और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। आज का परिवर्तन भले ही उत्थान का सूचक न हो पतन की दिशा में तीव्र गति से तो अग्रसर है ही। लोगों की मानसिकता में पतन की दृष्टि कायम हुआ है। उग्र क्षेत्रवाद के कारण भाषा, सीमा तथा जल के बंटवारे के प्रश्न हल नहीं हो सके हैं। लेकिन इस समस्या पर कोई भी नाटककार प्रतिबद्ध होकर नहीं लिखता। आज नाटककार यथार्थ को पकड़कर चलने के बजाय यथार्थ से दूर भाग रहा है। वास्तव में नाटककार समाज में प्रवर्तक की भूमिका आदा करें। उनकी चिंता बेहतर दुनिया की निर्माण की होनी चाहिए। लेखक को अपने पक्ष का समर्थन हेतु जनमत जुटाना होता है। इसके लिए नाटककार को अपनी नाटक को सामान्य तक है। नाटककार को अपने "विजन" को सामान्य की भाषा में ही प्रस्तुत करना चाहिए नहीं तो वह सफल नहीं होता है। आधुनिक नाटककार को जन सामान्य की समस्याओं से तादात्म्य होना चाहिए, समाज को बदलने संघर्ष में पूरी निष्ठा और प्रतिबद्धता के साथ शामिल होना चाहिए। आधुनिक नाटककार को यह प्रतिबद्धता सहित रहना है कि जहाँ न कोई शोषक होंगे, न कोई शोषित, जहाँ सब के कद और हक बराबर होगे मनुष्य का दर्जा बराबर होगा, न कोई मालिक होंगे न कोई गुलाम।

आज नाटककार को सचेत रहना है अपने से और अपने समाज से। इस बहु स्तरीय, बहु आयामी जीवन को सही नजरिये से देखना पड़ता है। जनमानस की स्थिति को नजर रखते हुए इस प्रकार रमेश रावत

लिखते है कि – " जो जाति, जो राष्ट्र जितना ही स्वाधीन है, यानी जहाँ की जनता शोषण और अज्ञान से जितने अंशों तक मुक्ति प्राप्त कर चुकी होती है, उतने ही अंशों तक वह शक्ति और सौन्दर्य तथा मानवदर्श के समीप पहुँचती हुई होती है। आज की दुनिया में जिस हद तक शोषण बढ़ा हुआ है, जिस हद तक भूख और प्यास बढ़ी हुई है, उसी हद तक मुक्ति संघर्ष भी बढ़ा हुआ है, और उसी हद तक बुद्धि तथा ह्रदय की भूख-प्यास भी बढ़ी हुई है।

मनुष्य को एक अधिक युक्ति संगत और बेहतर जिंदगी मिलना है तो इसके लिए हर स्वीकृत या शाश्वत मूल्य विचार, व्यवस्था में उसकी स्थिति को नये सिर से जाँचना पड़ता है। जो भी तथ्य बनाया गया है उन सब पर प्रश्न चिन्ह लगाना होता है। इस काम को जनता के पहले साहित्यकार को करना पड़ता है। जो कुछ समाज के अंतर्गत आता है उसे साहित्यकार सबसे पहले पकड़ता है और उसे समाज के निकटतम तक ले जाने की क्षमता भी रखता है। गैर महत्वपूर्ण विषयों से लोगों की दृष्टि को निकालकर जिंदगी की नियो में क शक्तियों को उजागर कर देना है। बड़ी ईमानदारी के साथ नाटककार को अपने नाटकों में आदमी के हारने-जीतने, टने बदलने, थकने-जीने को रेखांकित करना है।

इस बीसवीं सदी का समय में मनुष्य बड़ा नहीं लघु बनता जा रहा है। आज जो विशालता की बढ़त्व के बारे में बता रहे हैं उसे विशाल भूगोल का दर्शन संभव ही नहीं है। जहाँ देखो वहाँ छोटी इकाइयों का महत्व बढ़ गया है। हम आज भी हमारे जीवन अस्तित्व, नियति, नश्वरता, प्रेम, जिजिविषा आदि को समझने-बूझने के लिए

प्रायः साहित्य के पास ही जाते हैं। सीधे जीवन के आलावा जीवन की असंख्य छवियाँ और प्रतीतियाँ हमें साहित्य और कलाओं में ही मिलती हैं। मनुष्य को सही नियति देने का कार्य नाटक कारों को ही करना पड़ता है। राजनीति साहित्य को भ्रष्ट करती है इस लिए उससे दूर रहना ही चाहिए। स्वतंत्रता की नींव को औ भी दृढ़ और सुदृढ़ बनाना चाहिए।

नुक्कड़ नाटकों में जिस तरह सामान्य की आवाज को बढ़त्व दिया गया उसी तरह आधुनिक नाटक में भी दर्शक को मद्दे नजर रखकर उन्हें शक्तिशाली बढ़ाने में यहायक देनी है। मनुष्य की उम्मीद को स्थापत्य बनाना चाहिए। साधारणतः नुक्कड़ नाटक शोषण मुक्त समाज के लिए प्रतिबद्ध है। इस प्रकार की प्रतिबद्धता अन्य नाट्य रूपों में देखने को नहीं मिलती। मिलती भी है तो बहुत कम। देश के कोने कोने में खेल जाने वाला नुक्कड़ नाटक भले ही भाषा के स्तर पर अलग हो लेकिन प्रतिपाध्य विषय को लेकर कोई मूलभूत फर्क देखने को नहीं मिलता है। इस नुक्कड़ नाटक की लोकप्रियता के कारण इसमें दर्शक की भागीदारी है। इस लोक प्रियता के कारण से ही आधुनिक नाटकों में इस नुक्कड़ नाटक की प्रक्रिया को बढ़त्व देने से आधुनिक नाटक की लोकप्रियता क्रमशः बढ़ने की संभावना रहती है।

यह एक सरल और निर्विवाद सत्य है कि हर कलाकृति किसी न किसी रूप में हमें मनोरंजन प्रदान करती है हममें से अधिकांश पाठक मनोरंजन के लिए ही किसी नाटक या उपन्यास को पढ़ना शुरू करते हैं ताकि जीवन का बड़ा गंभीर सत्य पाने के लिए ही नहीं। कोई भी कृति या नाटक मनोरंजन तो देता है और साथ ही साथ निर्माणपरक विषयों को भी देना चाहिए। उस नाटक को देखने से आत्मीय संबंध और भी दृढ़ बनाना चाहिए। हमें कलात्मक मनोरंजन की परिभाषा को कुछ व्यापक बनाना होगा। हर युग का पाठक अपने साहित्य से अपना सत्य खोजता रहेगा। जो सत्य पाठक खोज रहा है उसको उन्हें देना ही आधुनिक नाटक कारों का काम हैं।

इस नयी सदी में पाठकों की रुचियों, आकांक्षाओं और संस्कारों में बड़ा ही बदलाव दिखाई देता है। बाहर समाज में अनेक समस्याएँ है लेकिन समस्याओं के प्रति उन नाटक में कोई स्पंधन नहीं रही। पचास के आगे एक समस्या के प्रति जो प्रतिक्रिया हम देख चुके है आज हम उस तरह की प्रतिक्रिया को पा नहीं सकते हैं। आज "सत्य हीन सत्य" का जमाना है। इस जमाने में लोगों की रुचियों में बदलाव के कारण, समस्याओं के प्रति उनका परिष्कार भी अलग दिखता है। इस संदर्भ में निर्मल वर्मा हम से पूछते है कि –

"असली प्रश्न यह नहीं है कि रचनात्मक साहित्य को कितने लोग पढ़ते हैं, अथवा समाज में उसकी भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है, बल्कि यह कि एक रचना क्या अपनी भाषा में उस संवाद में दखल दे सकती है, जो एक समाज अपनी भाषा में आज तक अपने सदस्यों के बीच करता आया है? अगर यह संवाद किसी मिथ्या अथवा श्रामक मान्यताओं द्वारा अनुशासित होता है - और उनके आधार पर मनुष्य को अपने में छद्म छवि गढ़ने में विवश करता है - तो क्या एक कलाकृति अपने होने मात्र से उस छवि का असली सत्य और यथार्थ उघाड़ पाने में समर्थ होती है, जिसके परिणाम स्वरूप संवाद की समूची प्रकृति और दिशा अचानक एक नया मोड़ ले लेती है? जहाँ कहीं समाज इस "मोड़" के लिए तैयार नहीं, अथवा उसे संपूर्णतया ठुकरा देता है- तो भी इससे कलाकृति का सत्य अप्रासंगिक नहीं हो पाता।"

प्रासंगिक दृष्टि से देखने से हमें हमारे नाटक को बचाना है। इस उत्तर आधुनिकता के प्रवाह से हमें अपने को और अपनी संस्कृति को बचाना चाहिए। पिछले वर्षों में अनेक धर्म, अनेक संस्कृतियाँ नष्ट हुई हैं। आज के सकट के समय में हम सब को साहस के साथ कदम उठाना पड़ेगा। इस संदर्भ में राजेन्द्र अवस्थी लिखते है - भारत जैसे देश के लेखक को एक बात समझना जरूरी है - यहाँ जितनी प्रतिबद्ध, जितना प्रतिरोधस्ता से नहीं है, उससे कहीं ज्यादा समाज से है। समाज यानी हमारे पडोसी, हमारे दोस्त, हमारे हित चिंतक, हमारे जाने अन जाने दुश्मन ये सब हमारे सुख के साथ दुखी है तो हमारे दुख में सुखी है। हमारे प्रत्येक क्रिया कलाप पर दृष्टि रखने वाले ये व्यक्ति - जो हमारे हैं, हममें से है, मैं कहूँ हम ही हैं -सबसे खतरनाक हैं।"

आस पास होनेवाले घटनाओं, निरंतर परिवर्तित होती रहने वासी परिस्थितियों को आधुनिक नाटककार परखना चाहिए। परिवेश को बदलते हुए इस परिवेश को आँकना ही साहित्यकार का दायित्व है। इस संदर्भ में ग्रामस्की का कथन समीचीन लगता है कि - "The need to engage with theoretical questions is greater today than even before- Dark times are upon us- The enemies of the

people's truth about triumphantly– The war against them will be won in the economic and political sphere, of course, but it cannot be won unless the forces of progress win the struggle over the minds of men स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में प्रयोग की स्थिति विशेष रूप से देखी जा सकती है। किसी भी रचना में जब तक नवीनता नहीं तब तक उसे प्रयोग नहीं कहा जा सकता। अनेक प्रयोग तो हिन्दी नाटकों में हुए हैं लेकिन आधुनिक नाटककार को एक प्रधान कर्तव्य बचा हुआ है, वह यह है कि श्लोकों की सामाजिक सोच" को एक दिशा देना चाहिए। अन्ततः उस दिशा में अग्रसर होने की सक्रियता तो सामाजिक दायित्व है। उस दायित्व को आगामी वर्षों में पूरा करना है।

4.2.4 हिन्दी नाटककार का स्वप्न और जिम्मेदारी

बीसवीं शती क्रान्ति और प्रतिक्राति की शती रही है। इसी शती में साम्यवाद का जन्म हुआ है और रूसी की विच्छिनता के रूप में उनके भविष्य को लेकर प्रश्न चिन्ह खड़ा है। और एक ओर पूँजीवाद दुगुणी शक्ति प्राप्त करके दुनिया की शांति को चुनौती दे रही है। विकासशील देशों को अब विश्व पर हावी वित्तपूँजी के चौखटे के अंतर्गत संग्रहित किया जा रहा है और अब सर्वाधिकारी पूँजीवाद का बोलबाला है। नव स्वतंत्रता प्राप्त देश अब विवश होकर पूंजीवादी वित्तपूँजी के प्रतिष्ठानों के अधीन हो रहे हैं। आज उग्रवाद के साथ उग्रवाद भी बढ़ गया है। उग्रवाद के इशारे पर ही हम आज जी रहे हैं।

हमारे देश में वर्तमान स्थिति एक भारतीय संस्कृति नवीनीकरण, अर्थात नए विचार और संस्कृति के विकास के लिए प्रेरक है। जो प्रेरणा हमें प्राप्त है उसकी जडें वास्तव में भारत की अपनी प्राचीन परंपराओं में निहित है। कोई भी व्यक्ति स्थिति या सिद्धांत जब उच्च स्थान तक पहुँचती है तब उसमें कुछ हद तक क्षय होने की संभावना रहती है। हर सिद्धांत, विषय, समाज के लिए अंत की परिकल्पना रहती ही है। कोई भी इजम हो, उसके लिए भी अंत होती है, अंत नहीं तो कम से कम कहीं न कहीं परिवर्तनगामी बन जाती है।

आज की अनेक अवधारणाएँ बदल गई हैं। कर्तव्य ही नहीं जिम्मेदारियाँ भी बदल गई है। अगर कोई बदलना नहीं चाहता है तो उसके लिए प्रेमचंद की एक वक्तव्य नीचे सही लगता है – हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़ें रहना चाहता था, उन्हीं की कद्रदानी पर उसकी अस्तित्व अवलंबित था और उन्हीं के सुख-दुख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता में प्रतिद्वद्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था।" अपनी दृष्टि इस नयी शती में और भी बदली है।

स्वप्न आज की मानसिकता बन गई है। हरेक को स्वप्न के बारे में सोचने के लिए तैयार किया जा रहा है। स्वप्न अनेक प्रकार के हैं। साधारणतः स्वप्न शारीरिक और मानसिक स्थिति से जनित एक सामान्य क्रिया है। लेकिन उस शब्द को आज भ्रष्ट किया गया हैं। मनोवैज्ञानिक हमें अपने अनुभव को पहचानने के लिए उत्सुक कराते है, राजनेता झूठे सत्यों की अंदाज देने के लिए प्रेरित करते हैं। दार्शनिक हमारे विचारों को विस्तृत करने के लिए स्वप्न गढ़ने को चेतना भरे सोच देते है। हमारे राष्ट्रपति भी स्वप्न बात अपने हर भाषण में जिक्र करते हैं। असल में यह स्वप्न क्या है?

मार्क्सवादी एक कदम आगे बढ़ाकर दूसरी दुनिया की स्वप्न" पर जोर देते हैं। और एक नई दुनिया के लिए योजनाएँ बनाते हैं। असल में एक और दुनिया का हम निर्माण कर सकते है? क्या यह परिकल्पना सही है? क्या मानव और एक और दुनिया की परिकल्पना कर सकता है। अपने निर्मित समाज को ठीक तरह अवलोकित न करने वाले मनुष्य और एक दुनिया की सृष्टि कर सकता है। कुछ समय तक यह दार्शनिकता अनेक समाजों को और व्यक्तियों को विचार विनिमय करने में अपनी उपलब्धि प्राप्त की होगी। लेकिन आज के नव्य समाज में कोई भी व्यक्ति किसी अव्यावहारिक विचार के साथ रहने के लिए उत्सुक नहीं है। आज की मनुष्य की अवधारणा विजय पाना है। केवल विजय ही आज की मनुष्य की नीति है। झूठे आसवासनाओं, झूठे सत्य के पीछे आज मनुष्य जाना नहीं चाहता है।

स्वप्न की अवधारणा ही आज मार्कसवाद की सांस है। आनेवाले कल पर झूठे आश्वासन दिलाकर सिद्धांत को मृतपाय बनाया जा रहा है। प्रश्न पूछना धिक्कार माना जा रहा है। और एक दुनिया संभव है, यही नारा लेकर गतिमान है। अपनी जीवन दिशा के निर्धारण में मानव की भूमिका को अस्वीकार करता है। समस्या के लिए जो समाधान मार्क्सवादी देते है, उसी को ही उत्तम मानते है और हमें उसे स्वीकारने के लिए जोर देते हैं।

ऐसा क्यों है कि भारतीय बुद्धिजीवी भारतीय परिवेश के लिए उपयुक्त उत्कृष्ट मार्क्सवादी सिद्धांतों और विचारों का निर्माण करने में असफल रहें हैं? ऐसे क्यों है भारतीय मार्क्सवाद मौलिक होने की अपेक्षा व्युत्पादित वैज्ञानिक की अपेक्षा पण्डिताऊ, ग्रहणशील की अपेक्षा स्वाग्रही और सकारात्मक की अपेक्षा निषेधात्मक अधिक रहा है? इन प्रश्नों को उठाना माआवाद को नकारना नहीं है? क्यों हमारे देश के मार्क्सवादी कट्टर बन गये हैं। भारतीय मार्क्सवादी एकांगी दृष्टिकोण के शिकार हो गये है? आदि अनेक प्रश्नों को समाधान ढूँढने की आवश्यकता है। क्योंकि जो अवधारणा की नींव ही सही नहीं है तो उस पर बनाया जाने वाला भवन सुदृढ़ कैसे होगा।

आनेवाले समाज मार्क्सवाद का ही है लेकिन आरोपित मार्क्सवाद (Transplanted Merism) का आन्तरिक भारतीय रूपांतरण सफल होने में कुछ संदेह लगाया जा रहा है। और इसके साथ सोवियत रूस के पतन और चीनी साम्यवाद पूँजीवादीकरण से अब साम्यवाद और मार्क्सवाद के आगे प्रश्न चिन्ह लग गया है।" समकालीन नाटककार भी अपने नाटकों में इन स्वप्नों को लेकर चल रहे हैं। अधायुग नाटक द्वारा भारती एक कुंठाग्रस्त समाज की स्वप्न देखते हैं। बकरी नाटक में आने वाले समाज के स्वप्न दिखाने में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना सफल होते है। सफदर हाशमी के सारे नुक्कड़ नाटक परिवर्तित समाज की स्वप्न देखते हैं। तड़प मुक्ति की नाटक में माता प्रसाद दलित मुक्ति का स्वप्न देखते है।

नयी पीढ़ी को स्वप्न या कल्पना देने नाटककार की कर्तव्य है। लेकिन किस समाज को निर्मित करने के स्वप्न दिखा रहे हैं यह बहुत बड़ा प्रभावपूर्ण विषय है। अनेक नयी तकनीकी सुविधाओं के आने के कारण नाटक को और भी सर्जनात्मक रूप में बना सकते हैं। कथ्य ही नहीं मंच सामग्री में भी बढोत्तरी आने के कारण विभिन्न प्रकार की अभिनय पैदा करने की संभावना है। दर्शकों को अपनी ओर खींचने की शक्ति को हिन्दी नाटक बढ़ाना है। इसके लिए दर्शक को संतुष्ट करने के प्रयास जरूर करना है।

निष्कर्ष

आज मनोरंजन के अनेक सर्वोत्तम साधन उपलब्ध है। समय के साथ-साथ मानव की रुचि में जैसे परिवर्तन होता गया, वैसे ही मनोरंजन के साधन बदलते गये। भूमण्डल सिमटकर एक इकाई बनने के बाद मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए बाकी साधनों पर आधारित हो रहा है। टी. वी. ने साहित्य को तात्कालिक दृश्य और भूमण्डलीय बना दिया है। टी. वी. और सिनेमा संपूर्ण रूप से साहित्य का स्थान को आक्रमण करके "एलक्ट्रानिक मीडिया" साहित्य की गति को बदल दिया है।

विश्व व्यवस्था की अवधारणा बड़ी आकर्षक लगती है। ग्लोबल विलेज" का नारा हमारे अनेक लेखकों और बुद्धिजीवियों को बड़ा आकर्षक लग रहा है। इसमें भारतीय संस्कृति की झलक नहीं मिलती है। अपने लोक रूपों की क्षय हो रही है। हर चीज खरीदी जा सकती है। यहाँ तक कि धर्म और व्यक्तित्व भी। तलाश "इंटरनेट" और सेल फोनों" के सहायता से हो रहा है। सब कुछ मनुष्य के पास ही आसानी से पहुंच रहे हैं। दुर्भाग्य से इस मीडिया ने रंगमंच और कलाओं को महत्वहीन मानकर अपना सारा ध्यान सिर्फ टी.वी., और फिल्मों पर केन्द्रित कर दिया है।

इस एक धृव विश्व में संघर्ष का स्वर उठाना नहीं अपने को बचाने का समय आ गया है। "कमर्शियलाइज" साहित्य की प्रवाह में स्वच्छतम साहित्य की कमी पड़ गयी है। "उत्तर आधुनिकता" से

बचना मुश्किल है। इससे बचने के लिए साहित्य कर्मियों का बड़ा योगदान अपेक्षित है। अपनी प्रयोग धर्मी चेतनाओं से एक नयी पृष्ठभूमि को तैयार करना जरूरी है।

दरअसल नाटक एक गतिशील प्रक्रिया है। अपने प्रारंभिक दौर से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में सतत प्रवहमान नाट्य भी इसका अपवाद नहीं है। उसका अस्तित्व मानव के अस्तित्व से जुड़ा रहने के कारण इस संधि काल में नाटक और जनता के बीच दूरी आने पर भी अपने वैशिष्ठ्य से लोगों को बांधे रखने की अद्भुत क्षमता होती है। लेकिन नाटक कारों अपनी ही संवेदना और नाटकीय क्षमता को बचाने के लिए तैयार रहना है।

अब मनुष्य के हर तरफ समस्या घेरे हुए हैं। जहाँ देखो, वहाँ जब देखो, तब एक नई समस्या का उदय हो रहा है। इस समय में अधिक वास्तविकता के साथ नाटक लिखकर मानवीय गुणों को विपरीत दिशा में बदलने की प्रयत्न होना चाहिए। हिन्दी नाटककार को तथा भारत की अन्य भाषाओं के नाटक कारों को भी अपने समय के साथ रूबरू होना ही पड़ेगा। वर्तमान में हबीब तन्वीर, बादल सरकार, गिरीश कर्नाड़ आदि नाटक कारों ने दिशा परिवर्तन किया है। यह जनवादी मूल्यों की दिशा है।

विसंगत शैली का भी फैशन के रूप में प्रयोग कर सकते हैं और राजनीतिक भ्रष्टाचार आदि पर बहुत कुछ लिखने का माहोल है। प्रकाश, वेशभूषा और मंच सज्जा पर ध्यान देकर सादगी पर विश्वास करके भारतीय रंगमंच को फिर से पैदा करने की जरूरत है। ग्रामीण प्रदेशों में भारतीय नाट्य परंपरा अपने आदिम वैभव और सार्थकता के साथ जिंदा है। इन्हीं ग्रामीण मण्डलियों को सही माइने में बढ़ावा देने की जरूरत है।

अपने जमीन को पहचानना है और फिर से अपने जमीन की और लौटना है। इसलिए नुक्कड़ नाटक जैसे विधाओं को, लोक नाट्य परंपरा को प्रयोग में लाकर, अपने रंगमंच को वर्तमान कठिनाइयों से निकालना

है। अब हिन्दी नाटक के साथ जो स्तब्धता छायी हुई है यह तूफान के आने से पहले सन्नाटा जैसा है निश्चय ही तूफान आनेवाला है। इससे हिन्दी नाटक को फिर से अपनी शुरुआत करने की शक्ति मिलने की संभावना है।

संदर्भ

[1]. डॉ॰ रचना चावड़ा, इक्कीसवीं सदी म ¬ हिन्दी साहित्य स्थिति एवं संभावनाएं, पृ॰ 11

[2]. नरेन्द्रपाल, भ्रष्टाचार, पृ॰ 18

[3]. प्रभाकर श्रोत्रिय, 'फिर से जहाँपनाह, पृ॰ 198-199

[4]. डॉ॰ सरिता वाशिष्ठः युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ॰ 181

[5]. स्वदेश दीपक, जलता हुआ रथ, पृ॰ 50-51

[6]. प्रभाकर श्रोत्रिय, फिर से जहाँपनाह, पृ॰ 223

[7]. डॉ॰ सरिता वाशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ॰ 196

[8]. नरेन्द्र पाल, भ्रष्टाचार, पृ॰ 32

[9]. महेन्द्र शर्मा सूर्य, 'नया सवेरा', पृ॰ 52-53

[10]. महेन्द्र शर्मा सूर्या, नया सवेरा, पृ॰ 53

[11]. डॉ॰ सरिता वाशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ॰ 203

[12]. रजना चावड़ा, विजय शिंदे, सुलक्षणा जाघव घुमरे, इक्कीसवीं सदी म ¬ हिन्दी साहित्य स्थिति एवं संभावनाएँ, पृ॰ 63

[13]. इस सिद्धान्त के अनुसार देश म ¬ आर्थिक प्रगति का लाभ गरीबी दूर करने के लिए निचले वर्ग पर पहुँचना चाहिए।

[14]. समाजवादी

[15]. बाजार आधारित समाज

[16]. बाजार की शक्तियाँ

[17]. बाजार अर्थव्यवस्था

[18]. शशिकिरण, कॉफी होम, पृ॰ 31-32

[19]. शशि किरण, 'कॉफी होम', पृ° 46

[20]. प्रभाकर श्रोत्रिय, 'फिर से जहाँपनाह', पृ° 205

[21]. प्रभाकर श्रोत्रिय, फिर से जहाँपनाह, पृ° 206

[22]. डॉ° सरिता वाशिष्ठ, युग बोध और हिन्दी नाटक, पृ° 238

[23]. हृषीकेश सुलभ, अमली, पृ° 61

[24]. डॉ° सरिता वाशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 226-227

[25]. वही, पृ° 238

[26]. नदिरा जहीर बब्बर, सकुबाई पृ° 23

[27]. भ्राकर श्रोत्रिय, साँच कहूँ तो, पृ° 128-129

[28]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 36

[29]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 33

[30]. डॉ° सरिता वाशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 233

पंचम अध्याय

21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का सामान्य परिचय

आज जो भी नाटक लिखे जा चुके हैं वे हमारे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करते है। नाटक ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा नाटककार समाज को एक संदेश देता है। साहित्य में नाटक का स्थान सर्वोच्च शिखर पर है, वास्तव में नाटक ही वह विधा है, जिसके द्वारा हम अपने समाज के सत्य के स्वरूप का दर्शन करते हैं। नाटककार विभिन्न उद्देश्यों व संदेशों को नाटक के माध्यम से जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। नाटकों के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज, राजनीति, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों का यथार्थ धरातल पर चित्रण हुआ है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं का चित्रण अपने पत्रों के माध्यम से किया है। नाटक कारों ने पति-पत्नी, सास-बहु, बहन-भाई, संबंधों की संवादहीनता, स्वच्छंद यौनाचार आदि सभी तथ्यों पर लेखनी चलाई है। 21वीं शताब्दी के नाटक कारों ने कोई भी ऐसा पक्ष अछूता नहीं रहने दिया जिसको छुआ न हो उन्होंने अपनी नैतिक रचनाओं के सभी विषयों पर प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग मुकेश सुलभ, हबीब तनवीर, नरेन्द्र मोहन, सुशील कुमार सिंह, वीभा रानी, शशि किरण, उषा गांगुली, स्वदेश दीपक, असगर वजाहत आदि नाटक कारों ने जीवन की अन्त कृतियों को नाट्य रूप में प्रवाहित किया है। जिस समाज में हम रहते है। उसके वास्तविक स्वरूप के प्रति अनभिज्ञ हैं। नाटक वह सशक्त माध्यम है जो हम जीवन की सच्चाई से अवगत करता है। जहाँ हमारी सोच नहीं पहुंच पाती वहाँ पहुंच जाते है। नाटकों के माध्यम से यह लगता है कि यह हमारे जीवन की वास्तविकताओं को उभारता है। यह हमारी अपनी कहानी है यह हमारी आत्मा को गहराई से छूते हैं। धर्म-अधर्म, आस्था-अनास्था, आत्म निर्वासन, असुरक्षा, मृत्युबोध, क्षण

बोध, दहकन की द्वन्द्वात्मक स्थितियों के बीच आज की नाट्य चेतना स्फीत हुई है। ये स्वर कहीं परिवर्तन के पोषक हैं, कहीं विघटन के समर्थक तो कहीं विद्रोहात्मक।

5.1 कोर्ट मार्शल (स्वदेश दीपक) 1994

स्वदेश दीपक के नाटक 'कोर्ट मार्शल' दो अंका विभाजित है। इस नाटक के पात्र रामचंद्र ने एक सैनिक ऑफिसर की हत्या की है और दूसरे को घायल किया है। इसलिए उसके ऊपर कोर्ट मार्शल लागू होता है। अपराधी रामचंद्र ऊँची आवाज में कहता है कि उसने बिना चैलेंज किए गोली चलाई थी। कैप्टन कपूर जो सेना में रहते हुए सामंती प्रवृत्ति के हैं। जाति वर्ण व्यवस्था में विश्वास रखते हैं। उन्हीं के इस निम्न आचरण पर रामचंद्र हत्या जैसा घिनौना अपराध करता है। कैप्टन कपूर अपने आप को रहीश और खानदानी मानते है और रामचंद्र को गरीब और नीची जाति का मानते हैं। उन में अपनी जाति के प्रति अत्यधिक गर्व है, जबकि वी° डी° कपूर इतना नीच है कि उसे जो मुफ्त का राशन सेना से मिलता है वह उसे बाजार बेच देता है। वह दौड़ में राम चंद्र से अपनी शराब पीने की लत के कारण हारे थे। इस हार के कारण वह रामचंद्र को बात-बात पर अपमानित करते थे। विकास राय अदालत को बताते है कि बी° डी° कपूर का असली नाम भिखारी दास कपूर है। जब रामचंद्र ने कपूर साहब को चूड़ा कहकर पुकारने से रोका था तब उन्होंने उसे थप्पड़ मारा था। "जैसे अपनी पत्नी को मारा था, जब उसने कहा तुम जानते हो, नामर्द ! इम्पोर्टेट ! क्रुअल एनीमल" इस बात पर कपूर अपना आपा खो बैठता है और विकास राय को बुरा बताता है रामचंद्र अदालत को बताता है कि कपूर और वर्मा प्रायः उसे गाली देते थे और कत्ल की रात उन्होंने उससे बुरा व्यवहार किया था विकास राय अदालत में सिद्ध कर देता है कि जाति भेद के कारण ही मि° कपूर ने रामचंद्र को नीचा दिखाने का प्रयास किया। इसलिए रामचंद्र ने उन्हें घायल किया। कैप्टन कपूर वास्तविकता को सहन नहीं कर पाते अपनी गलती को अंदर ही अंदर मानकर अपने को गोली मार कर आत्म हत्या कर लेते हैं। कोर्ट मार्शल नाटक में चित्रित कैप्टन कपूर उच्च जाति

से संबंधित है और उन्हें अपने खानदान पर गर्व है इस कारण वे रामचंद्र को सदा अपमानित और प्रताड़ित करते रहते थे नाटक में कपूर साहब शोषक की भूमिका में और रामचंद्र शोषित की भूमिका में है। कपूर साहब जैसे लोग समाज सेना और देश पर कलंक हैं, उन्हें अपने सहयोगियों से बराबर का व्यवहार करना चाहिए उन पर अत्याचार और अन्याय नहीं करना चाहिए, जीत सदा सत्य की होती है। दुष्ट और अन्यायी प्रवृत्ति के लोगों को अंत में मौत को गले लगाना पड़ता है।

5.2 ये आदमी ये चूहे (देवेन्द्र राज अंकुर) 2001

'ये आदमी ये चूहे' किसान के जीवन से संबंधित है इसकी प्रस्तुति में मानवीय वृत्तियों से उत्पन्न विडंबना और मानसिक संत्रण क्रूरता, करुणा, को दिखाया गया है। किसान के उस संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया है। जो वह सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता और गरिमा के लिए कर रहा है। वीरेन्द्र सक्सेना के निर्देशन में ये आदमी ये चूहे' की प्रस्तुति का केन्द्र दो खानाबदोश खेतिहर किसान है। आज के इस दौर में जब हर आदमी की चूहा-दौड़ में किसी भी तरह से आगे निकल जाना चाहता है। ऐसे में ये दोनों मेहनती लेकिन बेरोजगार किसान, जग्गू और लोरी एक दूसरे से बहुत प्यार करते है। जग्गू बुद्धिमान और चतुर है तो लोरी बलिष्ठ। परंतु मानसिक अपरिपक्वता से जग्गू में खीझ भी उत्पन्न होती है। फिर भी हर संकट में उसकी जितनी आत्मीयता और वफादारी से रक्षा करता है। वह अन्यत्र विरल है। अंत में जब लोरी के हाथों मनचाही हत्या हो जाती है और खून के प्यासे लोगों की प्रति हिंसा से बचाने के लिए जग्गू उसे मजबूर होकर गोली मार देता है तो ऐसी विडंबना का संयोजन होता है कि दर्शक हृदय उद्धेलित हो उठता है। "इन दो बेबस मजदूरों के बहाने नाटक में इंसान के चिरंतन स्वप्न और आकांक्षाओं की आशा और निराशा की बेहद झकझोर देने वाली कथा है, जिसमें मानवीय भावना और करुणा बेरहम जिंदगी के अंधकार में धुप की किरण की तरह झलमलाती रहती है।"1 लोरी के मारने के पीछे भी जग्गू की मानवीय करुणा 1. नेमिचन्द्र जैन, तीसरा पाठ-चार दशक की प्रस्तुतियाँ, पृ° 78 ही काम कर रही है।

जो लोरी को तिल-तिल मरने से बचाना चाहती है। नाटक सुखांत न होने पर भी आपसी प्रेम और सौहार्द को महत्व देता हुआ गहरी मानवीयता से भरपूर है।

5.3 अलख आजादी की: (सुशील कुमार सिंह) 2001

रंगमंच को नई दिशा देने वाला नाटक 'अलख आजादी की' अपने आप में एक बेजोड़ नाटक है। नाटककार ने भारत की संपन्नता से आकृष्ट विदेशियों का आगमन किया और उन्हें व्यापार करने की अनुमति देकर समूचे देश का शासक बन जाने की दास्तान को नाटक में तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नाटक के रूप में मंच पर भारत के स्वतंत्रता संग्राम को उतारा गया है। गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने की छटपटाहट और संघर्ष को संवेदनशीलता के साथ संजोया गया है। देश के विभाजन की त्रासदी के साथ प्राप्त स्वतंत्रता का उल्लास नाटक में दिखाया गया है। नाटककार ने शासन तन्त्र की पोल खोली है। नाटककार ने अपनी पैनी लेखनी से यह सन्देश देने का प्रयास किया है कि आजादी को बरकरार रखना एक बड़ी बात है। चारों ओर भ्रष्टाचार और घोटालों में डूबे नेताओं नौकर शाहों के भरोसे देश किस करवट बैठेगा? नाटककार ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को आमंत्रित करने के प्रश्न को ईस्ट इंडिया कंपनी और तमाम यूरोपीय चरित्रों से जोड़ा है। इसके साथ ही नाटककार ने भविष्य के प्रति चेतावनी भी दी है कि अंग्रेजों का हिन्दुस्तान पर कब्जा यहां के नागरिकों का उत्पीड़न, बेगुनाह पर लाठी चार्ज और गोलियाँ, आजादी के लिए क्रांतिकारियों का संघर्ष हिन्दुस्तान का बँटवारा और बँटवारे के बाद इंसानी दिलासे निकलने वाली कराहो आदि का बड़ा सजीव आत्मा को झकझोर देने वाला चित्रण किया गया है। यह नाटक मंच पर सुगमता के साथ मंचित किया जा सकता है। आलोच्य नाटक में देश के गुलाम होने की पृष्ठभूमि से आजादी मिलने तक की कहानी को मंच पर दिखाया गया है कि पहले भौगोलिक सीमाओं को लेकर परतंत्रता थी और अब आर्थिक परतंत्रता है।

5.4 धारा एक सौ चवालीस (किशोर कुमार सिन्हा) 2002

यह एक लंबा नाटक है। शहरों की गलियों में जब दंगा होता है, तो वे आपको कैसे प्रभावित करता है यही सब कुछ है इस नाटक में आप, में, सभी हैं, हम भी, वो भी और पुलिस वाले भी बीच में दबे हुए पत्रकार भी। इन सबका एक शहर भी है। शहर की आत्मा भी है। नाटक कम से कम एक सच्ची घटना से जुड़ा हुआ है दंगे आज भी हो रहे है। और उनका प्रभाव भी सभी पर पड़ रहा है। जब शहर में अमन- चैन होता है, तो आसमान में पतंगे नजर आती है, अच्छे लोग थे, जानदार लोग थे। आपस में मिल- जुल के रहने वाले लोग थे। अमीर भी थे, गरीब भी थे, लेकिन आपस में अजनबी नहीं थे दौलत और गरीबी के फांसले इतने लंबे नहीं थे, जितने की आज हैं, और जितने कि महानगरो में होते हैं, शहर में रिक्शे थे, तांगे थे, इक्के थे, फल वाले थे ककड़ी और फ्रूट बेचने वाले थे, तरबूज, खरबूजे और केले कठधारी अनार बेचने वाले थे, गलियों में नीम के पेड़ थे, पिछवाड़े धोबी रहता था, चौराहे पर पान वाला था मन्दिर वाली गली थी और नुक्कड़ पर भगत जी दूध वाले थे, और ख्यालराम मिठाई वाला। रेलवे स्टेशन को जाती हुई रेलवे रोड़ और मिट्टी लाल की प्याऊ, राहगीरों के लिए और पास में गाड़ियाँ खींच रहे, बैलों के लिए पानी की हौदी इसी हौदी में, होली पर, टेसू के फूलो को भिगोया जाता था। शहर का सबसे बड़ा आयोजन होता था नुमाइश के मैदान म, आजादी के बीस वर्ष गुजर चुके थे सरकारी मशीनरी का सरकारी करण हो चुका था, काफी हद तक। पुर्जों में जंग लग गई थी। और फिर एक दिन नुमाइश के दंगल मझ गड़ा हो गया, अचानक झगड़ा फिर दंगा और फिर धारा एक सौ चवालीस लगा दी गई। जिंदगी अस्त व्यस्त हो गई लोग तबाह हो गये केवल भय तैरता रहा मैली-सी हवा म। ये बात पुरानी है और नहीं भी क्यों कि धारा एक सौ चवालीस का असर आज भी वैसा ही होता है हर साल, किसी न किसी शहर म। दंगे के मूल कारणों पर नाटकीय ढंग से प्रकाश डाला गया है यह एक सफल रंग मंचीय नाटक है।

5.5 अधमुण्डा सिर और चौथी टाँग (अमृत लाल मदान) 2002

लाल मदान द्वारा लिखित 'अधमुण्डा सिर' और चौथी टांग नाटक अक्तूबर 2002 दुलीना (झज्जर) में हुए दलित हत्याकांड से उपजे दुख व क्षोभ से प्रेरित है। एक प्रेम की कथा के माध्यम से यह नाटक अंतरजातीय विवाह, दलित विमर्श, धर्मान्तरण जैसे सामाजिक सरोकारों व तनावों से उलझता जूझता हुआ समता व मानवीय गरिमा के लक्ष्य की और अग्रसर हो अन्त में विद्रोह के स्वर पर जाकर समाप्त होता है। रेखा ब्राह्मण समाज में जन्मी गौ-भक्त सिर्फ कहने को मात्र गोपाल शर्मा की पुत्री है। वह अपने सहपाठी रूप से जो कि जाति से दलित है प्यार करती है। उसमें इतनी हिम्मत नहीं कि अपने प्यार की सच्चाई से सबको अवगत करा सके। गोपाल शर्मा गौशाला की बूढ़ी व बीमार गायों को अपने नौकर रामशरण के हाथों मरवा उनकी खाल बेचता है। एक दिन जब नौकर द्वारा ये सब करता कुछ दलित देख लेते है तो वह यह शोर मचा देता है कि इन दलितों ने ही गायों को मारा है। हिन्दू वर्ग आवेश में दलितों की हत्या कर देता है। दलित वर्ग भी अपनी जाति के अपमान का बदला लेना चाहता है। रेखा अपने प्यार की सच्चाई घर वालों को बताकर रूप से ही विवाह करने की जिद्द करती है। उसे चार दीवारों में कैद कर लिया जाता है। गोपाल शर्मा उसकी शादी एक अपंग से करवा देना चाहते है, तो रेखा की माँ कलावती उसके विरूद्ध उठ खड़ी होती है। वहीं रेखा का भाई (विकास) भी अन्तर जातीय विवाह कर रहा है। रेखा व रूप की शादी करवा दी जाती है, उनकी शादी की रिसैप्शन पर माँ-बाप नहीं आना चाहते। वे कहते हैं कि रेखा उनके लिए मर चुकी है। इस अपमान से आहत रूप बौद्ध धर्म अपनाने का निश्चय करता है, रेखा उसे रोकती है। वह सोचता है कि एक दलित होकर वह कभी भी ऊपर नहीं उठ सकता। अगर उसके पास राजनीति शक्ति आ जाएं। तभी सभी वर्ग, धर्म उसका अभिनंदन कर उसके सामने नतमस्तक होंगे और वह यह निर्णय कर अपना सिर जो बौद्ध भिक्षु मुण्ड रहे थे रुकवा देता है और अधमुण्डा सिर ले समाज में बगावत का बिगुल बजा लेता है।

5.6 कॉफी होम: (शशि किरण) 2003

शशि किरण द्वारा रचित 'कॉफी होम' नाटक में सामाजिक व्याप्त अर्थव्यवस्था पर प्रहार किया है। इस नाटक का प्रथम मंचन 24 मार्च 2001 की सुप्रीम कोर्ट में नाटककार के निर्देशन में हुआ। आज समाज में असहायता की स्थिति पैदा हो गई है। समाज के तीनों महत्त्वपूर्ण स्तम्भ कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका सब एक दूसरे को दोष दे रहे हैं, जिससे आम-आदमी परेशान है। वह कहा जाये, क्या करें कोई विकल्प नहीं है। नाटककार वास्तविक घटनाओं और तथ्यों को काल्पनिक पात्रों के माध्यम से मंच पर दर्शाता है। रंगमंच की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है क्योंकि नाटक मन पात्रों की भीड़ है। जिससे दर्शकों को पात्रों की भूमिका समझने में आसानी है। प्रकाश व्यवस्था भी उत्तम है। प्रकाश व्यवस्था द्वारा दृश्य परिवर्तन बड़ी आसानी से हो सकता है। नाटककार ने दृश्य परिवर्तन की व्यवस्था इतनी आसान कर दी है। कि 'पर्दा' डालकर भी आवश्यकतानुसार दृश्य-दिखाये जा सकते है, 'कॉफी होम' का मंच थोड़ा-सा व्यस्त दिखाया गया है, जहां पात्र आते-जाते रहते हैं वे कॉफी पीते हैं, वार्तालाप करते है और कभी वार्तालाप के बीच में कॉफी पीते हुए दिखाई देते है।। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से समय की पोल खोलकर रख दी है। राज नैतिक आज इतनी नैतिक हीन हो चुकी है कि चुनाव के समय अनेक प्रकार के वायदे करने वाले नेता समय आने पर अपना स्वार्थ सिद्ध करने लग जाते है। नाटक राजनैतिक अपराधीकरण का विरोध करता है और स्पष्ट करता है कि राजनैतिक व्यवस्था तभी सुधरेगी जब राजनेता अपना आचरण सुधार लगे। व्यंग्यपूर्ण संवाद इस नाटक की विशेषता है। अपने संक्षिप्त संवादों में नाटक ने राजनैतिक प्रमुख और सिंहासन के लिए होने वाले शड़यंत्रों का मुखौटा उतार कर रख दिया। जो प्रजा की भलाई के नाम पर राजनीति करते आये है। वर्तमान राजनीति व जनता की पुकार को इस नाटक में बहुत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। राजनीति और चुनाव व्यवस्था की खोख़ली और बेईमानी नीति पर सशक्त प्रहार करते हुए सता के बर्बर रूप पर प्रकाश डालते है। महिला और पुरुष के संवाद-राजतंत्र और लोकतन्त्र के शोषण का परिचय देते है। आम-आदमी को चुनाव के प्रति तटस्थता राशन और गिरहकटाकी समस्या, बिजली पानी की, चुनाव की समस्या से घिरी उसकी कायर थकान

की अनुभूति नाटक को बेधक बना देती है। 'कॉफी होम' आज की प्रयोगशील और अभिव्यंजनाशील नाट्य शैली में हिन्दी के नये रंगमंच आंदोलन के अनेक प्रश्न चिह्नों को उद्घाटित करता है। इस नाटक में यह जन-आकांक्षा बड़ी खूबी से व्यक्त की गयी है कि अब सत्ता के लिए झूठे बादे और संघर्ष नहीं सुपात्र चाहिए। बहुचर्चित राजनैतिक के व्यंग्य प्रधान नाटक सत्ता प्राप्ति के संघर्ष के रोचक एवं प्रभावशाली ढंग से रंगमंच पर प्रस्तुत करने में बखूबी सफल है।

5.7 नया सवेरा (महेन्द्र शर्मा सूर्य) 2003

'नया सवेरा' महेन्द्र शर्मा सूर्य का यह नाटक घटना परिस्थितियों के वश होकर अभिनय कर रहा है इस विचार को आधार बनाकर 'नया सवेरा' नाटक की रचना की है। यह नाटक एक नया व्यवहारिक और अद्भुत घटनाक्रम तथा अनुभव लिए हुए है। रंगमंच पर आम पत्रों के माध्यम से सामाजिक जनजीवन के रंग बिखर गए है। नया सवेरा का अज्ञाकारी बेटा सूरज पाश्चात्य संस्कृति में पला बढ़ा और शिक्षित होने पर भी पूर्व की संस्कृति को कभी भूलता नहीं है। सूरज का विलायत में होना ठाकूर देवेन्द्र सिंह का पत्नी के वचन को निभाना ये सारी घटनाएं नाटक के अनायास प्रश्नों को सुलझाने में हैं कि जो सहज और मानवीय है उसे कृत्रिम विधि निषेधों में क्या बांधा जाये। नाटककार ने माँ की भूमिका को प्रभावपूर्ण ढंग से दर्शाया है जिससे नाटक रंगमंच पर दर्शकों को अन्दर तक हिला कर रख देता है। आठ दृश्यों में विभक्त कथावस्तु नाटकीय संघर्ष के विकास, तीव्रता और अवसान को सशक्त रूप में प्रस्तुत करती है। सूरज के संवादों द्वारा पिता देवेन्द्र सिंह के आत्म सम्मान की भावना तथा माँ के प्रति स्नेहपूर्ण सात्विक भावों को प्रस्तुत किया है। आज के जीवन की त्रासदी, स्वार्थीपन, अजनबीपन, बेतुकेपन, विकृत और कल्पनातीत में व्यक्त होती है नाटक में दर्शाया गया है कि नारी गांव में रह कर भी पाश्चात्य रंग में आकर्षित हो जाती है। किंतु अंत में पाश्चात्य की अग्नि उसे कुंदन बना डालती है। पति के प्रेम में पत्नी किरण स्वप्न दृष्टा ही नहीं इस प्रेम के बल पर बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में भी पति को बचा लेती है। 21वीं

शताब्दी के नाटकों में नाटक कारों का एक प्रयोजन यह भी रहा है कि रंगमंच के माध्यम से ग्रामीण समाज में जागृति पैदा कर, जिससे गाँव का विकास भी हो सक। सीधी-साधी भाषा के माध्यम से पात्रों द्वारा संवाद बुलवाये गये क्रांति देव का नायक आम बेरोजगार नवयुवक होते हुए भी ग्रामीण विकास को उत्कर्ष तक पहुँचाता है। एक संन्यासी उसका मार्गदर्शन करता है। एक साधारण और भोला-भाला किसान दर्शन मुरारी उसका सहयोग करता है। नाट्य भाषा के स्वरूप गठन और सृजनात्मक धरातल की दृष्टि से नया सवेरा एक सफल मंचीय नाटक है।

5.8 कहते है जिसको प्यार (कृष्ण बलदेव वैद) 2004

'कहते है जिसको प्यार' कृष्ण बलदेव वैद द्वारा रचित नाटक है इस नाटक में अर्थहीन हो गए मानवीय संबंधों एवं संबोधनों की गहरी छानबीन और नयी व्यवस्था के साथ-साथ मानवीय मूल्यों की पुर्नपरिभाषित किया गया है। गीता, अखिल, सुजाता जैसे चिरपरिचित चरित्रों के माध्यम से नाटककार ने स्त्री-पुरुष संबंधों को रचनात्मक विमर्श के साथ प्रस्तुत किया है। इस नाटक की प्रस्तुति ने यह बहुत अच्छी तरह सिद्ध कर दिखाया है कि रंगमंच की दृष्टि से 21वीं सदी के नाटक पीछे नहीं है। नाटककार ने नाटक के प्रत्येक अंक के आरम्भ में मंच से सम्बन्धित दिशा निर्देश दिये है। गीता की आखवीरान, चेहरा चिंतित दिखाई देता है। मंच पर एक-दो क्षण के लिए एक छाया की तरह इधर-उधर टहलने के बाद वह कुर्सी पर उदास सी बैठ जाती है और दीवारों को ऐसे देखती है जैसे कोई कैदी किसी सूराख की तलाश महो। इस नाटक के संवाद इतने सुसंगठित हैं कि पात्र की भाव दशा से प्रेक्षक वर्ग अवगत हो जाता है। संवाद परिस्थितियों के पयार्य लगते हैं आज के व्यक्ति की जिंदगी अपने द्वारा किये गये समझौतों में उलझा प्रवेश मात्र बनकर रह गया है और हुए प्रस्थान तक पहुंचने से पहले ही अस्पष्ट और अर्थहीन भटकाव के लिए बाध्य हो जाता है। नाटक में पात्र गीता भी यही सोचती है कि एक हद के बाद हम अपनी गलतियों की सजा भुगतने के सिवा कुछ भी नहीं कर सकते।

5.9 बहादुर क्लारिन (हबीब तनवीर) 2004

हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ को ही लोक कथा पर आधारित एक और नाटक 'बहादुर क्लारिन' प्रस्तुत किया है। बस्तर जिले के आदिवासियों की प्रचलित लोककथा पर आधारित यह नाटक आश्चर्यजनिक रूप से सोफोक्लीज के यूनानी नाटक 'ईडियस रैम्स' की याद दिलाता है बहादुर क्लारिन शराब का धंधा करने वाली एक रूपवती स्त्री है। उसके सोंदर्य पर मुग्ध होकर राजा उससे विवाह कर लेता है और वापस आने का वचन निभाता नहीं इधर बहादुर क्लारिन एक पुत्र को जन्म देती है, जिसका नाम 'छछन' रखा जाता है। राजा के विश्वासघात के बावजूद भी बहादुर क्लारिन उससे घृणा नहीं करती। एक बार जमीन के विवाद म' छछन' अनजाने में अपने पिता को ही मार डालता है। युवा व्यवस्था में छछन का विवाह होता है। लेकिन वह संतुष्ट नहीं होता। अंत में बहादुर क्लारिन को जब पता चलता है कि उसका बेटा उसी पर आसक्त है तो वह विक्षोभ, आत्मग्लानि और आक्रोश से भर उठती है और अपने पुत्र को मार डालती है तथा स्वयं भी आत्म हत्या कर लेती है। यह नाटक अत्यन्त नाटकीय स्थितियों से गुजरता हुआ माँ और बेटे के आत्मय संबंधों पर प्रश्न चिन्ह लगाता ही हैं साथ ही साथ उनके मन की सूक्ष्म अंतर व्यथाओं को भी अभिव्यक्त करने में सफल रहा कहानी अंत में आकर दुखांत रूप धारण कर लेती है। दुखांत भी ऐसा की सबके मन को छलनी कर दे। दुखांत होने के बावजूद एवं नाटक में कुछ समकालीन शिक्षाप्रद संकेत भी है। जो बच्चों के साथ किए गए अतिरिक्त लाड़-दुलार के कुप्रभावों की ओर भी ध्यान दिलाते हैं।

5.10 जनवासा (रवीन्द्र भारती) 2005

जनवासा नाटक नाटककार रवीन्द्र भारती की रचना है जिसकी प्रथम प्रस्तुति 12 व 13 अगस्त को थियेटर यूनिट, पटना द्वारा की गई। जनवासा मानवीय संवेदनाओं का एक ऐसा कोलॉज है जिसका हर रंग सामाजिक सरोकार के ताने-बाने में समाया है। नाटक नक्सलवादी विचारधाराओं के टकराव भूदान

आंदोलन वर्ण व्यवस्था की बढ़ती खाई, अंधविश्वास से मुक्ति के द्वार की खोज और अशिक्षा के बीच संभ्रांत वर्गों की स्वार्थ लोलुपता के छद्म रूपा को नग्न करता है। बल्कि समाज की अंधी सुरंग में रोशनी भी दिखाता है; जैसे अब भी बहुत कुछ समाप्त नहीं हुआ है। जनवासा की प्रस्तुति को देखकर भूदान के भ्रष्टाचार स्वयंसेवियों की स्वयं की सेवा और क्रांतिकारी धारा की पतनशीलता की समकालीनता का दर्शन हुआ समय के सच पर रवीन्द्र भारती की बड़ी पकड़ है जनवासा मेहनतकश। भारतीय जनमानस में उपज अनेक प्रश्नों की पृष्ठभूमि में आज की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति का आईना है इस नाटक में सुधारवादी एवं तथाकथित क्रांतिकारी दोनों ही अपनी सूरत पहचान सकते है जनवासा में क्रांति और कल्याण की दुकानदारी करने वालों के असली स्वरूप को उजागर किया गया है। सत्य के पक्ष में खड़ा होने पर कौन मित्र बनेगा, कौन दुश्मन इसकी परवाह किए वगैर ही रवीन्द्र भारती ने साहित्यिक ईमानदारी का परिचय दिया है। इनके नाटक में इतनी तारतम्यता है कि लगभग सोलहा-सत्रह पात्रों वाले नाटक 'जनवासा' में स्टेज शांत रहता है। इस नाटक को कई स्थानों पर मंचित किया गया। नाटक में रस भी तभी उत्पन्न होता है जब पात्र या दर्शन से तारतम्य होता है। भूदानी कई लोक संस्कृति, लोक कथाओं को बहुत महत्व देती हुई कहती है कि 'सम्पन्न लोक संस्कृति का हमारे जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है'।

5.11 जाँच पड़ताल (संजय सहाय) 2008

महान रूसी लेखक गीगोल की कालजयी कृति दी गवर्नमट इस्पेक्टर' पर मूलतः आधारित संजय सहाय का हिन्दी नाटक 'जाँच पड़ताल' उस व्यवस्था और तंत्र के मानव द्रोही भ्रष्ट चरित्र की परत-दर-परत खोलता है, जिसमें हमें रहने और जीने के लिए लगभग अभिशप्त है। यथार्थ के विचलित कर देने वाले उताप और तीखे देश के सहारे यह नाटक कहीं न कहीं हमें भी अपनी ही नजरों के आगे परख व पहचान के लिए खड़ा करता है। एक बेमुरोवत कठघरे में जहां से जीवन संदर्भों की न केवल एक नई

कारगर पहचान व प्रतीत होती है बल्कि अर्थपूर्ण बदलाव की शुरूआत भी होती है। भ्रष्टाचार से ग्रसित पीड़ित आम भारतीय जन पर व्यवस्थाओं द्वारा समाज को दीमक की तरह चाटना आदि पर नाटककार ने सहज और पैना व्यंग्य किया। व्यक्तित्व विरोधी शक्तियों और समाज को खोखला करने वाली भ्रष्ट ताकतों के खिलाफ व्यंग्य का धारदार हथियार प्रयोग करने वाली जागरूक नाटककार संजय सहाय का यह नाटक रंगमंच की दृष्टि से पूर्णतः सफल है। तीन अंकों में विभाजित यह नाटक भ्रष्टाचारियों का पर्दाफाश करने वाली सशक्त रंग मंचीय रचना है। चरित्रों के रेखांकन और रंग-रूप काफी स्पष्ट है तथा रोचक विविधता से सम्पन्न है, संवादों में सहजता के साथ-साथ गंभीरता और प्रखरता भी है। भ्रष्टाचार और कानून एवं अन्याय के विरूद्ध का दिलचस्प प्रस्तुतीकरण इस नाटक में हुआ है। परन्तु दुर्भाग्य से यह मानव मूल्यों की हत्या, इंसानी रिश्तो की त्रासदी और जनतंत्र के नाम पर चल रहे जंगल तंत्र के प्रति कोई तीखा आक्रोश; विरोध या विद्रोह पैदा नहीं करता।

5.12 धर्मगुरु (स्वराजबीर) 2005

धर्मगुरु इस नाटक का कथ्य आज की बदलती सामाजिक मानसिकता की अभिव्यक्ति है। यह नाटक आज के दौर महर तरह के उन धार्मिक अंधविश्वास तथा सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करता है जो एक वर्ग द्वारा पूरे समाज पर लादी गई है। इसका नायक मानवीय संवेदना लिए इन सबके विरोध में खड़ा है। इस नाटक में दो मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया गया है पहला मुद्दा यह है कि धर्मसभा की स्थापना और उस सभा की ओर से मनुष्य की स्वतंत्रता पर लगाए गए अंकुश। आज सत्ताधारी वर्ग धार्मिक संगठनो के द्वारा मनुष्य और समाज पर फतवानुमा पाबंदियाँ लगाने का संचालन करता है। इस तरह का व्यवहार हमारे अपने देश में और बाहर के देशों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। यह अलग बात है कि आज की सुपर पावर अपना 'फतवा' या 'हुकनामा' जारी करने से पहले किसी सभा की भी जरूरत महसूस नहीं करती। दूसरा मुद्दा है नाटक का बुनियादी सरोकार। इस नाटक का बुनियादी सरोकार जीवन की प्राथमिकता

है। नाटक का नायक तीन स्तरों पर इस प्राथमिकता की रक्षा करता है। सबसे पहले यह भावात्मक स्तरों पर अपने प्रेमी की रक्षा करता है। दूसरे वह भौतिक स्तर पर ऋषि विश्वामित्र और अपने परिवार को भुखमरी से बचाने के लिए हर संभव यत्न करता है और तीसरे बौद्धिक स्तर पर धर्मसभा में मनुष्य की विचार-स्वतंत्रता का ऐलान करता है।

5.13 रूदाली (उषा गांगुली) 2005

निर्देशिका उषा गांगुली द्वारा रचित नाटक रूदाली में सनीचरी केन्द्रीय पात्र है। जिसे यह नाम शनिवार को पैदा होने के कारण मिला है उसे समाज में असगुनी माना जाता है सनीचरी नाम के साथ ही समाज में उसे कुछ मिली है सज्जाएं। समाज यह मानता है कि सनीचरी अपशुगनी है और इसलिए उसके परिवार में कोई नहीं बच पाया एक-एक करके सब काल की भेंट चढ़ गए। अब सनीचरी के पास रोने के लिए आँसू तक नहीं है। नाटक में अन्तर द्वन्द्व, तीव्र मनोभावों- सवेगाऔर प्रतिक्रियाओं की अद्वितीय प्रस्तुति हुई है। केन्द्रीय पात्र सनीचरी अपने परिवार के सभी सदस्यों को खोने के बाद भी खोई नहीं है यहां तक उसका बेटा भी मर जाता है। समाज के निम्नतम वर्ग में स्त्री जीवन की एक लोमहर्षक विडम्बना को रेखांकित किया गया है। नाटक में एक ऐसी स्थिति दर्शायी गई है कि सनीचरी को भाड़े पर रोना पड़ता है मेहनताना लेकर मात्तम करती है। इस नाटक में वर्णित समस्या केवल सनीचरी की ही नहीं है वरना प्रत्येक नारी की है। जो परिस्थितियों का मुकाबला तो करती है, लेकिन अंदर तक टूट जाती है। समाज में व्याप्त वेश्यावृत्ति, शोषण, नारी-निंदा, बाह्य आडंबर आदि का पात्रों द्वारा यथार्थ चित्रण किया गया है। वेश्यावृत्ति पर नाटककार ने करारा व्यंग्य किया है और साथ ही पैसो से सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध काम करने का विरोध भी नाटक में दर्शाया गया है।

5.14 सीढ़ियाँ (दया प्रकाश सिन्हा) 2005

सीढ़ियाँ रंग मंचीय कालखंड का प्रभावी रेखांकन माना जाता है। मुगल शासन के अंतिम चरण को रेखांकित करता और ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नाटक 'सीढ़ियाँ' वास्तव में लेखक के ऐतिहासिक शोध, जटिल मानवीय स्वभाव की गहरी पकड़ अपने समय के अंतर्विरोध को पकड़ने की गहरी क्षमता और रंग-शिल्प की सूक्ष्म अंतरंग जानकारी का परिणाम है। नाटक में आधुनिक चेतना के धरातल पर मूल्यांकन करने के साथ-साथ समसामयिक यथार्थ को ऐतिहासिक स्थितियों और पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का एक सशक्त प्रयास है। 'सीढ़ियाँ' का नायक वह काल खण्ड है जो पत्रों के माध्यम से इस नाटक में स्थापित है। मुगल शासन के अन्तिम चरण में , साम्राज्य के बिखराव के साथ सामाजिक विघटन का वह कालखण्ड, जो समाज के गिरते जीवन मूल्यों के साथ अपनी देशीजगी (कौमार्य) खो बैठता है। जहां वही सत्य है, जिसकी जय हो सत्य पर असत्य, आस्था पर अनास्था, प्रेम पर वासना, करुणा पर हिंसा और विश्वास पर घृणा की जीत युगधर्म है पतित समाज, भ्रष्ट अहलकार, विलासी हुक्मरा-ऐसे बदरंग हैं, जिनसे बनी है, गुजरे वक्त की तस्वीर। वक्त के साथ ये रंग न घुले, न उड़े। वर्तमान की तस्वीरों में भी इन रंगों की झलक है, कहीं न कहीं । नाटक के पाठक दर्शक आज की तस्वीर में इस बीते कल की तस्वीर के रंगों की झलक देख सक।

5.15 एक मामूली आदमी (प्रो° अशोक लाल) 2006

'एक मामूली आदमी' विषय वस्तु से संकेत मिलता है कि यह एक गुरु-गम्भीर नाटक है। नाटककार ने नाटक की कथा को इस तरह बुना है कि ज्यादातर समय दर्शक हँसते रहते है जीवन की वही विडम्बनाएँ जो हम सबके लिए चिन्ता और चिंतन का विषय बनाती हैं। देखते-देखते जिन्दगी को एक आनन्दमयी अनुभव में ढालने का कारण बन जाती हैं नाटक हमारे सामाजिक, पारिवारिक रिश्ता, नौकरशाही और मानवीय मूल्यों के बारे में भी कुछ सवाल उठाता है, लेकिन सबसे ऊपर उसका जोर इस तथ्य पर है कि साधारणतया भी एक सार्थक और उल्लासमय जीवन का साधन बन सकती है। 'एक

मामूली आदमी' का केन्द्रीय चरित्र म्यूनिसिपैलिटी का एक साधारण-सा हैड क्लर्क है। तीस साल पहले उसकी पत्नी का देहान्त हुआ था, तभी से जिन्दगी में उसकी दिलचस्पी भी जाती रही। बेटा-बहू भी दूर हो गए और काम काज भी छूट गया। सेवानिवृत्त होने के कुछ ही महीने पहले उसे पता चलता है कि उसे कैंसर है और अब बहुत ज्यादा वक्त उसके पास नहीं बचा है। तब मृत्यु के आमने सामने खड़े हो कर सहसा उसे अहसास होता है कि जीवन के ये साल जो उसने जीए है, जो बीत गए है वो उसने बिना जीए ही गुजार दिए है वह मुर्दे की तरह ही जिया और अब वह जब तक जीवित है यानि मरने तक वह जिन्दगी को जी कर देखने का फैसला करता है यही नाटक की कथा की वास्तविकता है। अनेक दर्शकों का कहना है कि नाटक देखकर उन्हें अपनी जिंदगी के लिए एक नया नजरिया मिला है।

5.16 बापू के नाम (सुशील कुमार सिंह) 2006

'बापू के नाम' तीन बाल एकांकी है गाँधी जी के आदर्श और सिद्धांत न केवल अपने देश में बल्कि सारी दुनिया में जाने जाते है। आपसी प्रेम, भाईचारा, शांति, अहिंसा और विश्व-बन्धुत्व की भावना। जो गांधी जी के मूल आदर्श और विचारों की सबसे बड़ी आवश्यकता है। गांधी जी का संपूर्ण जीवन प्रेरणाप्रद है, किंतु आज हम उन्हें भूल गए है। इसलिए हमारे राष्ट्र और समाज में तरह- तरह की बुराइयों ने स्थान ले लिया है। दक्षिण अफ्रीका में प्रवास के समय गांधी जी ने गिरमिटियों यानि भारतीय मजदूरों की दुर्दशा देखकर उनके अधिकारों के लिए कई बार सत्यागृह आंदोलन किए एवं जेल भी गए। बाल नाटिका 'काटो की राह' में वह मार्मिक क्षण भी है जब गांधी जी ने पहली बार पतलून कोट, टाई का परित्याग किया था और धोती कुर्ते पहनने की बात कही गई है। दूसरी नाटिका में ' जेल चलो' और अपनी पत्नी कस्तूरबा को अपने अधिकारों के लिए आंदोलन करने और जेल जाने के लिए प्रेरित किया था। यह घटना भी दक्षिण अफ्रीका की है। अंतिम एकांकी 'वैसे तो सब कुशल है' में बापू के तीन बंदर जो किसी पार्क में जड़े मूर्तियों की तरह वर्षों से आँख, कान, मुँह बन्द किए बैठे थे बापू के देश का हाल जानने के

लिए आँख, कान, मुँह खोलने का फैसला कर बैठते हैं। ये तीन बंदर देखते है कि बापू के देश में अब झूठ, फरेब, रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, टूटते-बिखरते रिश्ते, आदि देखने को मिलते हैं जो बापू के राज्य में होता था वह अब कुछ नहीं है। इसलिए तीनों बंदर फिर अपनी अवस्था में आ जाते है। इस प्रकार इन तीन एकांकी के माध्यम से सुशील कुमार सिंह ने देश की समस्यायों पर प्रकाश डाला है।

5.17 रंग राज तरंगिणी (मोती लाल क्यूम) 2007

इस नाटक में अतीत की कथा के बहाने से समकालीन जीवन और समस्याओं के बुनियादी कारणों की खोज और मानव भविष्य की चिंता को दर्शाने का सफल प्रयास हुआ है। यह नाटक लोक नाटक के वेश में वर्तमान चेतना और रंग-संवेदना का नाटक है। 'शाप' नाटक राजतरंगिणी के प्रथम तरंग के तेरेह श्लोकों पर आधारित है। यह एक युद्ध विरोधी नाटक है। इसका प्रथम मंचन जम्मू के अभिनव सभागार में आठ अक्तूबर 2004 को हुआ। दामोदर कश्मीर मंडल का राजा बन जाता है, लेकिन उसका मन अपने पिता के हत्यारों के बारे में अभी भी शक में है। वह चाहता है कि उसके पिता के हत्यारों को पकड़ा जाए, लेकिन सत्ता के लोभ में अपना कर्तव्य कर्म भूल जाता है। वर्तमान राजनेताओं की भाँति उसे भी अपनी सत्ता की शक्ति का अहंकार है। नाटककार के पत्रों के चरित्र को यथार्थ की भाव भूमि पर प्रस्तुत किया है। आज भी सत्ता के शिखर पर बैठे व्यक्ति दामोदर की हठधर्मिता को लिये हुए है। वे अपने स्वार्थ के लिए हर बात पर अड़े हुए हैं। दामोदर बिना सोचे समझे एक बड़ी सत्ता के साथ गांधार पहुंच जाता है। वह वहाँ बलराम और कृष्ण के साथ युद्ध करना चाहता है। लेकिन वह अपनी अहंकारी प्रवृत्ति के कारण मानता नहीं नाटककार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अंत में कृष्ण को अपना सुदर्शन चक्र चलाना पड़ता है और जिससे दामोदर का सिर धड़ से अलग हो जाता है। दामोदर की मौत उस शक्ति का प्रतीक है जो हमेशा जनता का शोषण करती आई है। नाटक मंचन की दृष्टि से सफल नाटक है। नाटक के कथानक आज की जिंदगी से जुड़ा हुआ है। इसलिए नाटककार की भावाभिव्यक्ति भी आज की भाषा में

प्रभावशाली बन पड़ी है। नाटककार ने इस नाटक के लिए एक ऐसे शिल्प को चुना है, जिससे लोक धर्मी नाट्य परंपरा को एक नया रास्ता मिला है। नाटककार ने आलोच्य नाटक के माध्यम से वर्तमान राजसत्ता का लोभ करने वालों के साथ-साथ मानवता की शांति की कामना की है संपूर्ण रूप से यह एक सशक्त जननाटक है।

5.18 चरनदास चोर (हबीब तनवीर) 2009

चरन दास चोर की कथा वास्तविक भी है और काल्पनिक भी। चरनदास एक चोर है लेकिन चोरी के धन को गरीबों में बाँट देता है जिससे उनकी प्रेम और श्रद्धा प्राप्त करता है। चरन दास चोर एक बार किसी साधु के सामने ये प्रतिज्ञा लेता है कि वह कभी झूठ नहीं बोलेगा, सोने की थाली में खाना नहीं खाएगा और हाथी की सवारी नहीं करेगा। अपनी इस प्रतिज्ञा के कारण वह कई परेशानियों में पड़ जाता है और उसकी ये परेशानियों तथा उसमें से बाहर निकलने के उपाय दर्शकों को खूब हंसाते हैं। संस्कृत रंगमंच की 'भारत वाक्य' की युक्ति को भी अपनाया गया है। अंत सुखांत न होते हुए भी हबीब तनवीर ने नैतिकता का पालन किया है। रानी कलावती के सामने जब चरनदास को लाया जाता है तो वह उसके सद् विचारों से प्रभावित हो मन ही मन उससे प्रेम करने लगती है। एक दिन जब वह चरनदास के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखती है तो वह अपनी प्रतिज्ञा का हवाला देकर मना कर देता है। रानी और भी कई प्रलोभन तथा शर्तें उसके सामने रखती है, अंततः हर प्रकार से हारने के पश्चात बदनामी के भय से रानी चरनदास को मरवा देती है। किंतु इस कुकृत्य से स्वयं ही ग्लानि से भर उठती है अंत में सत्य में हत्त्व को दर्शाते हुए यह गीत 'भरत वाक्य' के रूप में गाया गया। "सत्य ही ईश्वर है ईश्वर ही सत्य है।" पूर्व रंग में मंगलाचरण के लिए सभी पात्र मंच पर एक पेड़ के पास आते है और माथा टेककर चले जाते है। इसके बाद बाधक समूह वाद्य यंत्रों का बजना शुरू होता है व लड़के घुंघरू बाँध कर सफेद धोती व जनेऊ पहन कर घेरा बनाकर मुंह नीचे करके एक ताल में नृत्य करते है पूर्व रंग के इस कार्य व्यापार के बाद ही

वास्तविक नाटक शुरू होता है। एक चोर गठरी लेकर भागता हुआ आता है। पुलिस वाला उसके पीछे पकड़ने के लिए दौड़ता हुआ मंच पर प्रवेश करता है। प्रवेश की युक्ति के प्रयोग से भी इस नाटक में अभिनटन द्वारा कई अभिनय स्थलों , उपकरणों आदि की सूचना दी जाती है।

5.19 जी जैसी आपकी मर्जी (नादिरा जहीर बब्बर) 2008

नादिरा जहीर बब्बर ने 'जी जैसी आपकी मर्जी' में बच्ची युवती एवं प्रौढ़ा उम्र की स्त्रियों के माध्यम से एक-एक करके नारी मन की कोमल भावनाओं को बड़े रोमांचक ढंग से व्यक्त किया है। इस नाटक में नारी पात्र खुद लेखिका ने निर्देशक का रूप धारण करके चार चाँद लगा दिए है। इस नाटक में सभी पात्र नारी हैं प्राचीन काल से ही नारी को रोंदा जा रहा है। उसके व्यवहार पर प्रश्न-चिह्न लगाये जा रहे है। इस नाटक में नारी जीवन की परिभाषा ही बदल दी है। समाज में बहुत से रूढ़िवादी मुद्दे है जो स्त्री की भूमिका को नकारते हैं। यहां उन सभी रूढ़िवादी विचारो के विरुद्ध एक जन-आन्दोलन है। नाटककार ने नाटक की भूमिका में लिखा है कि यह नाटक हमारे समाज की मानसिकता को बहुत सच्चाई से प्रतिबिम्बित करता है चाहे वो धार्मिक मान्यताएं हो जो स्त्री का दम घाट देती है या फिर हमारी रूढ़िवादी परंपराएं। इस नाटक का प्रथम मंचन 1 सितम्बर 2004 को मुंबई के नेहरू सटर द्वारा आयोजित 'राष्ट्रीय नाट्य उत्सव' में किया गया। नाटककार खुद रंगमंच, सिनेमा और टेलीविजन की मशहूर कलाकार रही है। नाटक के संवाद कई जगह लम्बे जरूर है, लेकिन अर्थ की दृष्टि से इन संवादों का भाव नाटक में जरूरी जान पड़ता है। नाटक के माध्यम से उन सब रूढ़ियों का खण्डन किया जाता है कि बेटा या बेटी पैदा करना नारी के वश की बात नहीं है। वर्षा की छोटी उम्र में शादी कर दी जाती है। वह जैसे-जैसे अपने ससुराल में अपना जीवन व्यतीत करती है। लेकिन उसकी सास उसे ताना देती है कि उसे लड़कियां नहीं लड़का भी पैदा करना चाहिए। नारी जीवन की विडम्बना को मंच पर एक रोचक ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है। नारी जीवन में ऐसे बहुत से रूढ़िवादी मुद्दे है, जिन्हें हमें देखना और बदलना होगा,

अपने समाज में स्त्री की स्थिति से जुड़े सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए यह नाटक कोई सनसनी पैदा करने के लिए नहीं बल्कि जो हमारे बहुत से सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे इस स्थिति से जुड़े है - उन पर प्रकाश डालना है। नाटककार ने अपने युग की रंग-रूढ़ियाँ, उपलब्ध रंग-उपकरणा, रंग-संयंत्रों का रंग सुविधाओं के अनुरूप नाटक में प्रयोग किया है। नाटक को नया आधार मिलता है अब मानव जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करता है। इस नाटक में स्त्री स्वतंत्रता को वे बड़े बेखूबी ढंग से चित्रित करते है। वर्तमान नारी समाज की सभी अच्छी बुरी बातों को समझ रही है और विवेक से प्रत्येक बात का जवाब भी देती है। नाटककार समाज के क्रूर चेहरे का नकाब उतार कर सामान्य नारी के शोषित जीवन का करुण चित्र उभारते है। नाटक की चरित्र-योजना वर्तमान युग के संपूर्ण परिवेश की स्थिति से अवगत कराने में सक्षम है।

5.20 दिल्ली-6 (ललित सिंह पोखरिया) 2008

इस नाटक में नाटककार वर्तमान भारतीय चरित्रों परिस्थितियों, नित्य प्रति बदलते जीवन मूल्यों एवं सरोकारों की बड़ी प्रभावी अभिव्यंजना करता है। नाटककार ने भारतीय जीवन में व्याप्त हो रही विसंगतियों के कई आयामों को कैनवास पर उतारा है। चाँदनी चौंक के व्यापारी परिवारों के दो अति महत्वाकांक्षी युवकों की कथा है जो किसी भी कीमत पर सफल होना चाहते हैं। वे अपना मकसद साधने के लिए एक बाहुबली राजनेता के यहाँ पहुँच कर उसकी बेटी से प्रेम की जुगत भिड़ाते हैं जिसकी शादी एक मूर्ख व्यक्ति से पहले ही तय होती है। यही से रहस्य रोमांच, साजिश, हिंसा और लम्पटता का वह पॉपुलर कल्चर हमारे सामने आता है। जिसकी छवियाँ हम आए दिन शहरी जीवन में दिखाई पड़ती है। यहां प्रेम को क्षणिक उन्माद का फैशन माना गया है इस नाटक में सड़ क छाप प्रेम कथाओं के संवाद है। जिसमें देश की नई पीढ़ी सांस ले रही है। एक लड़की अपने प्रेमियों के विवरण देती है जो उसके लिए लाइन लगाकर खड़े रहते है। एक भावुक प्रेमी अपनी प्रेमिका को भूलकर राजनेता का दामाद बनना

चाहता है। जिससे वह सम्बन्ध मजबूत कर अपनी कई पुश्तों का जुगाड़ कर सके। जैसी हमारी राजनीति में चाचा भतीजा परिवेश और उसकी विसंगतियों के चित्रण पर बहुत बल दिया गया है। आज के राजनीति प्रधान युग से हमारे जीवन का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं । पूंजीवादी और सत्ता की भ्रष्ट नीति ने हमारे सामाजिक जीवन से व्यक्तिगत जीवन तक स्वार्थ, अवसरवाद और मूल्यहीन आचरण का प्रसार कर दम घोट स्थिति उत्पन्न कर दी है। नाटककार ने इस नाटक में जीवन को आक्रान्त करने वाली आज की विषम परिस्थितियों का सजीव अंकन किया है।

5.21 अभंग गाथा (नरेन्द्र मोहन) 2009

'अभंग गाथा' मराठी के संत कवि तुकाराम पर केन्द्रित नाटक है। अभंग गाथा में तुकाराम की सच के प्रति उसकी निष्ठा और उसे अमल में लाने का साहस। सच और साहस उसमें अपनी पल-पल कचोटती जिंदगी के दुखते-कसकते, जलते संदर्भों से अर्जित किए है - पारिवारिक, सामाजिक दबावों, तनावों को लंबे समय तक अपने स्नायु-तंत्र पर झेलते हुए रोजमर्रा के त्रासद अनुभवों से गुजरते हुए। मर्मान्तिक पारिवारिक संतापों से अस्तित्व के निषेध तक ओर वहाँ से पलटकर आत्मबोध की अवस्थाओं तक गहरे अंतर्द्वद्वो से आत्म संघर्षों तक और वहाँ से संघर्ष की व्यापक सामाजिक भूमिकाओं तक इस संत कवि ने सच को कमाने और पाने की कीमत चुकाई है। वह उच्च वर्ग द्वारा प्रताड़ित अपमानित लांछित हुआ पर सच पक्ष को निडरता से दृढ़ता पूर्वक थामे रखकर उसने आततायी-अत्याचारी का हर सूरत में विरोध किया है। वह आग-सा दमक है। सच के लिए प्रेम के ढाई आखर की खातिर, छदम और आडंबर के खिलाफ पंडितों और विद्वानों की बौद्धिक काहिली बेईमानी पर उसने तीखे व्यंग्य किए है तो किसानों की बेबसी पर आहत हुआ है। ऐसे कवि की जिंदगी का हर प्रसंग युद्ध का प्रसंग बन जाए तो क्या ताज्जुब। उसकी चेतना से लिपटा सच और युद्ध प्रसंग मुझे आज की परिस्थिति में बार- बार काचता रहा है सृजनात्मक शब्द की शक्ति में तुकाराम की आस्था जिंदगी के पर्याय के रूप में "शब्द की कल्पना और

उसके लिए गहरी छटपटाहट है। शब्द के प्रति भूरी पूरी ललक और आस्था को, उसके रहने अथवा उससे वंचित कर दिए जाने पर तुकाराम की अंतर्वेदना की गहराई को उस प्रसंग से समझा जा सकता है। जब रामेश्वर भट्ट के आदेश पर तुकाराम की अभंग पांडुलिपियों से पत्थर बाँध कर नदी में डूबो दिया जाता है और अभंग रचना उनके लिए निषिद्ध ठहरा दी जाती है। उसके लिए यह परम संकट का समय या जीने मरने की घड़ी, सृजन परीक्षण का क्षण ढहते हुए आत्म लोप की हदों को छूते हुए तुकाराम ध्यान में एकाग्र होकर आत्मबोध पाते हैं।

5.22 एक औरत हिपेशिया थी (हबीब तनवीर) 2009

हबीब तनवीर के नाटक "एक औरत हिपेशिया भी थी" में राजनेता सांप्रदायिकता को फैलाकर धर्म के नाम पर लोगों को एक-दूसरे से लड़ाना चाहते है लेकिन लोग वास्तविकता को जानकर उनका विरोध करते है। अत्याचार सरकार की शह पर होते है। व्यवस्था से जुड़े सिपाही आंदोलनकारियों का साथ देते है। आम आदमी को लूटते है। उसका शोषण करते है जबकि लोग संगठित होकर यहूदियों को देश से निकाले जाने के नारे लगाते है। लोगों के आन्दोलन और सरकार की क्रूरता पर प्रतिक्रिया करते हुए पीटर लोगों को सांत्वना देता है। नाटक में जनता सांप्रदायिकता के विरोध में "शासन और सत्ता का सामूहिक रूप से विरोध करती है। नाटक में ईसाई धर्म के कट्टरपंथी नगर में खून खराबों करते हैं। यहाँ तक की नगर के गवर्नर पर चाकू से हमला किया जाता है। नगर में जगह- जगह कत्लेआम होता, आग लगाई जाती है। यहूदियों और गैर ईसाइयों का कत्लेआम किया जाता है और इन सब असामाजिक और आतंकवादी कार्यों के पीछे 'सिरियल' का हाथ होता है। धर्म के जुनून में इंसानियत की बलि चढ़ा दी जाती है। आपसी मोहब्बत-मोरिबत खत्म हो जाती है और इसका स्थान घृणा और द्वेष ले लेता है। नाटक का सिरिल राजा को ढाल बनाकर गैर इसाईओं पर अत्याचार करता है। उन पर हमले किए जाते हैं। नाटक में सारनिसियस इस मार-काट के संबंध में सिरियल से मिलना चाहता हैं, पर वह मिलने से

इनकार कर देता है क्योंकि ये सारे दंगे फसाद सिरियल के कहने पर होते है जिससे सारनिसियस का दिल टूट जाता है। वह लीबिया वापस चला जाता है जहां कुछ महीनों के बाद उनकी मृत्यु हो जाती है। सिरियल एक ऐसा पात्र है जो नाटक का खलनायक है। वह सदैव साम्प्रदायिकता में आस्था रखता हुआ हिंसा के माध्यम से अपने धर्म को दूसरों पर लादता है।

5.23 जलता हुआ रथ (स्वदेश दीपक) 2009

'जलता हुआ रथ' नाट्य-क्रांति वर्तमान भारत की सच्ची-सच्ची तस्वीर को प्रस्तुत करता है। आज के सुविधा-भोगी जीवन में मानवीय जीवन के साथ-साथ कला जगत को प्रभावित किया है। यह नाटक अपने कथ्य के साथ-साथ कला जगत को प्रभावित भी करता है नाटक के तीनों अंक एक-दूसरे से कारण कार्य के रूप में जुड़े हुए है। नाटक का मुख्य पात्र अधेड़ उम्र वाला बाबा देश की बिगड़ती हालात पर चिन्ता करता है कि देश को राजनीति के गलियारों में बांटा जा रहा है। नेता लोग जनता को जातिगत आधार पर बांटते जा रहे हैं। इसका नतीजा यही होगा कि देश की प्रगति में बाधा आएगी। 'जलता हुआ रथ' नाटक में भिखारी लोगों द्वारा दिखाई जाने वाली बेरुखी के विषय में बताता है। भिक्षा वृति आज एक व्यवसाय के रूप में फलित जा रही है। भिखारियों के दरिन्दे ठेकेदार औरतों, बच्चा, वृद्धों के हाथ पैर या शरीर के किसी अंग को काटकर या जख्मी करके उन्हें लोगों की मोहताज का पात्र बनाकर भीख मांगने के लिए छोड़ देते है। भीख का कारोबार करने वाले लोगों का सरगना अकसर छोटे-छोटे बच्चों को भी उठा ले जाते है और फिर उन्हें दूसरी भीख मांगने वाली औरतों की गोद में देकर भीख मंगवाते हैं। इस नाटक में 'झण्डा सिंह' भिखारियों पर बहुत अत्याचार करता है। वह दुर्गा भिखारिन के मुँह में इसलिए सिलाई लगाना चाहता है ताकि उसे अधिक भीख मिलें क्योंकि उसका मानना है कि जितना दर्द उतनी भीख लोगों की गंदी वासना की नजर से भिखारिनें भी नहीं बच पाती। अकसर लोग इनके फटे हुए अधखुले चिथड़ा से झांकते इनके मैले-कुचैले शरीर को भी अपनी वासना की तृप्ति का

साधन मान लेते है। इसी नाटक में औरत अधेड़ आदमी से वार्तालाप कर वास्तविकता जानना चाहती है। इसी नाटक में छोटी दुर्गा अधेड़ से प्रार्थना करती है कि वह उसे कोई ऐसा मंत्र सिखाए जिससे उसे दोबारा सिलाई का दर्द न झेलना पड़े और भीख न मांगनी पड़े।

5.24 जिन लाहौर नहीं देख्या औ जम्या नई (असगर वजाहत) 2009

नाटक को देश विदेश की विविध भाषाओं में अनेक बार प्रस्तुत किया गया। यह हिंदी का एक ऐसा सशक्त नाटक हैं जो पूरे विश्व को सद्भावना का पाठ पढ़ाने में सक्षम है। देश की आजादी के साथ ही विभाजन की त्रासदी का कहर भी टूट पड़ा। भारत दो हिस्सों में बंट गया - हिंदुस्तान और पाकिस्तान। नाटक का केन्द्र बिन्दु एक बूढ़ी औरत और उसकी हवेली है जिसे विभाजन के बाद सरकार ने एक विस्थापित मुसलमान सिकंदर मिर्जा को दे दिया है। वह हवेली मदन नाम के एक हिंदुस्तानी की थी जो शायद परिवार सहित दंगों में मारा गया है। मदन की बूढी माँ अभी भी उस हवेली में ऊपर वाले कमरे में रहती थी। जिसे अपने बच्चों का आज भी इंतजार है। मुसलमान परिवार को जब पता चलता है कि ऊपर बूढ़ी औरत है तो वे परेशान हो जाते हैं और उस हिंदू स्त्री को हवेली से निकालने का प्रयास करते है। मदन की माँ अपने प्रेमभाव से सबका दिल जीत लेती है। सभी उसको अम्मा कहने लगते हैं तथा ईद और दीवाली साथ-साथ मनाने लगते है। कुछ कट्टर मुसलमान हिंदु मुसलमानों के इस प्रेम को सहन नहीं कर पाते और धर्म के नाम पर उनमें वैर भाव पैदा करने की नाकाम कोशिश करते हैं। धीरे-धीरे उनकी यह नफरत इतनी बढ़ जाती है कि पीर बाबा, सिकन्दर मिर्जा, शायर तथा अन्य कई लोगों के समझाने पर भी नफरत खत्म नहीं होती और बूढ़ी खाला को मौत के घाट उतारकर ही दम लेती है। नाटक में बूढ़ी औरत और सिकन्दर मिर्जा के आपसी प्रेम से यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि आम व्यक्ति के लिए लोगों के कारण यह नफरत की दीवार और मजबूत हो रही है। पूर्व रंग के रूप में ए क सुंदर गजल प्रस्तुत की गई है जो हिंदू और मुसलमानों के इन झगड़ों से बहुत ऊपर इंसानी रिश्तों के महत्व

को दर्शाती हैं। गगनिका पर दंगों की त्रासदी के चित्र भी कथानक का संकेत देने में कारगर प्रमाणित हुए। नाटक में लाहौर से जुड़ी अपनी यादा, हर गली, नुक्कड़, दुकान और वहाँ की संस्कृति का मानो जीता-जागता बिंब खड़ा कर दिया था। घर के किस कोने में कुआँ है, लकड़ियों व कोयले की कोठरी है, अन्न भंडार आदि इन सभी की केवल सूचना दी गई जो अत्यंत विश्वसनीय थी। नाटक का अंत भारतीय रंगमंच की सुखांत पद्धति पर आधारित नहीं है लेकिन सोद्देश्यपूर्ण है। सिकन्दर मिर्जा को जब पता चलता है कि रात को गुंडे उस बूढ़ी औरत को मारने आने वाले है तो वह अपनी बेगम हमीदा को उसके कमरे में चादर तानकर सोने के लिए कहता है ताकि बूढ़ी औरत बच जाए और इसी प्रकार बूढ़ी खाला का मुसलमान परिवार पर कोई आँच न आए इसलिए अपना बलिदान दे देना आदि बात हिंदू मुसलमानों के प्रेम को सुदृढ़ करने का काम करती है। इससे यह नफरत की चिंगारी में भी आशा की किरण दिखाता है। जो हिंदु मुसलमानों के सद्भाव और प्रेम से रोशन हो सकती है।

5.25 फिर से जहाँपनाह (प्रभाकर श्रोत्रिय) 2009

फिर से जहाँपनाह नाटक में मनुष्य की भयावह त्रासदी का नाटक हैं, जिसे वह सत्ता प्रणालियाँ बदल-बदल कर भी निरंतर भोगता आ रहा है। नाटक दो अंकों में विभक्त है पहले अंक में आधुनिक युग के भविष्य तक विस्तार है और दूसरे अंक में मध्य काल का अतीत तक का वर्णन किया गया है दोनों अंक राजनीतिक व्यवस्था की प्रजातान्त्रिक और तानाशाही प्रणाली के प्रतीक हैं। प्रजातंत्र का चरित्र मध्यकालीन सत्ता चरित्र से क्याा अलग हो गया है ? महत्वाकांक्षा, अहंकार, झूठ, लूट, भ्रष्टाचार, हत्या, बलात्कार, छल-कपट और जनता को खंड-खंड करके सत्ता पर कब्जा करने वालों के चरित्र में कोई बदलाव नहीं आया है। सत्ता चरित्र वही है बदलाव सिर्फ शैली का है। वह अधिक आधुनिक हो गई है। 'सत्ता भ्रष्ट करती है कोई भी जन भ्रष्ट सत्ता में ही पैदा नहीं होता जैसे सक्रिय कार्य व्यापार बदल चुका है। यहां भी अपवाद है - और वे ही आशा के कद्र भी - लेकिन सिर्फ अपवाद; वे नियम नहीं है। जिन्हें

नियमन का दायित्व सौंपा जाता है, अकसर वे ही सबसे पहले नियमों की मिट्टी पलीत करते हैं। वर्तमान समाज में फैली टूटन, संकीर्णता, विकृति, विषमता और भ्रष्टाचार, राजनीति के भ्रूभंग की परिणतियाँ है। राजनीतिक कर्मियों की सामूहिक इच्छा शक्ति सत्ता को मिल-बांटकर खाने भर के लिए है। यहां जनता हाशिये पर है - स्वार्थ के क्षणामफुसलाने की चीज। वह अपनी नियति में उतर आता है। 'सर्वसमर्थता' का अंधा नशा ऐसा कुंडलीनुमा ढांचा बनाता है जहां सत्ता के किरदार गोल-गोल घूमते रहते हैं, जिससे जनता कुछ समय के लिए भ्रमित हो जाती है। 'फिर से जहाँपनाह' नाटक में सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करने के अपराध में विद्रोही पार्टी के विरुद्ध जाँच आयोग बैठता है। देश का मुखिया चक्रवर्ती इसका अध्यक्ष बनता है। परन्तु आयोग वास्तविक की जाँच नहीं करता इस नाटक में सरकार विरुद्ध षड्यंत्र की जाँच के लिए जो आयोग बनाता है, वह जाँच के बाद दोषियों को तो मुक्त कर देता है और जो निर्दोष लोग है वो सरकार के गलत कामों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। उन्हें सजा सुना दी जाती है। परन्तु वास्तविकता यह है कि हमारे देश में घोटालों व षड़यंत्रों की भरमार है। इतिहास और समय किसी को क्षमा नहीं करता, लेकिन राजनीति की तात्कालिकता के रक्त-बीज से नए-नए अपराध-केन्द्र पहले ही जन्म ले चुके होते हैं। जनता को अपना संघर्ष जारी रखना ही है - तमाम स्वार्थ केन्द्रों के विरुद्ध क्योंकि इसका न कोई विकल्प है न अंत। यह नाटक नयी शैली, तेवर और समय की सच्चाई को बेनकाब करता है।

5.26 रक्त अभिषेक (दया प्रकाश सिंह) 2006

इस नाटक की अन्त भूमि पूरी तरह भारतीय मानस की आन्तरिक विवशता, स्वभाव संस्कार से जुड़ी है। नाटककार ने नाटक की कथावस्तु भारतीय जन के आदर्श यथार्थवाद, कर्म और अकर्म, अनुरक्ति और विरक्ति तथा हिंसा और अहिंसा के शाश्वत द्वन्द्वों से जोड़कर उसे आज के वर्तमान सत्यों से जोड़ दिया है। मोहम्मद गौरी की खाल में जीवित मोहम्मद अफजल गुरु जैसे विष बीज हमारी करुणा, क्षमा, दया

का लाभ उठाकर जब-तब सिर उठा लेते है हमारी राष्ट्रीय जड़ों को निरन्तर किसी न किसी रूप में खोखला करने का प्रयास करते है। यह नाटक बृहद्रय और उसके सैनिक पुष्यमित्र शुंग की आपसी टकराहट का नाटक है। यद्यपि इस नाटक का कथ्य इतना नया भी नहीं है, फिर भी इस नाटक को बढ़ते हुए सहज ही 'शेक्सपीयर' के 'जूलियास सीजर' और आधुनिक नाटककार 'पीटर शैफर' के 'वैकेट' की याद आ जाती है। नाटककार ने इस नाटक में इतिहास के ऐसे प्रसंग को छुआ है जो लगभग अछूता और अनजाना रहा है। यह नाटक अंतिम मुगल सम्राट को अंत में अकेला कर मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर की याद दिलाता है, लेकिन जिस तरह से मुगल सम्राट को अंत में अकेला और निर्वासित जीवन जीने पर विवश होना पड़ता है। वैसी पीड़ा भी इस नाटक में कहीं नहीं उभरती, यहां तक कि पुष्यमित्र द्वारा बृहद्रय की हत्या, न तो उसके प्रति कोई सहानुभूति जगाती है और न ही कोई ऐसी नाटकीय स्थिति तैयार करती है, जिसके लिए दर्शक पहले से तैयार न हो। नाटककार इस नाटक का मंचन स्वयं कर यह साबित करता है कि यह मंचन के लिए सर्वथा उपयुक्त है और एक कल्पनाशील परिकल्पना के लिए अवश्य उत्साहित करता है। इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने वर्तमान अर्न्तध्वनियों की गूँज पारदर्शी होकर इतनी स्पष्ट और तीव्रता से गूँजती हैं कि भारतीय मानस न जाने कितनी घटनाओं प्रसंगों से तुरन्त जुड़ जाता है।

5.27 साँच कहूँ तो (प्रभाकर श्रोत्रिय) 2009

'साँच कहूँ तो' राजस्थानी रासो-कथा पर आधारित स्त्री पुरुष संबंधों का एक नया लीला नाटक है। इसमें धारा-नरेश भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव के विवाह, वियोग एवं पुर्नमिलन की मार्मिक कथा को मारवाड़ और मालवा की लोक रंग परंपरा की रंगत के कल्पनाशील प्रयोग से एक दिलचस्प मौलिक नाटक का रूप प्रदान किया गया है। आधुनिक पाश्चात्य रंग दर्शन और यथार्थ वादी नाट्य शैली से आक्रांत समकालीन हिंदी नाट्य लेखन की लोकप्रिय प्रमुख धारा के विरुद्ध

यह नाटक अपनी दृश्यात्मकता से एक चुनौती प्रस्तुत करता है। बीसलदेव कोई व्यापारी या दरिद्र व्यक्ति नहीं था। उसके प्रवास के पीछे एक मूर्ख हठ थी, जिस पर उसने अपने पति धर्म ही नहीं, राज धर्म और मानव धर्म की बलि चढ़ा दी। पर नाटक शासकमात्र की सनक, कर्त्तव्य हीनता और मूर्खता पर टिप्पणी करने का अवसर देता है। हीरों की प्राप्ति के लिए बीसलदेव की सुदूरवर्ती दुस्साहिक यात्रा, नकली चमक दमक के पीछे छोड़ने वाले आधुनिक उपभोक्तावादी वर्ग के चरित्र को उजागर करने में भी सक्षम है। इससे यह भी प्रकट होता है कि उपभोक्तावादी प्रवृत्ति की जड़े सत्ता और ऐश्वर्य कामना में बहुत गहरी हैं। मुँह से निकले वचन को भारतीय साहित्य में उच्चतर मूल्य का दर्जा मिला हुआ है। फिर यह वचन चाहे मूर्खता या घमंड़ में ही क्यों न निकला हो। इस नाटक में ‘ वचन’ या ‘प्रतिज्ञा’ अनेक प्रकार के कष्ट और विनाश का कारण रही है। बाल नायिका का भोलापन, अक्खड़ और किसी हद तक साहसी व्यक्तित्व व केवल राजस्थानी स्त्री के बेलौस चरित्र को दूर तक चित्रित करने का अवसर देता है, बल्कि इसमें नारी- मुक्ति और नारी-विद्रोह की छटपटाहट भी प्रस्तुत की जा सकती है। यह कथा बाल-विवाह जैसी कुप्रथा पर भी प्रकाश डालती है। जो आज भी मध्यकाल में बने रहने वाले समाज में प्रचलित है। इस नाटक को बाल-विवाह ही नहीं विषम-विवाह की मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में भी देखा है। बीसलदेव प्रौढ़ है। वह कामवेग से भरा पड़ा है जबकि किशोरी उससे अनभिज्ञ है। यदि राजमती व्यस्क होती तो उस तरह की प्रतिक्रिया प्रकट नहीं करती, जैसी उसने की। दरअसल यह मामला पुरुष के कुंठित काम का भी है, जिसकी दुखदायी परिणति इस घटना में हुई है। बारह वर्ष की अति सुंदर, चंचल, सरल, अबोध और दाम्पत्य संबंधों से अनभिज्ञ बालिका राजमती द्वारा अपने से आयु में काफी बड़े पति बीसलदेव के आत्मसम्मान एवं पुरुष-अहंकार को अनजाने आहत किए जाने से उत्पन्न विषम स्थिति, विडंबना और उसके त्रासद परिणामों का लेखक ने सुंदर नाटकीय मंचन किया है।

5.28 चार यारों के यार: (सुशील कुमार सिंह) 2009

प्रसिद्ध नाटककार सुशील कुमार सिंह ने जहाँ स्पष्ट से राजनैतिक नाटक लिखे है, वहीं सामाजिक स्थितियों को भी बड़े साहस के साथ उकेरा है। 'चार यारों के यार' सुशील कुमार सिंह का एक बहुचर्चित नाटक है, जिसने प्रथम मंचन के साथ ही रंग जगत में सनसनी फैला दी, नारी जीवन की विड़म्बना को सहज, सरल, संवादों के माध्यम से प्रकट किया गया है। नाटक की सारी कथावस्तु मुख्य पात्र बिन्दिया के चारों और घूम रही है। 'बिन्दिया' जैसी अनेक औरतें इस देश में अपना जीवन दुख दर्द में बीता रही है। पुरुष प्रधान समाज में नारी को आज भी कई बातों में समाज के सामने झुकना पड़ता है। लेकिन 'चार यारों के यार' की नायिका 'बिन्दिया' पुरुष प्रधान समाज को चुनौती देती है। नाटक के अंत में जब दर्शकों को आप बीती सुनाती है। तो दर्शक वर्ग की आत्मा झकझोर हो उठती है। नाटक के पात्र बौद्धिक स्तर से उतरकर हृदय की भाषा का व्यवहार करते दिखाई देते हैं। इस नाटक में छहों पात्र अपनी स्पष्ट भाषा द्वारा किसी एक व्यक्ति की बजाय एक समूची परिस्थिति, एक समूचे वातावरण और एक समूची सम्भावना के रूप में अपने आपको प्रस्तुत करते हैं। यह नाटक परम्परागत नाटकों से अलग प्रतीक शैली में उस अंधेरे दौर की व्यंग्यपूर्ण त्रासदी का जीवंत दस्तावेज तथा दर्शकों को हिला देने वाली एक सीधी कारवाई है। जो नारी पात्र बिन्दिया के माध्यम से दर्शाया गया है। बिन्दिया की व्यथा कथा इस देश की अनेकों नेक औरतों की व्यथा कथा है। समाज के प्रति एक भयंकर आक्रोश भी नाटककार ने प्रकट किया है। नाटककार ने इस आलोच्य नाट्यकृति के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंधों को कई पहलुओं से अंकित किया है और चुस्त नाटकीय लिवास में पेश किया है। जो कथ्य को मंच पर पूरी तरह उभारने में सफल है।

5.29 अमली (हृषीकेश सुलभ) 2010

21वीं शताब्दी में नाटककार हृषीकेश सुलभ का बिहार की बिदेसियों शैली में लिखित नाटक आधुनिक भी है और अपनी जड़ों से जुड़ा हुआ भी है। नाटक का प्रथम मंचन केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी नई

दिल्ली द्वारा भुवनेश्वर में आयोजित पूर्वी क्षेत्र नाट्य समारोह 29 अक्तूबर 1984 को कला संगम पटना ने किया। नाटक में प्रचुर पारम्परिक गीता एवं नृत्यों का समन्वय किया गया है जो नाटक के कथ्य एवं बिदेसि शैली दोनों के अभिन्न अंग है। सूत्रधार और गड़बड़िया जैसे पात्र अमली को एक और संस्कृत परंपरा से जोड़ते है। तो दूसरी और लोक परम्परा से। नाटक रुचिकर एवम् मनोरंजन परक होने के साथ-साथ हमें सोचने को मजबूर करता है कि कहीं वर्तमान परिस्थिति से मुक्ति पाने-दिलाने के लिए उन्मुख करता है टोटल थिएटर को रूपायित करने वाली यह नाट्य रचना हिन्दी साहित्य एवं रंगमंच की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। बिहार के गांवों की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना को सामन्तों ने हमेशा अपनी गिरफ्त में रखा है। अतः यहां की सांस्कृतिक चेतना का सहज और वैज्ञानिक विकास नहीं हो सका। जीवन-सापेक्ष कला रूपों की नींव जब कमी का साधन बनाया और विकृत किया। इस कथा को नाटक का रूप देने में बिदेसिया शैली को अपनाया है। अमली का कथा बिहार की धरती से जुड़ी हुई है। नाटककार ने अभिनय के लिए पारसी रंगमंच तथा विदूषक और भारत वाक्य के रूप में संस्कृत रंगमंच को भी अपनाया है। बिहार के लोकनाट्य रूपाजट- जटिन, डोमकच, झोझिण कीर्तनिया आदि की रंग युक्तिया, गीति-कथाओं भरभरी चरित बनजारा आदि की संवेदना और प्रस्तुति गायन शैली तथा असंख्य संस्कार एवं लोकगीत(तेबड़ा) (झूमर) (विरहा) (चैती) उनकी धुनों का उन्होंने अपनी प्रस्तुत शैली में भरपूर उपयोग किया है। विदूषक द्वारा विसंगतियों से जीवन की दुखती रगो पर व्यंग्य की अंगुली रखकर हँसना-रुलाना, कहीं अति नाटकीयता के संवाद-प्रक्षेपण और कहीं संवाद के मात्र मुद्राओं-मुखाकृतियों और वेशभूषा से ही गम्भीर नाटकीय प्रभाव पैदा 146 करना बिदेसियों की विशिष्टता है।

5.30 अभी रात बाकी है (जयंत पवार) 2010

अभी रात बाकी है जयंत पवार इसके मूल लेखक है यह नाटक मुंबई के कपड़ा मिलों के मजदूरों की ऐतिहासिक हड़ताल पर लिखा गया है। मुंबई जैसे महानगर में आज की समस्याओं का वास्तविक चित्रण

उकेरा गया है। इस नाटक में मिल कामगारों की ऐतिहासिक हड़ताल दिखाई गई है। नाटक में मनोरंजन की अपेक्षा रखने वाले कुछ एक को यह रौद्र, भड़कीला और जिस्म पर मंच का रोमांच खड़ा करने वाला नाट्य लगता है जिन विशिष्ट निम्न मध्यम वर्गीय लोगों की जिंदगी इस नाटक के माध्यम से सामने आती है उस सामाजिक स्तर में बचपन बीता, पर वह समय अलग था। और उस वर्ग का उस समय का, जीवन आज, आज की तुलना में काफी हद तक सरल और शांति भरा था यह सब विशिष्ट वर्ग, समाज के घटक, परिस्थिति, मिलाहड़ तालों जैसे एकाध निमित्त से आने वाले संकट के काफी उस पार का था। वरना इस नाटक से इनमें से किसी भी कारण से न जुड़े, ऊपर से खुद एक नाटककार होने वाले व्यक्ति को क्या अपने में समा लेता है यह नाटक परदा गिरने के बाद भी मुक्त नहीं करता इस तरह प्रभाव साधने वाला यह नाटक मूलतः आत्मचरित्रात्मक है। नाटककार के इस संबंध में कुछ पूछने की जरूरत ही महसूस न हो, इतना सब नाटक में ही स्पष्ट हो जाता है नाटक में जो दिखाई देता है। जो कहा जाता है। वह काल्पनिक नहीं है वह भोगा हुआ है इस का सबूत नाटक का एक-एक शब्द देता है। इसके पात्र कठपुतलियाँ नहीं हैं वे नाटककार के दिल को बरसों घर बनाकर बैठे जीते-जागते, भीतर ही भीतर धधकते इंसान हैं इनके शब्द डॉयलोगबाजी की तरह सामने नहीं आते बल्कि वे भीतर से तड़पकर निकली हुई आवाज होते है। हर व्यक्ति रेखा की छोटी से छोटी शैली दिल की गहराई में गड़ े जीवंत अनुभव से उभरती महसूस होती है। मुम्बई के मिल मजदूरों की बस्ती कहे जाने वाले लालबाग-पटेल का यह इलाका कपड़ा मिलों की हड़ताल की वजह से तहस-नहस हो गया, बीमार मिलों लंबी खिच चुकी हड़ताल, फिर मजबूर एकता को तोड़ने की राजनीति कोशिश, उच्च शिक्षा का प्रभाव बढ़ती हुई महंगाई, प्रांतीय राजनीतिक दलों की मुँहजोरी ऐसे अनेक कारणें से मिल मजदूरो के परिवार तबाह हुए। बेरोजगारी की गिरफ्त से बचने के लिए नौजवान लड़के अंडर वल्ड की ओर आकर्षित होने लगे। इस नाटक के संघर्ष प्रसंग और नाटक के संघर्ष प्रसंग के बीच जो फर्क है। वही इस नाटक की अलग विशेषता है स्पष्ट करने के लिए काफी है।

5.31 आगरा बाजार (हबीब तनवीर) 2010

आगरा बाजार प्रकाशित रचना हबीब तनवीर की है छतीसगढ़ और राजस्थान की लोककथाओं का समन्वय आगरा-बाजार नाटक में विद्यमान है। भारतीय संस्कृति, आस्था, रहन-सहन छत्तीसगढ़ किसानों और जनजातियों का हँसी-मजाक, उनके गीत, उनके किस्से सब इस नाटक में विद्यमान है। इन नाटक की शैली में इतनी तारतम्यता है कि अधिक पात्र होने पर भी मंच पर बिल्कुल शांति बनी रहती है। उन्होंने इस प्रकार की शैली तैयार की जिसमें रंगमंच पर सभी तरह की अभिव्यक्तियां हो सके आम आदमी के रोजी-रोटी के सवाल को भी इन्होंने इस नाटक में प्रमुखता से उठाया है नाटककार ने इस नाटक में आम- आदमी की वाणी को प्रमुखता दी है। साधारण जीवन जीने वाले छोटे तबके के लोग जीवन संघर्ष के लिए चाहे कितना भी जुझे या कभी गुत्था-गुत्थम हो जाए, जब कोई तीज-त्यौहार मेले या जुलूस का मौका आता, ये लोग अपना धर्म, जाति या अन्य भेद-भाव भूल जाते है। सभी मिलकर पूरी उमंग लगन से मनाते है। 21वीं शताब्दी के नाटकों में आरंभ मंगलाचरण जैसे नाट्य विधान को नहीं मानते है। इस नाटक ने पात्रों द्वारा समूह गान करवा कर अभिनय को सफल कर दिया है। नाटकों में संगीत स्वतंत्र होता है। हमारी वास्तविक जिंदगी की तरह परंतु संगीत का जितना महत्व हमारी जिंदगी में है, उससे कहीं अधिक नाटक में है, इस नाटक में ‘ आदमीनामा’ एक कोरस गीत हैं। जिसमें सभी कलाकार मिलकर नाटक के पैगाम को व्यक्त करते हैं परंतु मानव प्रकृति की सच्चाई यह व्यक्त करती है कि इस संसार में कोई एक दूसरे के समान नहीं है।

5.32 धरती आबा: (हृषीकेश सुलभ) 2010

धरती आबा नाटक बिरसा मुंडा के जीवन संघर्षों पर केन्द्रित है। बिरसा के संघर्ष भरे जीवन में मुंडाओं के लिए स्वप्न है। जनजातीय समाज के नायक बिरसा मुंडा पूरे भारतीय समाज के नायक के रूप में उभरते है और गुलामी के कठिन जीवन से मुक्ति के लिए आंदोलन आरंभ करते है। बिरसा मुंडाओं के प्रति

अपमान भरी टिप्पणियों के चलते मिशन स्कूल छोड़ देते है। वह जनजातीय देवताओं और प्रचलित हिन्दू देवताओं और प्रचलित हिन्दू देवताओं से संबंधित कर्मकाण्डा के प्रति अनास्था प्रकट करते हैं। वह धर्म के महत्व और स्वरूप की अपनी निजी व्याख्या करते है और एक ऐसे धर्म की स्थापना करते हैं, जहां भय नहीं विश्वास है और साथ ही नए स्वतंत्र जीवन की चाहत है। वह मुडाओं को संगठित करते हैं और नई सामाजिक व्यवस्था तथा आजादी के लिए लड़ते हैं धानी जनजातीय संघर्षों का पारंपरिक सूत्र है और बिरसा की कथा के माध्यम से मंच पर नाटकीय विस्तार दिया गया है। भगवान और धरती के आबा (पिता) के रूप में बिरसा मुंडा का संघर्ष आज भी हमारे जीवन को प्रेरित करता है। बिरसा मुंडा का नायक मनुष्य के मुक्ति संघर्ष का धवल प्रतीक है। 'धरती आबा' नाटक के तत्कालीन शासन और अंग्रेजों द्वारा बिरसा के संदर्भ में फैलाई तथा सरकारी अभिलेखों में दर्ज की गई रूढ़ियों से परे जाकर भी बहुत कुछ रचने का प्रयास किया गया है। यह नाटक बिरसा मुंडा के क्रांतिकारी संघर्ष और अंग्रेजों के जुल्मों के माध्यमों से एक युग बोध को याद कराता है। करमी बिरसा की माँ है, पर वह धरती का प्रतीक बन जाती है। प्रचलित कथाओं के अनुसार बिरसा ने स्वयं को भगवान घोषित किया और मुडाओं के बीच समातमूलक नए धर्म की स्थापना भी की, उन्होंने अपने आंदोलन को उलगुलाम नाम दिया। उनके इस आंदोलन ने अंग्रेजों की प्रभुता को चुनौती दी तथा गैर-बराबरी पर आधारित तत्कालीन समाज व्यवस्था, न्याय व्यवस्था और सरकार की जड़े हिला दी। इस लड़ाई में मिली पराजय और जेल में बिरसा की मौत के बाद भी उनके आंदोलन उलगुलाम की आग सुलगती रही, जिसने बाद में स्वतंत्रता संग्राम को नई शक्ति दी। बिरसा के बहाने एक गुजरे हुए कालखंड और जन जातीय समाज की मुक्ति की लालसा भी आलोच्य नाटक की रंग मंचीय प्रस्तुति का लक्ष्य है।

5.33 यहीं कहीं बहुत दूर (मोहन महर्षि) 2010

नाटक में बहुत तीव्रता से बदलते हुए आज के सामाजिक परिवेश में संबंधों के एकदम चौंकाने वाले आयो में उभर कर सामने आये है। समलैंगिकता इसी प्रकार का विषय है जिसे हम चारों ओर देखते है, अनुभव करते हैं, लेकिन सभी यहाँ तक कि बहुत से कलाकार बंधु भी इस विषय की पड़ताल से बचकर निकल जाते हैं सिमरन और वैजयंती की प्रेम कथा के आधार पर इस नाटक में नाटककार ने व्यक्त किया है कि सामाजिक व्यवस्था प्रकृति के नियमापर भी आधारित होती है। जब सामाजिक व्यवस्था प्रकृति की मर्यादा के विरुद्ध होने लगती है। तब अमानवीय व्यवहार शुरू हो जाता है। इस नाटक की रंग योजना थोड़ी जटिल और परंपरा से भिन्न है। इस दृष्टि से यह नाटक विसंगत परंपरा की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस नाटक का रंग शिल्प नयापन लिये हुए है। मनःस्थिति और परिस्थिति के अनुसार निरंतर परिवर्तित होती प्रकाशन व्यवस्था भी मंच को प्रभावित करती है। अभिनय पक्ष की अपेक्षा संवाद पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। मंच पर वातावरण की संजीवता के लिए मंचीय उपकरणों का प्रचुर आयोग भी आवश्यक रहा है।

5.34 अगिन तिरिया: (रवीन्द्र भारती) 2011

नाटक 'अगिन तिरिया' रवीन्द्र भारती के नाट्य व्यवहार की संरचना में विविध दृश्यों के अन्दर संघर्ष के बीच प्रस्फुटित है, इसमें फल- फूल रहा है संघर्ष, आकांक्षा, लोक-परम्परा और वर्जित दलित समाज की वेदना में रचता- बसता जीवन्त समाज। नाटक को तीन अंकों और बीस दृश्यों में खोलने का विधान नाटककार ने प्रस्तावित किया है। 21वीं सदी के बहुजन समाज की हत्या की संस्कृति पर पलती और पालती विश्व की वर्तमान सत्ताओं के विरुद्ध चल रहे लोकतन्त्र के संघर्ष की अमर गाथाओं का प्रयोग जीवन्त हो जाता है। प्रेम की हत्या करने वाली व्यवस्था आतंक के दम पर ही चलती है। आबादी के बीच लोकतन्त्र जीवित होने के सहज अधिकार को सांकेतिक बिम्बामें प्रस्तुत किया है। एक वर्ग तानाशाह, पाखंडी, शोषक हत्यारों का जिसमें बहुजन का हिस्सा, उसकी ऊर्जा, उसके धन, उसकी सम्पत्ति, ज्ञान

और आलोक पर कब्जा कर रखा है। आलोक से जगमगाती उनकी आबादी क्रूर है, हिसंक है उनकी व्यवस्था की बलिदेवी पर मनुष्यता के मायने स्वाहा हैं। दूसरा वर्ग उनकी वर्जित सन्तानों का है जो उनकी जूठन, उनकी खैरात, उनकी गुलामी में पलता हुआ उनको ही हड़पने की जुगत में रहता है। यह आबादी पंचम सुर में कूकने वाली एक निरीह कोयल की कूक को भी एक चुनौती मानता है। उसका गला मरोड़ने में भी तनिक संकोच नहीं करता एक कोयल की हत्या कर वह भ्रम पालता है कि उसे चुनौती देने वाली खारी आवाजों का गला घोट दिया। निरर्थक औछी हिंसा में उलझा यह समाज अपने व्यवहार में हास्यास्पद है। मर्यादा की दुहाई देने वाला यह कुलांगार समाज प्रति हिंसक है, इस समान ने अग्नि के ताप, आलोक, दृष्टि, शक्ति, पथ, साहस और सम्भावनाओं पर पावनता का कथित बहाना बनाकर कब्जा कर धर्म और आतंक की सत्ता लागू कर रखी है। परन्तु नाटक के अन्त में जब पुरोहित के मंत्रोच्चार के साथ अग्नि माँ का आह्वान होता है तो वह संन्यासी पुरोहित के हाथों से अग्नि को छीनकर नेपथ्य में भाग जाती है अग्नि को गांवों में बाँट देती है संन्यासी पीछे भागते है और जल रहे आलोक को बुझाते-बुझाते हताश हो जाते है। जिससे पुरोहित समाज मलिनता महसूस करता है यह नाटक अपने आप में प्रासंगिकता, व्यापक विषयवस्तु बिम्ब योजना, दृश्य विधान समाए हुए है। जो निर्देशकों के लिए चुनौती भरा निमंत्रण है यह नाटक रंगमंच के नवीन मुहावरे गढ़ने की गुजाईंश रखता है।

5.35 अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो (विभारानी) 2012

21वीं शताब्दी में नाटक कारों ने प्राचीन परंपरागत पद्धतियों के भीतर से नवीन विचार धारणाओं से संपन्न नाट्य बोध को वर्तमान नाटकों के रूप में उभारा है। नाटककार ने नाटक के माध्यम से केन्द्रिय पात्रों को आम-आदमी से जोड़ा है परन्तु आम-आदमी जब नाटक देखे गए दृश्य को अपने ऊपर ही अपनाता है तो हृदय झकझोर उठता है। नाटक में आदमी और स्त्री के संबंधों को उठाया गया है। स्त्री समाज एक ऐसा समाज है जो वर्ग, नस्ल, राष्ट्र आदि संकुचित सीमाओं के पार जाता है, और जहां दमन

है चाहे जिस वर्ग, जिस नस्ल की स्त्री त्रस्त है - वह उसे अपने परचम के नीचे लेता है ठीक इस प्रकार इस रचनाकार ने स्त्री की व्यथा कथा को इस प्रकार उकेरा है कि कथा के अंत में वह अपना ही दमन कर लेती है खुद को ही मिटा देती है आरम्भ में मंच पर तोता-मैना के वेश में सूत्रधार और नटी आते है ऐसा लगता है, जैसे दोनों के बीच कोई आपसी संबंध नहीं है फिर आपसी नोक-झोंक वार्तालाप होता है इसी बीच गायन मंडली द्वारा गीतगायन होता है। जिसमें बेटी के वर खोजने के संवाद रचे गए है। आगे चलकर राजकुमार चंपा को अपनाना चाहता है जो रिश्ते में उसका भाई लगता है वह चंपा को पाने की इच्छा से तरह-तरह की कामुक मुद्राएँ बनाता है। बीच में इस रचना को नाटकीय रूप देने के लिए और कई पात्र आते है इशिता, सुजीत, समीर, एनी इन पात्रों द्वारा कहानी को और एक नया रूप प्रदान किया जाता है। कहानी के अंतर्गत भाई-बहन के गलत संबंधों को उठाया है एक भाई अपनी बहन को ही अपनी दुल्हन का नाम देता है इसमें उनके पिता भी शामिल होते है नाटक के वास्तविक पात्र राजकुमार और राजकुमारी (चंपा कली) है जिसे वह भोगना चाहता है। नाटक की सारी विषय वस्तु से स्पष्ट होता है कि नारी को सिर्फ भोग की वस्तु कहा है। जिसमें रिश्ते- नाते भी अधर्म की बलि चढ़ जाते नाटककार ने बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है नारी की विडम्बनाओं के विषय में "शायद ही ऐसी प्रस्तुति देखने को मिलती है।

5.36 हद हो गई यारा(नरेन्द्र मोहन)

हद हो गई यारा नाटक नरेन्द्र मोहन जी की रचना है। यह एक फैंटसी है, फार्स है, कॉमेडी है या कोई अन्य व्यंग्य मिश्रित नाट्य रूप (जैसा कि इसके वाचन के अवसरों पर या प्रस्तुति के बाद बातचीत में भाग लेते हुए लेखकों रंगकर्मियों ने कहा) यह एक ऐसी नाट्यकथा भी हो सकती है, जो अपनी सादगी निर्देशक को, दूसरी तरह के दर्शक को, तीसरी तरह के यह भी संभव है कि यह संकेत धार्मिकता कई तरह की व्याख्याओं के लिए, एक मेटॉफर-सा बन गया और व्याख्याएँ तक वैवलथ पर आ खड़ी हो

नाट्य या नाटक के खेले जाने का यह वह जादू है, जो सिर चढ़कर बोलता है। नाटक में संवेदना शिल्प दोनों स्तर पर अपने आदि बिन्दु से आज तक के अनेक पड़ावों को पार करते हुए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में उत्पन्न विद्रूपताओं , असंगत मानवीय संबंधों की कशमकश, वैज्ञानिक-औद्योगिक बुद्धिवादी युग की अभिशप्त यान्त्रिक जिन्दगी, असुरक्षित भी पूँजीवाद और सत्ता के प्रतिकूल भ्रष्ट नीति अर्थतन्त्र संक्रमित मूल्य-संघात, स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता को दर्शाया गया है युवा-मानस की द्वन्द्वमयी स्थिति आदि को रूपायित कर नाटक से जिन्दगी का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करवाने का प्रयत्न किया गया है। स्त्री पुरुष एक दूसरे के बीच प्रेम और यौन उत्कंठा आदि विषयों पर चर्चा हुई है नाटक के माध्यम से यह भी दिखाया गया है कि यदि प्रेम उस स्त्री या पुरुष तत्व से होता है। तो उम्र की ढलान पर प्रेम की आँच कम क्यों हो जाती है पुरुषों के बीच सच्चे प्रेम की आँच कम क्यों हो जाती है। पुरुषों के बीच सच्चे प्रेम के प्रति आग्रही होने जैसे (कुंदन और स्वामी) और ऐसे प्रेम की अनुपस्थिति में भी शरीर की माँग के आगे स्वेच्छा से टूटने की विवश विभाजित नारी (सुन्दरी और कामिनी) का चित्र खींचते ही बनता है।

5.37 आज की पुकार (डॉ॰ मधु धवन) 2013

'आज की पुकार' नाटक 21वीं शताब्दी अपनी अनेक असाधारण विशेषताओं की गुणवता लिए हुए है। विज्ञान की अभूतपूर्ण प्रगति, औद्योगिक और प्राविधिक यंत्रों की चकाचौंध कर देने वाले विकास मानव संसार के उपयोगी साधन - हम सब बखूबी इससे परिचित है और खूब फायदा उठा रहे हैं। अकसर जो चीज समक्ष नहीं होती, विगत अवधि में सामने नहीं आती वह ही परिवर्तन की स्वचालित गति की स्वायतता, जो अपने अन्तर निहित नियमों द्वारा परिचलित नहीं होती। मानव उसका संचालक अवश्य है किन्तु एक हद तक घटनाएँ घटती है इसलिए नहीं कि मानव उसे चाहता है, अपितु वे अपने होने की परवश्ता में आबद्ध है। आज समाज एकाएक पतन की ओर रूख किये है। क्योंकि परिवर्तित हो गया है।

आज देश की सीमाएँ इतनी अधिक संवेदनशील, असन्तोष जनक, ध्वंसकारी हैं कि हिंसा, आतंक, शोषण-उत्पीड़न, ड्रग-सेवन, सामूहिक बलात्कार, अपहरण, खून-खराबा आदि वैश्विक समस्याएं बनी हुई है। ऐसे विषाक्त वातावरण में आचरण की निर्मलता पर बल देना किसी मन्दिर, मठ, गिरिजाघर के उपदेशों जैसा लगता है। इस नाटक में "शासन और सत्ता के अनमाने व्यवहार से देश के पथ भ्रष्ट होने का संकेत मिलता है, सामाजिक की विवशता भीतर से हाहाकार की पुकार कर रही है। यह भी समक्ष उभर कर आ रहा है कि आज की पीढ़ी सजग है। प्रश्न जो उठाया गया है वह आचरण की निर्मलता का है। परिवर्तन की दिशा उसकी वास्तविक चाह और नीयत की अम्लानता का है। हमारी पीढ़ी की भ्रष्टाचारी नीति रावण से लड़ना है।

5.38 अपहरण (प्रो° कृष्ण नन्दन) 2013

अपहरण नाटक में वर्तमान अपहरण की समस्या पर प्रकाश डाला है। इस नाटक की कथावस्तु को पंद्रह दृश्य में विभक्त किया गया है। अपहरण में राजनेता की सक्रियता दिखायी जाती है। जो एक यथार्थ है। अपहरण आज के समाज में राजनेताओं के अनैतिक चरित्र के कारण एक व्यवसाय सा बन गया है। इसमें पुरुष और स्त्रियाँ भी शामिल हो रही है। धन के प्रति लिप्सा और नैतिक पतन ही इसके प्रमुख कारण है। इस नाटक में व्याप्त अपहरण की घटना का जिक्र है। नाटक में मुख्य मंत्री एवं उसके सचिव को मुख्य अभियुक्त और पात्र बनाया गया है जो काल्पनिक है क्योंकि अभी ऐसा कोई मुख्यमंत्री या सचिव अपहरण का दोषी पाया नहीं गया है। साहित्य में यथार्थ और कल्पना का मिश्रण होता है। शुद्ध यथार्थ ही इतिहास बनता है। इस नाटक में जो कथा दी गयी है, वह यथार्थ और कल्पना का मिश्रण है। आज के नैतिक और चारित्रिक ह्नास के काल में देश में ऐसे मुख्यमंत्री भी हुए हैं, जिन्होंने अपहरण जैसे घिनौने कार्य में अपना प्रच्छन्न सहयोग किया है। हमारे देश के मंत्री एवं उनके कर्मचारी पूरी तरह भ्रष्ट हो चुके है। केवल उंगलियों पर ही गिनने लायक अपवाद है अपहरण की घटनाएँ आये दिन होती रहती हैं।

अपहरणकर्ता अपहृत व्यक्ति की हत्या भी कर रहे हैं। इन सारी घटनाओं के लिए राज्य और देश की केन्द्रीय सरकार पूर्णतः जिम्मेवार हैं। शासन भय से होता है। भय नाम की चीज समाज में बिल्कुल नहीं है। अपराधी निरंकुश हो चुके हैं। कानून में ऐसे अपराधियों के लिए कठोर सजा का प्रावधान नहीं किया गया है, जिससे कि कोई भी अपहरण करने की कल्पना तक न कर सके। यदि अपहरणकर्ता को कठोर दण्ड दिया जाये और न्यायालय इसमें सहयोग करें तो यह देश व्यापी समस्या का निदान हो सकता है।

5.39 भ्रष्टाचार (नरेन्द्र पाल) 2014

सृष्टि में संसार है, समाज है, सम्प्रदाय है, संस्थाएँ हैं, हां और है सरकार। पर व्यक्ति पैदा परिवार में ही होता है। वह कई बार सोचता है कि मुझे इन माता-पिता ने ही क्यों पैदा किया। माता-पिता को भी नहीं पता होता कि वह उनके यहाँ ही पैदा होना था। अगर माता-पिता की जोड़ी भिन्न होती तो व्यक्ति पैदा नहीं होता। और ऐसी भिन्नता होने की संभावनाएँ भी अपार क्या लगभग असीमित है। अतः कोई भी व्यक्ति यहाँ जरूरी नहीं है। राम अवतार, जो कि कॉलेज में समाज शास्त्र के प्राध्यापक थे। अपने बेटे को व्यक्ति, परिवार, समाज व संसार के बारे में समझा रहे थे। उसके बेटे का नाम था रामवण। वह घर के पास ही डी° पी° एस° स्कूल में पढ़ रहा था। रामअवतार बेटे को आर° ए° एस° इंजीनियर था डॉक्टर बनाना चाहते थे लेकिन उनकी वाक्पटुता ने अनजाने में ही बेटे में वकील बनने का अहंकार भर दिया। वह भी राजनीति में सत्ता की लड़ाई लड़ने वाला। रामअवतार की पत्नी का नाम वीणा है। जो घर-परिवार को अच्छे ढंग से चला रही थी। वीणा के माता-पिता की दुर्घटना में मौत हो गई थी। और उसके भाइयों के अपने परिवार थे। वे बड़े ही धनी व्यक्ति थे। रामवण उन्हें देखकर उनकी शान-ए-सोकत देखकर कुछ समय के लिए खुद भी उनकी धनी प्रवृत्ति के नशे में डूब जाता था। रामवण के मन-मस्तिष्क को केवल दो ही धाराएं बह रही होती थी कि एक पढ़ाई दूसरी पैसा पिता की लाचारी माँ की झुंझलाहट उसे झकझोर देती थी। रामबाण के मामा की बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ उसके घर आने पर घर का सन्तुलन बिगड़ जाता था।

रामबाण रिश्ते बदलते देख रहा था। समाज में पैसे की अहमियत बढ़ती जा रही थी आदमी की हैसियत उसी से तय होती थी। अब तो वह पढ़ाई भी पैसा कमाने के लिए ही करने लगा था रामवाण की बेबसी व रिश्तेदारों की बेकसी देख उसके सबकॉन्शीयस क्या कन्शीयस माईड में भी पैसे के प्रति विभिन्न विरोधाभाषी विचार भरने लगे पैसे की लम्बी कमी ने उसके दिमाग में पैसे के प्रति घृणा आक्रोश, गुस्सा, फिर भय में बदल कर कब इसे ईमानदार कर गया यह उसे पता ही नहीं चला घुमा-फिराकर सभी का सार एक ही था। पॉवर प्ले, सत्ता संघर्ष। फिर वह चाहे पैसे के रूप में था, या क्राइम के रूप में था, स्पर्धा के रूप में या फिर राजनैतिक खिंचतान के रूप में।

निष्कर्ष:

समाज और नाटक का संबंध गहरा होता है समाज की कोई भी घटना नाटक कारों से छिपी नहीं रह सकती। वह समाज के हर अच्छाई व बुराई को अपने नाटक के माध्यम से दिखाता है। जो उनके सम्पूर्ण जीवन में कभी पूर्ण नहीं हो पाई। नाटक जीवन की इन्हीं अपूर्णताओं को पूरा करता है नाटक फैशनेबल चीज नहीं है, यह सच्चाई से उभरता है। उसका असर नाटकों में दिखाई देता है। गिरते हुए मानवीय मूल्यों की रक्षा नाटककार ही हैं। नाटककार देश, काल और सीमा से ऊपर उठकर सार्वभौम समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। नाटक में मानव जीवन की अपूर्ण इच्छाओं का जो वास्तविक जीवन में पूर्ण नहीं हुई उनका भी वर्णन रहता है। जीवन की अपूर्णताओं को नाटककार अपने नाटक के माध्यम से पूर्ण करता है। राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक मूल्य के विघटन का चित्रण नाटकों में स्पष्ट दिखाई देता है। नाटक जीवन के कटु सत्य का चित्रण बखूबी करते हैं। आज के नाटकों में जीवन संदर्भ सामयिक परिवेश से सीधे लिये गये हैं, जिनमें पारिवारिक रिश्ते-नातों में बिखराव एवं टूटते मानवीय संबंधों की व्याख्या, व्यक्ति चेतना या स्वातंत्र्य बोध के रूप में अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय जीवन का जो परिवर्तित स्थितियों का जो व्यापक और प्रभावशाली रूप हमारे सामने आया है, वह भारतीय जीवन में विघटन के

रूप में परिलक्षित है। नाटककार राजनीतिक व आर्थिक असंगतिया, स्त्री-पुरुष संबंधों , मानवीय संबंधों , मूल्य संक्रमण, पारिवारिक विघटन, आंतरिक विरोधा, छल-फरेबॉन आदि को लेकर नए क्षितिज की खोज में संलग्न हैं। इनमें कोई शक नहीं है कि नाटक हमारी जटायु वृत्ति को जगाना है, जगाना ही हमारे अस्तित्व की निशानी है और संघर्ष करना मनुष्य वृत्ति। रंग निर्देशक रोबिन दास के मत में "अगले दस पंद्रह साल में मशीनीकरण का अधिक्य होने पर दर्शक इंसानी रिश्ता बनाने वाले जीवंत माध्यम रंगमंच की तरफ लौटेगा।

संदर्भ

[1]. नेमिचन्द्र जैन, तीसरा पाठ–चार दशक की प्रस्तुतियाँ, पृ° 78

[2]. द्दष्टव्य, जनसत्ता: 5 नवम्बर, 2000

[3]. दशरथ ओझा, हिंदी नाटक उद्भव और विकास, पृ° 28

[4]. महेन्द्र शर्मा सूर्य, नया सवेरा, पृ° 7–8

[5]. नैमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ° 19–20

[6]. ललित सिंह पोखरिया, दिल्ली-6, पृ° 85

[7]. सुशील कुमार सिंह, अलख आजादी की, पृ° 26–27

[8]. शशि किरण, कॉफी होम, पृ°

[9]. नादिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ° 18–19

[10]. नटरंग, अंक 86–87, पृ° 62, जुलाई–दिसम्बर–2010

[11]. ह्रषीकेश सुलभ, अमली, पृ° 72

[12]. नेमिचन्द्र जैनः रंगदर्शन, पृ° 21

[13]. रवीन्द्र भारतीय जनवास, पृ° 20–21

[14]. ह्रषीकेश सुलभ, धरती आबा, पृ° 35

[15]. लक्ष्मी नारायणलाल: आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ° 64

[16]. सम्मिलित होना

[17]. शशिकिरण, कॉफी होम, पृ° 15–16

[18]. महेन्द्र शर्मा सूर्य, नया सवेरा, पृ° 44

[19]. सरिता वाशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 40

[20]. प्रभाकर श्रोत्रियः 'फिरसे जहाँपनाह' पृ° 207–208

[21]. भ्राकर श्रोत्रियः 'फिर से जहाँपनाह' पृ° 203

[22]. किशोर कुमार सिन्हा, 'धारा एक सौ चवालीस', पृ° 82

[23]. शशिकिरण, कॉफी होम, पृ° 45–46

[24]. किशोर कुमार सिन्हा, धारा एक सौ चवालीस, पृ° 16–17

[25]. स्वदेश दीपक, 'जलता हुआ रथ', पृ° 28

[26]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 44

[27]. डॉ° सरिता वाशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 174

[28]. किशोर कुमार सिन्हा, धारा एक सौ चवालीस, पृ° 83–84

[29]. प्रभाकर श्रोत्रिय, फिर से जहांपनाह, पृ° 186

[30]. नर –द्रपाल, भ्रष्टाचार, पृ° 19

सष्ठ्म अध्याय

21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का बदलता स्वरूप

6.1 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का सामाजिक स्वरूप

इक्कीसवीं शताब्दी के पंद्रह साल गुजर गए। परिस्थितियाँ बदल रही हैं, विश्व स्तर पर 2020 या उसके बाद के भारत की स्थितियाकी तरफ देखने का नजरियाँ बदल रहा है। यह परिवर्तन उद्योग और आर्थिक दृष्टियों से हो रहा है वैसे ही सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक स्थितियो में होगा और इसका असर साहित्यिक दृष्टियों पर भी पड़ेगा। भारतीय व्यक्ति जैसे-जैसे बदल रहा है। वैसे-वैसे उसकी भाषा भी बदल रही है। विविध कार्यों से एक आदमी कई गावा, शहरों और देशों में पहुंच रहा है। ऐसी स्थिति में साहित्य भी बदले आश्चर्य नहीं लगेगा परिवर्तन जीवंतता का प्रतीक है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में परिवर्तन की अपेक्षा का प्रतीक है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में परिवर्तन की अपेक्षा से सहित विचारों का लेखन लेखक करता है पर कथन करने की उसकी तकनीक निराली होती है; अद्भुत होती है। भूतकाल और वर्तमान काल को देखते हुए सत्य घटनाओं का लेखांकन साहित्य में किया गया है और उसमें मनुष्य जीवन की पेचीदगियाँ पीड़ा, संघर्ष, शोषण का वास्तव वर्णन होता है।

6.1.1 बदलता कथानक

समाज के भविष्य का निर्माण युवा पीढ़ी करती है। समाज की दशा व दिशा इसी पीढ़ी पर टिकी होती है, क्योंकि यदि युवा पीढ़ी पथभ्रष्ट हो जाए तो पूरे समाज में सैकड़ों बुराइयाँ उत्पन्न हो जाएगी और यदि इस पीढ़ी की ऊर्जा सही दिशा में लग जाए तो समाज में देखने को मिल रहे हैं। वर्तमान समाज में व्यक्ति प्राचीन परम्पराओं को रूढ़ि ग्रस्त बोझ मानकर उतार फेंकना चाहता है। आज का व्यक्ति जन परंपराओं

से विमुख होता जा रहा है। 21वीं शताब्दी के नाटकों में समाज को लेकर चलने वाले अनेक पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किये है। इन नाटक कारों ने प्रमुख रूप से समाज में हो रहें आम- आदमी के शोषण एवं उसमें आई जागरूकता, अतृप्त आकांक्षाओं को लेकर जीते आज के इंसान का रूप भ्रष्ट आचरण करने वाले युवक, आधुनिक शिक्षित एवं आदर्शवादी युवक, युवा पीढ़ी की दहेज के प्रति जागरूकता विवाह के प्रति विविध दृष्टिकोण, दांपत्य संबंधों में आए मन-मुटाव, नारी के विभिन्न रूप आदि अनेक परिस्थितियों पर अपनी दृष्टि रखकर इन स्थितियों का यथासंभव आंकलन किया है। इस विषय में डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का मानना है कि "वास्तव में भ्रष्टाचार, युद्ध से ग्रस्त समाज और यथावत जीवन से वे ऊब चुके हैं, परन्तु वर्तमान व्यवस्था को जब वे बदल नहीं पाते तो उससे दूर भागते है। वास्तव में य ह वह पद्धति है जिसमें परम्परागत नैतिक मूल्य है। युवा पीढ़ी के समक्ष वर्तमान समाज मुस्लिम के रूप में है। उसने उसकी दी हुई व्यवस्थाओं पद्धतिया रीति-रिवाजों सुख-सुविधाओं, अवकाश के क्षण और समृद्धि को कठघरे में लाकर खड़ा कर दिया है।"1 वर्तमान जीवन में व्यक्तिवादी चेतना के अन्तर गत अस्तित्व बोध अनेक स्तरों पर उभर कर सामने आया है।

6.1.2 कुण्ठा और घुटन

कुण्ठा मानव मन की ऐसी वृत्ति है। जिसके कारण व्यक्ति कभी भी अपना भला नहीं कर सकता। कुण्ठा के वशीभूत होकर मनुष्य गलत कार्य कर बैठता है। जब तक व्यक्ति कुंठित रहता है वह अच्छे बुरे निर्णय करने की शक्ति खो बैठता है और बुरे कर्मों की ओर प्रवृत्त हो जाता है। जीवन में निराशा ही कुंठा का कारण बनती है कुण्ठित व्यक्ति घुट-घुटकर जीवन जीने को विवश हो जाता है। जैसे 'रूदाली' नाटक में चित्रित हुआ है सनीचरी निराशा भरे भाव से कहती है। "सनचरी: अरे भवानी रोने का बखत कहाँ मिला। एक-एक करके सब गुजर गये। सास, ससुर, जेठ जेठानी, हमरा आदमी और हमरा बेटवा। हमरा आँख से एको बूँद आँसू भी नहीं गिरा। सबको खाने के लिए जइसे हमारा जनम हुआ है। सब हमको डाइन

कहते है।" परन्तु बिखनी सनीचरी को कहती है - "कउन हरामी का बच्चा तू को डाइन कहता है ? ऊ का मुँह नोच लगे। तू चिंता मत कर सनीचरी सब ठीक हो जाएगा। दफ्तर से खाद लाय के हम फिर से सब्जी लगावगे और बाजार जाये के खुद बचगे। निराशा वह स्थिति होती है जब व्यक्ति को कोई आशा दिखाई नहीं देती वह यह सोचने पर मजबूर हो जाता है कि वह क्या करें तथा कहाँ जाये। 21वीं शताब्दी के नाटक रूदाली में वह निराशा, कुण्ठा प्रत्यक्ष रूप में चित्रित की गई है सनीचरी अपनी दुनिया के बारे में बताती हुई कहती है कि सब परिवार वाले एक-एक करके चले गए। एक पोता था। वो भी लड़-झगड़कर चला गया। बिखनी कहती है कि ये करम का दोष है और सनीचरी कहती है कि तू अपनी सुना। निराशा भरी जिन्दगी से हारी हुई, कुण्ठा से त्रस्त बिखनी बताती है "बिखनी: अरे अपनी का सुनाएँ - हमरा हाल भी तेरे ही जैसा। एक ही बेटा हमरा - कितनी मन्नत के बाद पैदा हुआ। बेटा गोद में रहा तभी आदमी को गेहुँअन साँप खा लिया। ऊ का बाद दूसरे का बछिया पाल के चार-चार ठो अपना गाय किया, दु ठो दुधारू बकरी किया। लड़का को पाला-पोसा, ऊ का शादी किया। बिखनी बताती है कि मेरे पास समधी का पैसा था जिससे मेंने बियाह के समय सारे गाँव को दही चूरा खिलाया था परन्तु भाग फूटने के कारण मेरा लड़का घर जवाई बन कर बैठ गया। 21वीं शताब्दी में इन परिस्थितियों से जुझती हुई सनीचरी और बिखनी अपनी व्यथा को सुनाती है जिससे प्रत्यक्ष रूप से कुण्ठा छलकती है।

6.1.3 तनाव व अन्तर द्वन्द्व

वर्तमान की परिस्थितियों ने मनुष्य को तनाव व अन्त द्वन्द्व ग्रस्त बना दिया है। तनाव व अन्त द्वन्द्व के होते हुए व्यक्ति कोई निर्णय नहीं ले पाता 'राधाकृष्ण सहाय के नाटक 'अतः किम्' में परिस्थितियों के अनुसार मनोहर कहता है कि "जिंदगी कोई खूंटा नहीं है रत्ना और न आदमी कोई बैल, जब भी होश आए आदमी को संभल जाना चाहिए। मुझे क्या अधिकार है कि में ® अपने संस्कार अपने सिद्धांत के चलते तुम्हारी जिंदगी मोहिनी की जिंदगी के साथ खिलवाड़ करूँ?.....नहीं विरेन.....इसमें डरने की

क्या बात। बात तो साफ है कि जो तुम्हारा रास्ता है वही रास्ता आज के लिए ठीक रास्ता है। 21वीं शताब्दी के नाटक कारों ने यह मंचीत किया है कि आदमी परिस्थितियों वश अपने जीवन की नाव को ढोता रहता है, चाहे समय का बहाव उसे किसी भी दिशा में ले जाएं 'हृषीकेश सुलभ' के नाटक 'अमली' में तनाव और घुटन के बीच पात्र 'अमली' महादेव राय को कहती है कि "अमली; मालिक इतनी रात में आप हमरे अँगना में आए है, गाँव के लोग का कहगे? आप हियाँ से चले जाए सरकार। हमरी आबरू भी बिगड़ेगी और आपका मान-मरजाद भी लोग दस बात बोलोगे। महादेव राय; हमारे मान-मरजाद की फिकर छोड़ तू। एहि गाँव में कवनो ना जनमा है जो जीभ हिलाव। पहिले ई बता, तू कहिया से आबरू वाली हो गई ? एतनी भारी इज्जत कहिया से हो गई तुम्हारी ? बचना के साथ रास रचाती है, तो इज्जत आबरू का डर ना लगता है? अमली: मालिक हम गाड़ पर गिरते हैं। झूठ बात हमारे माथे पर थोप के हमरा धरम न बिगाड़िए। किसुनवा से अमली के बारे में पता कर महादेवराय रमेसरा की पत्नी अमली के पास चला जाता है परिस्थिति वश अमली जाने के लिए कहती है और अपने मान-मरजाद का वास्ता देती है परन्तु महादेव राय उसकी जवानी की बात करता है कि तुम्हारी ये जवानी कौड़ी के मोल भी न बिकेगी उसे अन्त में द्वन्द्व ग्रस्त करता है। वर्तमान समय की परिस्थितियों ने मनुष्य को तनाव ग्रस्त व अन्त द्वंद्व ग्रस्त बना देती है। उसके लिए किसी निर्णय पर पहुँचना बहुत मुश्किल हो जाता है। 'अधमुण्डा सिर चौथी टाँग' का पात्र रूप जातीय भावना के कारण आहत होता है। बचपन में अछूत होने का कारण पण्डित रूप और उसके पिता को मंदिर में प्रवेश नहीं करने देता और उसके खील-पतासे को कूड़ेदान में फक देता है। जब रूप को शीला मंदिर से लाया प्रसाद देती है तो रूप को बचपन की यह घटना स्मरण हो जाती है। तब वो शीला के दिए प्रसाद को कूड़ेदान में फेंकना चाहता है। परन्तु यह ऐसा नहीं करता। शरूप: (मनमाने ढंग से) जी आंटी (शीला चली जाती है। रूप रद्दी की टोकरी खींचकर उसमें प्रसाद फकने लगता है कि अंकल उसका हाथ पकड़ लेते हैं।) अंकल: ठहरो रुको क्या कर रहें हो ? रूप: (कठोर मुद्रा से) जो उस पुजारी ने किया था। अंकल: लेकिन इस घर में तुम्हें इज्जत से प्रवेश मिला है।

जरा सोचो..... बदले की भावना में ही कहीं तुम भी कठमुल्लेपन का शिकार नहीं हो रहे। अब आगे तुम्हारी मर्जी (अकल के जाने के बाद रूप हाथ में प्रसाद लिए दुविधा में खड़ा है) अन्त द्वन्द्व से घिरा वह प्रसाद को टोकरी में कई बार फेंकने को होता है कि फिर हाथ खींच लेता है इसी बीच नेप्थय से बिन्दु और रेखा की आवाजें आती है। वे अभी आई है और आंटी से प्रसाद रेखा आंटी से पूछती है कि रूप क्या कमरे में है। द्वन्द्वग्रस्त रूप दूसरे हाथ से ईंट उठाकर प्रसाद वाले हाथ पर मारने को होता है कि.....।

6.1.4 कामुकता

काम की भूख मनुष्य की समाज स्वाभाविक आवश्यकता है। परन्तु एक समय में मानव की एक वैश्विक वृत्ति बन जाती है। जैसा कि अपने वर्तमान जीवन में हम प्रायः देखते हैं कि कितने लोग अपनी कामुकता के कारण अपनी बहन-बेटी व रिश्तेदारों की लड़कियों को भी अपनी कामवासना का शिकार बना लेते हैं। अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो' नाटक में अंकिता का पिता व भाई दोनों मिलकर उसे अपनी कामुकता का शिकार बना लेते हैं। "पापा: अच्छी रही पार्टी ! है न ! दिस इज अ बिजनेस पार्टी। एक्चुअली इन्हीं पार्टीज में आपकी बिजनेस डीलिंग होती है, नए कलाएंट्स मिलते हैं, न्यू प्रोजेक्ट्स डिस्कस होते हैं.....जान-पहचान का दायरा बढ़ता है। इसी में मुर्गे फँसते हैं और मुर्गिया हलाल होती है (कहते-कहते उनकी नजर सोई हुई अंकिता पर पड़ती है) अच्छा..... ऐसा करो.....तुम जाकर सो जाओ.....मजरा अंकिता से बात करूँगा।"1 समीर कुछ संदेह भरी-निगाहासे पापा को देखते हुए अंदर चला जाता है। पापा अंकिता की तरफ बढ़ते हैं। मंच पर अंधेरा होता है। सिर्फ पापा के हाँफने की आवाज आती है। अँधेरे में ही मंच पर समीर का प्रवेश होता है हल्की पतली-सी रोशनी समीर पर पड़ती है। "समीर: पापा गए कहाँ ? अंकिता की भी कोई आवाज़ नहीं आ रही है। देखूँ तो जरा। (वह अंधेरे में ही टटोलकर मंच के भीतरी हिस्से की ओर बढ़ता है। उधर से पापा हड़बड़ाते हुए बाहर निकलते हैं। दोनों की नज़रमिलती है। पापा कुछ नहीं बोलते। जल्दी से अंदर चले जाते हैं) हूँ ! समझ में आ गया मामला

मम्मी के न होने पर फायदा पापा ने उठाया। जब उन्होनें फायदा उठाया ही है, तब समीर बच्चे, तू भी क्यानहीं इस बहती गंगा में हाथ धो लेता है? अरे, गंगा तो गंगा है.....एक टन कचरा डालो या दो टन.....क्या फर्क पड़ता है। समीर अंदर चला जाता है। मंच पर अंधेरा छा जाता है। पार्श्व से फिर वही गीत बजता है। 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो, दीजो न सारी बलाय हो। औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिए अनुकूल बनाया जाता है। पुरुष प्रधान समाज अवस्था से एक लड़की को स्त्रीत्व के गुणाको सिखाकर तथाकथित आदर्शनारी के रूप में ढालती रहती है। इस आदर्श में जो कोई व्यवहार करता है, उसे यह व्यवस्था भटकी हुई बिगड़ी हुई औरत-औरत नहीं रही, इस तरह कोसती है।

6.1.5 दोहरा व्यक्तित्त्व

21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों में यह प्रत्यक्ष रूप से मंचित किया गया है कि व्यक्ति की स्वार्थी प्रवृत्ति किसी व्यक्ति के जीवन को भी समाप्त कर सकती है या दूसरे के जीवन को समाप्त करवा सकती है। 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटक 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' में ' विभा रानी कहती है। समाज में इंसानियत त नाम की चीज नहीं रह गई है। क्या इंसान इतना बेरहम हो सकता है कि वह बाप और बेटी, भाई और बहन जैसे पवित्र रिश्तों में इतनी घिनौनी साजिश शामिल हो गई हैं कि वो तार-तार होकर बिखर रहे हैं। 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' नाटक में जब अंकिता के पापा और भाई समीर उससे घिनौना कांड कर बैठते है तो यह बात अंकिता के साथियों को पता चलती है इस पर इशिता अंकिता को अपने साथ अपने घर ले जाना चाहती है परन्तु पापा और समीर दोहरे व्यक्तित्व को बढ़ावा देते कहते हैं कि "पापा: कहाँ जा रही हो अंकिता ? इशिता: यह मेरे घर जा रही है। पापा: क्या? उसका अपना घर नहीं हैं क्या ? इशिता: घर प्रेम और विश्वास से बनता है, दीवार जैसे डेकोरेशन से नहीं, आपने इसके प्रेम और विश्वास की जिस बेरहमी से हत्या की है, उसके लिए में ® आप दोनों को छोड़ूँगी

नहीं । पापा: क्या बक रही हो तुम ? सुजीत: सही कह रही है ये। एनी ने हम सब कुछ बता दिया है। समीर: पापा, अब क्या होगा? इसे बाहर मत जाने दीजिए पापा, वरना हम लोग बचेंगे नहीं । इशिता: तुम लोग अब वैसे भी नहीं बचोगे समाज और इनसानियत के नाम पर कलंक हो तुम लोग। चलो सुजीत ! पापा: ए लड़की ! ज्यादा स्मार्ट बनने की कोशिश मत करो। कहाँ जाओगी ? कोर्ट में ? क्या हो जाएगा वहाँ जाने से ? न्याय मिल जाएगा ? (हँसता है) गवाही कौन देगा? वकील की उल्टी सीधी जिरहों का सामना कौन करेगा ? देखो, घर की बात घर में ही रहने दो। और उसमें भी ये मेरे घर का मामला है। तुम लोग कौन होते हो मेरे घरेलू मामलों में दखल देने वाले ? सुजीत: मामला तभी तक घरेलू रहता है। जब तक वहाँ सब कुछ बचा रहता है। चीजें उलट जाने के बाद, हालात बदल जाने के बाद मामला घरेलू नहीं रह जाता। "एंड माईडया' लेंग्वेज हम आपके मामले में दखल नहीं दे रह। हम अपनी दोस्त की जिंदगी सुलझाने की कोशिश कर रहें हैं। चलो इशिता ! चलो एनी ! पापा और समीर सभी को रोकने की कोशिश करते हैं। लेकिन सभी उन्हें धक्के देकर चले जाते है। अंकिता की माँ की अनुपस्थिति में वे घातक घटना घटती है इस पर उनके पति उन्हें धमकाते हैं इस स्वार्थीपन की बजाय में पारिवारिक विघटन हो जाता है। आपसी विश्वास, रिश्ते, इंसानियत, सब कुछ खत्म हो जाता है क्योंकि अगर व्यक्ति दोहरी प्रवृत्ति अपनाने लगता है तो जीवन में उसे बहुत बड़े-बड़े समझौते करने पड़ते है। जिसमें परिवार टूट जाते है, रिश्ते बिखर जाते हैं। 21वीं शताब्दी के नाटक कारों ने अपने नाटकों में समाज को स्पर्श करने वाली अनेक स्थितियों पर योग्य विचार प्रस्तुत करते हुए उसमें व्याप्त अराजकता, गलत आचरण, अच्छी-बुरी दशा, उन्नति-अवनति, पतन शोषण, दलितोत्थान आदि चित्र प्रस्तुत किए है। समाज में मनुष्य के एकाकीपन से उत्पन्न उदासीनता को साहित्य में मनोरम क्षणों में बदल देने की क्षमता रखता है। नाटककार का जीवन उसके अपने समाज को ही व्यतीत होता है, वही जीवन के अभावों से जुझता और भावों में आनंद प्राप्त करता है। सुख, दुखात्मक परिस्थितियों और घटनाओं से संघर्ष रत रहता है। और जीवन में ए क नई चेतना, नया उत्साह लाने का प्रयास करता है। आज व्यक्ति

अपने स्वार्थीपन के कारण आजीवन, घुटन, तनाव और अन्तर द्वन्द्व जैसी मनोव्याधियों से घिरा हुआ है। दाम्पत्य जीवन में दरार उत्पन्न हो रही है। मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व व कामुकता ने उसके चरित्र को गिरा दिया है। संयुक्त परिवार विघटित हो रहे हैं, विवाह मात्र एक समझौता बन कर रह गया है। प्रेम और यौन संबंधों ने खुलापन दिखाई देता है। जातीय संबंधों को समाप्त किया जा चुका है। दलितोत्थान के नाम पर दलितों को ठगा जा रहा है। शैक्षणिक स्तर पर शिक्षाप्रद व्यापार बन गई है। 21वीं शताब्दी में सामाजिक वृत्तियों ने नया रूप ले लिया है।

6.1.6 विघटित पारिवारिक परिदृष्य

भारतीय संस्कृति मूलतः सामाजिक और पारिवारिक संस्कृति है परिवार को एक महत्त्वपूर्ण संस्था माना जाता है। परिवार को किसी भी बालक के जीवन की प्रथम पाठशाला माना जाता है। आज परिवार के सभी सदस्य कमाते है और फिर भी महँगाई से त्रस्त है। पति-पत्नी के पास आपस में बातचीत करने का समय भी बड़ी मुश्किल से निकलता है। बच्चों की परवरिश करने के लिए नौकरों अर्थात आया की जरूरत पड़ती है। बड़े व अमीर बनने की चाह ने परिवार नामक संस्था में विघटन पैदा कर दिया है। आज पति-पत्नी दोनों ही अपना-अपना स्वतंत्र करियर बनाना चाहता है। परिवार का आधार विवाह है। आज बड़े-बड़े महानगरों में जो वर्ग प्रबंधन एवं तकनीकी शिक्षा प्राप्त है, विवाह नामक संस्था को निकाल कर लिव-इन-रिलेशनशिप को अपना रहा है। 21वीं शताब्दी में संयुक्त परिवार बहुत ही कम मात्रा में दिखाई देते है। एकल परिवारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। एकल परिवारों में भी टूटन है। भावनात्मक एकता की कमी है। वे सिर्फ उन रिश्तों को ढोना चाहते है जहाँ से उनके स्वार्थ पूरे होते हैं। बड़े-बड़े फिल्म स्टारों, उद्योगपतियों, व्यापारियों व अमीर लोगों के परिवार का जो आनंद होता है। उन्होंने पीकर नहीं देखा उन्हें बचपन से ही उद्योगपति बनने पर जोर दिया जाता है। मां का दूध शायद ही नसीब हुआ है। आज लोग रोजगार हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से नहीं हिचकिचाते। वे

संयुक्त परिवार को नकार कर अपने एकल परिवार को साथ ले जाते है। जहाँ वे स्वतंत्र जीवन जी सके। भारतीय संस्कृति में परिवार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। परन्तु आर्थिक चाह ने परिवार के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। सुशील कुमार सिंह के नाटक 'चार यारों के यार' में काम वासना तृप्ति हेतु 'बिन्दिया' अपनी शादी के बाद भी 'जीवन' से सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है। सुशील कुमार सिंह के नाटक 'चार यारो के यार' में बिन्दिया का विवाह मास्टर सीताराम से होता है परन्तु उन दोनों में आपसी संबंध नहीं बनते क्योंकि मास्टर सीताराम मर्दाना कमजोरियों की वजह से बीमार होने के कारण हर हफ्ते दिल्ली इलाज के लिए जाते थे इसी बीच मास्टर सीताराम के दोस्त जीवन को इस विषय के बारे में बिन्दिया बताती है और अपनी कामवासना की इच्छा हेतु जीवन से मिलना चाहती है। वह कहती है। "बिन्दिया (मुस्कुराती है) गलत कह रही हूँ क्या ! डाल रहे थे न डोरे मुझ पर?.....अब शर्माते क्यों हो देवर जी? कहाँ गयी सारी शेखी ? (खिलखिला कर हँस पड़ती है। जीवन ठगा-सा खड़ा रहता है।) कुछ गलत तो नहीं कर रहे थे जीवन बाबू.....जग की रीत ही तो निभा रहें थे..... मुझे कोई एतराज नहीं आगे बढ़ो और कस लो मुझे अपनी बाँहों में..... तुम्हँ जरूरत है एक औरत की और मुझे जरूरत है एक मरद की.....आओ, पाल अपनी- अपनी सार्थकता..... (बिन्दिया आगे बढ़कर उसके कंधों पर हाथ रख देती है। प्रकाश सिमटने लगता है) (फुसफुसाया) समय की गति तेज है, इससे पहले कि वह सरक जाये.....भरपूर उपयोग कर लो..... (जीवन अपने कांपते हाथ उसकी कमर के इर्दगिर्द रखता है प्रकाश उन दोनों पर।) जीवन: लेकिन भाई साहब ? बिन्दिया: परसों सुबह आयेंगे..... इलाज कराने गये है..... (हँसती है) मुझे बीमार छोड़कर.....(हँसती है) मेरा इलाज कौन करेगा.....? (हँसती है) तुम करोगे राजा....तुम.....? (हँसती है) (जीवन उत्तेजित होकर उसे अपनी बाँहों में कस लेता है। बिन्दिया सीत्कार कर उठती है।) बिन्दिया: (सरसराते हुए कस लो.....जितना चाहो उतना कस लो... ... एक एक नस चटका दो.....सारी हड्डियों तोड़ दो) आह.... आह.....जालिम.....मेरी जान ले लो.....ले लो जान....आह....."1

6.1.7 बिखरते सम्बन्ध

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली बरसो से चली आ रही है। जिसमें परिवार के सभी सदस्य एक साथ मिलकर एक ही घर में , प्रेम सौहार्द और शांति से एक साथ एक छत के नीचे रहते है। घर में सबसे बड़ी उम्र का व्यक्ति घर का मुखिया होता था जिसकी कहीं हुई बातों को कोई नहीं नकारता था लेकिन आज समय बदल चुका है। आज का मनुष्य अपने ऊपर किसी प्रकार कोई बंधन स्वीकार नहीं करना चाहता। इसलिए माता-पिता, बहन-भाई, की नसीहतों अपनी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाती है। परिवार किसी भी समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई होते है। परिवार सामाजिक जीवन का मूलाधार होता है। परिवार में व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा समस्त सामाजिक संबंधों का विकास होता है। सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य अपने परिवार के साथ जुड़ा हुआ है। क्योंकि अकेले मानव जीवन की कल्पना ही मुश्किल है। मनुष्य संसार में कितना ही भ्रमण क्यों न कर ले लेकिन उसे मानसिक संतुष्टि घर में ही आकर मिलती है। भारतीय संस्कृति में परिवार का अत्यधिक महत्व है। प्राचीन काल से ही हमारे देश में संयुक्त परिवारों का प्रचलन रहा है। समय परिवर्तन के साथ-साथ उसके स्वरूप में भी परिवर्तन आ गया है। समाज में संयुक्त परिवार की संस्था घट रही है। एकल परिवार तीव्र गति से बढ़ रहे हैं। वर्तमान समय में हमारे जीवन मूल्य इस कदर विघटित होते जा रहें है कि परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने बारे में सोचता है। परिवार में रहने वाले अन्य सदस्य उसे अपनी तरक्की में बाधा नजर आते है। इसी कारण उनके मन में ए क-दूसरे के प्रति खीझ ओर आक्रोश उत्पन्न हो जाता है और यही आक्रोश धीरे-धीरे उनके संयुक्त परिवार को तोड़ने में सक्षम हो जाता है क्योंकि ऐसी स्थिति में हर सदस्य दूसरे का अविश्वसनीयता और शक की निगाह से देखता है जिससे आपस में अनायास ही असहयोग, संदेह, कटुता, अलगाव पैदा हो जाता है। और परिवार के कई टुकड़े हो जाते हैं, टूटते परिवारों पर चिंता व्यक्त करते हुए डॉ॰ विरेन्द्र सिंह यादव लिखते हैं कि "औद्योगिक अर्थ व्यवस्था के विकास के कारण समाज का पूरा आर्थिक ढांचा बदल गया है, साथ ही दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित नवयुवक वैयक्तिक स्वार्थ को प्रमुखता

देने लगे है। आज संयुक्त परिवार एकल परिवार में और एकल परिवार में भी स्त्री-पुरुष में विघटन होना निश्चित एवं अनिवार्य हो गया है। अंत में परिवार के आधार स्तंभ वृद्ध आज आधुनिक समाज में उपेक्षा का शिकार हो रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता प्रभाव पारिवारिक संबंधों पर परोक्ष रूप से नकारात्मक असर डाल रहा है। जिसका चित्रण 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों ने रंगमंच पर दर्शाया है।

6.1.8 वैवाहिक चेतना

वर्तमान शताब्दी में विवाह संस्था जो कि परिवार की है। वर्तमान कालीन व्यक्ति को गृहस्थ जीवन से वितृष्णा हो गई है, इसलिए उसकी विवाह में आस्था नहीं वरन् अनास्था बढ़ गई है, जबकि भारतीय समाज में यदि परिवार एक सबसे छोटी और महत्त्वपूर्ण इकाई है तो इसका अस्तित्व विवाह द्वारा मनुष्य जाति की बिरादरी बन। प्रजनन द्वारा मनुष्य जाति की बिरादरी बन। यदि प्रजनन न हो तब संपूर्ण मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे में पहुँच जाता है। जीवन साथी अथवा पति या पत्नी को प्राप्त करने के लिए के प्रत्येक समाज में कुछ वैध तौर तरीके हैं। इन तरीकों को समाज अपनी स्वीकृति देता है। विवाह द्वारा एक स्वस्थ, सभ्य परिवार का जन्म होता है। परिवार के बिना समाज की कल्पना करना समाज के बिना देश की कल्पना करना असंभव है। विवाह हमारे जीवन का आधार बिंदु है। भारत एक बहु संस्कृति समाज है। जिसमें विवाह के अनेक ढंग प्रचलित है। वर्तमान समाज में विवाह संस्था में अनास्था जाहिर करके परिवार और समाज के अस्तित्व को खतरे में डाला जा रहा है। प्राचीन काल में जहां विवाह अनिवार्य था वहीं आज के युवा विवाह की अनिवार्यता को समाप्त करके अपनी स्वच्छंद जीवन धारा में बहना चाहते है, बह रहे है। पहले विवाह को एक अनिवार्य धार्मिक संस्कार माना जाता था और विवाह करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य था लेकिन आजकल यह अनिवार्यता समाप्त हो गयी है। कुछ लोग विवाह को अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन मानते है और अजीवन अविवाहित रहते है।

पश्चिमी देशों के साथ-साथ भारत के महानगरों में भी ऐसे युवक युवतियों की संख्या काफी है जो विवाह को बोझ मानकर अविवाहित ही रहते हैं। विवाह को बोझ मानने के पीछे हमारे परिवारों में बढ़ती तलाक की समस्या, कटु संबंध, स्वार्थी वृत्ति इन सब का हाथ है। समय के साथ हर चीज परिवर्तित होती है। परन्तु परिवर्तन भी सकारात्मक और नकारात्मक दो प्रकार का होता है और यह नकारात्मक परिवर्तन है कि भारतीय संस्कृति में जहां विवाह अनिवार्य था वहीं आज वह ऐच्छिक वस्तु बन गया जो हानि और लाभ की कसौटी पर कसा जाता है। सकारात्मक इसलिए कि इससे व्यक्ति अपने जीवन को अपने ढंग से जी सकता है, बिना किसी दबाव या रोक-टोक के। यह पूंजीवादी मानसिकता ही है जो विवाह को भी लाभ-हानि के नजरिये से देखते है जिसमें विवाह के जैसे संबंध बनाना चाहते है। परन्तु उसे कोई नाम नहीं देना चाहते बच्चे पैदा करके अपने जीवन को गृहस्थी के बोझ से नहीं दबना चाहते इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति विवाह को भी व्यवसायी दृष्टिकोण से देख रहा है। विवाह के विरुद्ध बढ़ती अनास्था से परिवार संस्था का धीरे-धीरे लोप हो जाएगा अहंकारी लोगों के अहं के कारण ही हमारे समाज में विवाह संस्था को नकारा जा रहा है। अतः 21वीं शताब्दी के भारत में विवाह की परंपरा पर भी प्रश्न चिह्न लगाकर पारिवारिक विघटन की परंपरा को मजबूत किया गया है। भारतीय परिवारों विशेषकर मध्य वर्गीय परिवारों में वैवाहिक जीवन की सबसे बड़ी चुनौती वैवाहिक विषमता है जो कई सामाजिक आर्थिक कारणों से परिपूर्ण है सुशील कुमार सिंह के नाटक 'चार यारो के यार' में रंगमंच पर स्पष्ट रूप से दर्शाया है कि मास्टर सीता नपुंसक होते हुए भी बिन्दिया नामक स्त्री से विवाह कर लेता है। अंत में इसी वजह से मास्टर सीता राम को बिन्दिया कहती है। "बिन्दिया: (पैनी नजरों से देखती है) कुछ जानने को अभी भी बाकी है क्या ? (मास्टर जी की नजरें झुक जाती है) या आप समझते हैं कि में ® कोई नासमझ बच्ची हूँ। मा° सीताराम: (धीमे से) लेकिन इसमें मेरा क्या दोष है ? बिन्दिया: दोष तो मेरी किस्मत का है। (मास्टर सीताराम खामोशी से उठ कर वापस तख्त पर चले जाते है। बिन्दिया भी झटके से उठकर खड़ी हो जाती है।) बिन्दिया: अब समझ में आया तुम्हारी दरियादिली का राज। इतनी

सहानुभूति क्यों दिखा रहे थे यह भी समझ में आ गया तुमने सोचा होगा कि सतायी हुई दुखियारी औरत हे, जुबान नहीं हिलायेगी और जुबान में ® सचमुच नहीं हिलाती। मास्टर जी, अगर तुम सफ-साफ पहले ही कह देते। पर तुम्हारे मन में तो पाप था। तुमने मुझे धोखे से फँसाया। मा° सीताराम: तुम मुझे गलत समझ रही हो.....शारीरिक सम्बन्ध क्या मायने रखते हैं।1 बिन्दिया: तो फिर क्या लाये थे ब्याह कर ! यह दिखाने के लिए नामर्द आदमी कैसा होता है ? मा° सीताराम: समझने की कोशिश करो बिन्दिया। असली बात तो आत्माओं के मिलन में है। में ® तुमसे प्रेम करता हूँ। बिन्दिया: प्रेम करता हूँ.....हूँ प्रेम करने वाले मन में मैल छुपाकर नहीं रखते मास्टर जी। में ®ने तुमसे क्या छुपाया था। सब कुछ बता दिया था। साफ-साफ। मा° सीताराम: में ®ने भी तुमसे शादी की तो जाति, धर्म, समाज किसी की परवाह नहीं की.....सब कुछ जान-बूझकर अपनाया तुम्हें..... पुनर्विवाह के बाद भी बिन्दिया खुश नहीं थी क्योंकि सीताराम से उसका कोई मेल नहीं था यह वह बर्दाश नहीं कर पाती और अपने कुंठित मन में भरे भावों के माध्यम से उन्हें अपनी मानसिक पीड़ा के रूप में बाहर निकालती है।

6.1.9 विवाहेत्तर संबंध

भारतीय परिवार में जहाँ विवाह के पश्चात गृहस्थ जीवन की शुरूआत की जाती थी। तन-मन का आदान-प्रदान होता था। वहीं ऐसा लगता है कि जैसे वर्तमान सदी ने विवाह पूर्व संबंधों को ही मान्यता दे दी है। यह पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव है कि हमारे युवा आज अपने सद्मार्ग भरे जीवन को त्याग कुमार्ग पर चल पड़े है। पहले व्यक्ति के जीवन में ब्रह्मचर्य नामक अंकुश का प्रयोग ऐसे संबंधों की उत्पत्ति रोकने के लिए ही था। हमारे यहाँ पर विवाह से पूर्व शारीरिक संबंध बनाते है। तो उसे अवैध संबंध माना जाता है। इसलिए प्राचीन काल में य ह अवैध कार्य होता था लेकिन ढके-छिपे आवरण में । समाज के अंदर ऐसे संबंध व्यक्ति की वासना एवं नादानी के कारण बन जाते थे। तब युवक-युवतियों के ऊपर लगाम कसने के लिए उनकी नाबालिग उम्र में ही शादी कर दी जाती थी। परन्तु वर्तमान युग में लड़ का-लड़की दोनों

ही उच्च शिक्षा प्राप्त करते है ओर बढ़ती उम्र में अपने प्रेमभाव को वश मन रख कर विवाह पूर्व ही यौन संबंध स्थापित कर लेते है आज इसे जीवनशैली का एक हिस्सा मान लिया गया है। 21वीं शताब्दी के युग में भी विवाह पूर्व और विवाह पश्चात बनाने वाले यौन संबंधों को अवैध माना जाता है ऐसा नहीं है कि प्राचीन काल में प्रेम या अवैध यौन संबंध थे ही नहीं वे थे परन्तु एक ढके छिपे आवरण में आज की भांति चीख-चीखकर वे अपने प्रेम या यौन संबंधों का ढोल नहीं पीटते थे। यह सत्य है कि प्रेम और यौन संबंधों को मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता माना गया है। लेकिन समाज में चारित्रिक श्रेष्ठता को बरकरार रखने के लिए ही विवाह संस्था का निर्माण किया गया है। भारत में बढ़ते अवैध संबंधों का कारण हमारा पश्चिमी संस्कृति से जुड़ाव है। पश्चिमी संस्कृति के इस बुरे प्रभाव को भारतवासियों ने अपने ऊपर लाद लिया है। आज का युवा वर्ग यौन संबंधों को पढ़ाई के साथ-साथ व्यवहार में लाता है। परन्तु पढ़ाई का यौन संबंध से कोई लेना-देना नहीं है। क्योंकि शिक्षा व्यक्ति के आचरण को मर्यादित बनाए रखने की सलाह देती है और वासना का काम है व्यक्ति को बुराई की अंधी खाई में धकेलना लेकिन वर्तमान पीढ़ी की इस बात की कोई परवाह नहीं है। 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों ने रंगमंच पर दर्शाया है कि 21वीं शताब्दी में कदम रखने पर भारतीय युवा उसे विवाह पूर्व शारीरिक संबंध बनाकर अनैतिकता रूप उपहार दे रहें हैं।

6.1.10 लिव इन रिलेशनशिप

लिव-इन रिलेशनशिप से अभिप्राय उस नई प्रथा से हैं जिसमें स्त्री व पुरुष बिना किसी वैवाहिक संबंधों के एक साथ रहते हैं। उन पर किसी प्रकार का कोई सामाजिक या कानूनी बंधन नहीं होता। वे केवल आपसी समझौते के आधार पर एक-दूसरे के साथ जीवन यापन करते हैं उनके बीच यौन संबंध स्थापित होते है। वे संतानोत्पत्ति भी करते हैं। वे आर्थिक रूप से एक-दूसरे पर निर्भर नहीं होते और पढ़े-लिखे स्वतंत्र विचारों वाले लोग होते हैं। यह प्रथा देश के महानगरों से शुरू होकर बड़े-बड़े शहरों में आ पहुँची

है। ये शहर औद्योगिक और शैक्षिक दृष्टि से विकसित होते हैं। यहाँ सामाजिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों के लिए कोई जगह नहीं होती। स्त्री पुरुष के सेक्स आधार पर इस तरह के संबंधता उम्र नहीं चलते। गृहस्थी चलाने के लिए त्याग, संयम और सहनशीलता की आवश्यकता होती है और ऐसे रिश्तों में इनका अभाव पाया जाता है। 21वीं शताब्दी में हम एक नए दौर में जी रहें हैं। अब जीवन का मतलब भोग एवं आनंद है। आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी पारिवारिक एवं सामाजिक जिम्मेदारियों से भागकर आनंद एवं मस्ती करना चाहता है। वह जीवन में अधिक से अधिक भोग, आनंद एवं ऐश्वर्य चाहने लगता है। डॉ॰ ऋतु सारस्वत इस जीवन प्रथा को स्पष्ट करती हुई अपने लेख में लिखाती है। "विवाह का तात्पर्य दो विपरीत लिंगियों को कुछ सामाजिक व वैधानिक प्रक्रियाओं का निर्वहन कर साथ रहना ही नहीं, बल्कि दायित्वों का निर्वाहन है, जहाँ त्याग, समझौते एवं प्रेम के साथ-साथ समर्पण भी है, पर आजकल युवा संस्कृति संक्रमण, भौतिक वादी दृष्टिकोण और असीम महत्वाकांक्षाओं के ज्वर में बहकर महानगरों से लेकर छोटे नर्तक में विवाह संस्था की नींव में सधा लगा रही है। युवा पीढ़ी अब बिना किसी समझौते के दायित्व और त्याग के ही एक उन्मुक्त बंध हीन जीवन जीना चाहती है। यहाँ मामला सिर्फ युवा पीढ़ी को सोच का ही नहीं है। बल्कि पारंपरिक वैवाहिक जीवन में बढ़ती सोच का ही नहीं है। बल्कि पारंपरिक वैवाहिक जीवन में बढ़ती जटिलताओं का भी है। अनेक कानूनी बाध्यताओं के चलते जहां पुरुष विवाह के नाम से हिचकिचाने लगे हैं वहीं स्त्रियों के लिए विवाह एक तरफा दायित्व का निर्वहण है, जहाँ सर्वाधिकार पुरुषों के पास है और उनके हिस्से में अंतहीन दायित्व। अपने अपने दायरों को तोड़ने को आतुर पीढ़ी को सहजीवन सहज और आसान राह प्रतीत हुई। आज 21वीं शताब्दी में युवा वर्ग में सेक्स का आनंद सर्वोपरि आनन्द है। ऊँचे मूल्य ईश्वर, धर्म, राष्ट्र, सेवा, त्याग, वीरत्व और ब्रह्मचर्य आदि से गिरकर सबसे निचली सतह पर आकर टिक गए हैं। भौतिक भोगवादी 21वीं शताब्दी में सेक्स का झंडा बहुत बुलंदी पर है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रसाद, शिक्षा-दीक्षा, अर्थ पर आधारित समाज-व्यवस्था आबादी की बाढ़, युद्ध बेरोजगारी महंगाई राजनीति और तरह-तरह के युगीन तनावों ने

आज के आदमी को मानव के रूप में ए क ऐसा सभ्य पशु बना दिया है जिसने सेक्स को ही सर्वोच्च मूल्य मान लिया है। डॉ॰ विनीता राय लिखते है कि "सेक्स के मूल्य रूप में प्रतिशठित हो जाने का सबसे बुरा प्रभाव विवाह संस्कार पर पड़ा। अब उसके भीतर वैसी आध्यात्मिक पवित्रता का दर्शन आज का बुद्धिजीवी और यथाकथित सभ्य समाज नहीं कर रहा है। और व्यवसायों की भांति विवाह भी एक जीवन-व्यवसाय बन गया है। वह नर नारी का जन्म-जन्मांतर का पवित्र नाता नहीं, आधुनिक जीवन का एक समझौता मात्र रह गया है। उसके पुराने रूप पर आज गहरा प्रहार ही रहा है। उसका सांस्कृतिक मूल्य ध्वस्त हो गया है। और-और परंपराओं की भांति उसकी ही परम्परा टूट रही है। उसके भीतर से पवित्रता वाद विदा ले रहा है। एक सर्वथा नया समाज नये नारे के साथ उभर रहा है। नया नारा है मुक्त भोग का। इस नारे ने नारी का मूल्य घटा दिया है। इस प्रकार सेक्स के मूल्य रूप में प्रतिशठा के साथ समाज का पुराना ढांचा ही आज पूरी तरह चरम पर आकर टूट रहा है। इस प्रकार सहजीवन अर्थात् लिव-इन-रिलेशनशिप युवाओं को आकर्षित कर रहा है। लिव-इन-रिलेशनशिप के प्रचलन का कारण भारतीय पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का भार है। आज युवा वर्ग अपने को स्वतंत्रत मानता है और स्वतंत्रता पूर्वक जीवन जीना चाहता है। वह विवाह को बंदीग्रह की तरह मानता है। डॉ॰ स्वाति तिवारी अपनी कहानी 'आजकल' के माध्यम से कहती है कि "आजकल विवाह एक रूढ़ि है - मात्र दो देह के मिलन की रस्म। जब देह बगैर रस्मो रिवाज के एकाकार है तो विवाह का बंधन क्या?..... जब तक चले, चलाओ, वरना आत्मा से उतार फको। अनचाहा बोझ नहीं चाहिए उन्हें ..... रिश्तों का बोझ। लिव-इन-रिलेशनशिप की अवधारणा की मान्यता है कि स्त्री-पुरुष को पारंपरिक वैवाहिक रीति रिवाजों को निभाने की आवश्यकता नहीं है।

6.1.11 नारी का बदलता स्वरूप

प्राचीन युग से ही न केवल पुरुष ने ही प्रगति की बल्कि नारी ने भी प्रगति के मुकाम हासिल किए है विकास का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है कि जहाँ आज नारी का योगदान न हो। ऐसा कहा जा रहा है कि आधुनिक काल में पहली बार स्त्री के हाथ में कलम की पकड़ भी मजबूत होती जा रही है। आधुनिक रचना का इतिहास साक्षी है कि इस कलम से पहली बार औरत ने अपने हाथों, अपनी ही भाषा में , अपने को लिखा है, अपने इतिहास को, अपने वर्तमान को और अपने आंकक्षित भविष्य को भी उनके त्रास, पूरे संघर्ष और पूरी संभावनाओं में । उसे अब तक अन्याने लिखा था, अब वह अपने को खुद परिभाषित कर रही है। आज आधुनिक युग की नारी राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक नारी का कार्यक्षेत्र, अधिकार क्षेत्र, फैला हुआ है। साहित्य क्षेत्र में भी युगों-युगों की यात्रा ने नारी को साहित्य और समाज की मुख्य नायिका बना दिया, ज्या- ज्यानारी का विकास होता गया। इसकी शाखा- प्रशाखाएं विभिन्न दिशाओं में फूटती गई। वक्त के साथ इन नारीवादिनों के दृष्टिकोण में भी काफी परिवर्तन आया और यहीं कारण है कि बहुतेरी स्त्री विचारको के प्रारंभिक हिन्दी काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक तथा कथा साहित्य में नारी को उसके विभिन्न रूपों में प्रतिपादित किया गया उसी प्रकार नाटक में भी वह विभिन्न रूपों में अवतरित हुई है। आधुनिक युग के नाटककार ह्रषीकेश सुलभ (अमली), नादिरा जहीर बब्बर (जी, जैसी आपकी मर्जी), उषा गांगुली (रूदाली), विभा रानी (अगले जन्म मौहे बिटिया न कीजो), सुशील कुमार सिंह (चार यारो के यार) आदि नाटकों में स्त्री के नए रूप को दर्शाया गया है

6.1.12 नारी पर अत्याचार

नादिरा जहीर बब्बर ने 'जी, जैसी आपकी मर्जी.... में बच्ची युवती एवं प्रोढ़ा उम्र की स्त्रियों के माध्यम से एक-एक करके नारी मन की कोमल भावनाओं को बड़े रोमांचक ढंग से व्यक्त किया है। इसमें सभी पात्र नारी वर्ग के हैं। प्राचीन काल से ही नारी को रोंदा जा रहा है। उसके व्यवहार पर प्रश्न चिह्न लगाये जाते रहे है। इस नाटक में नारी जीवन की परिभाषा ही बदल दी है। समाज में बहुत से रूढ़िवादी मुद्दे हैं जो स्त्री

की भूमिका को नकारते हैं। यहाँ उन सभी रूढ़िवादी विचारो के विरुद्ध एक जन-आंदोलन है। नाटककार ने नाटक की भूमिका में लिखा है कि यह नाटक हमारे समाज की मानसिकता को बहुत सच्चाई से प्रतिबिम्बित करता है चाहे वो धार्मिक मान्यताएँ हों जो स्त्री का दम घाट देती है या फिर हमारी रूढ़िवादी परंपराएँ। आज भी समाज में य ह रूढ़ि पैदा है कि घर में बेटा होना चाहिए, क्योंकि समाज में बेटा ही माँ-बाप की पैतृक संपत्ति का हकदार माना जाता है। नाटक के माध्यम से उन सब रूढ़ियों का खण्डन किया गया है कि बेटा या बेटी पैदा करना नारी के वश की बात नहीं है। इस नाटक में वषरा नामक पात्र है जिसकी छोटी उम्र में ही शादी कर दी जाती है। वह जैसे-तैसे अपने ससुराल में अपना जीवन-बिताती है। लेकिन उसकी सास उसे ताना देती है कि उसे लड़कियाँ ही नहीं लड़का भी पैदा करना चाहिए मंच पर वर्षा अपने वाचिक अभिनय में कहती है - "मेरी सास मुझे कहती देख में ®ने चार-चार लड़के पैदा किए तू एक तो घर का चिराग पैदा कर"1 नारी जीवन की विडम्बना को मंच पर अच्छे ढंग से मंचित किया गया है। नारी जीवन में ऐसे बहुत से रूढ़िवादी मुद्दे हैं, जिन्हहमदेखना और बदलना होगा। वर्षा कहती है "जब में ® चौथी बार पेट से थी तभी से सब घरवालों ने कहना शुरू कर दिया था कि अगर इस बार लड़की हुई तो अकील का निकाह फिर से कर दगे और मेरी बदनसीबी देखो कि मुझे चौथी बार फिर लड़की ही हुई। में ® बहुत डर गई थी, में ® दूसरे-तीसरे दिन ही उठ गई और घर का काम शुरू कर दिया अचानक मेरी सास आई.... मेरी लड़कियों को नोचती घसीटती और कहा, उठा अपना ये लड़कियों का कूड़े का ढेर निकल जा घर से।"2 नाटककार ने अपने युग की रंग-रूढ़ियां, उपलब्ध रंग उपकरणों, रंग संयंत्रों का रंग सुविधाओं के अनुरूप नाटक में उपयोग किया है। इस नाटक के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त किया गया है नारी स्वतंत्रता को बड़े बखूबी ढंग से चित्रित किया गया है। वर्तमान नारी समाज की सभी समस्याओं से निपट रही है। और विवेक से प्रत्येक बात का जवाब भी दे रही है। "म®ने क्या गलत किया, मन तो हो रहा की इस पूरे घर को में ®..... अमन मुझे आपसे नफरत हो गई है, पर फिर विदाई के समय मम्मी की दी हुई नसीहतों 'बबली पुतर' अपने पति को हर हाल में

खुश रखना। हाँ में ® इन्हें खुश रखना चाहती हूँ.... तो मतलब.... में ® अंधी, बहरी और गूंगी बन जाऊँ क्या.... क्या मर्दों को यह हक होता है कि वो सेंकड़ों अफेयर कर, लेकिन फिर भी फरिश्ता जैसे बने रह। एक छत और दो वक्त की रोटी देना कोई चाँद-तोड़ लाना तो नहीं है जिसके लिए हम अपना सब कुछ गँवा देते हैं, सब कुछ खो देते हैं, सब कुछ गँवा देते हैं, क्या क्या?..... क्या? मंचित नाटक में समाज के क्रूर चेहरे का नकाब उतार कर सामान्य नारी के शोषित जीवन का करुण चित्र उभरते हैं। इस नाटक से यही स्पष्ट होता है कि नारी अब केवल प्रेमिका, प्रेरणा या सजावट की 'वस्तु' मात्र न रहकर एक सत्त संघर्षरत, जीवन और संपूर्ण चित्र बन गई है। महिला नाटककार नादिरा जाहिर बब्बर ने समाज में नारी के अधिकारों की वकालत की है। 21वीं शताब्दी में चाहे नारी स्वतंत्रता की कितनी ही बात कर, लेकिन आज के समाज में भी 'स्त्री स्वतंत्रता' बड़ा ही संदिग्ध शब्द है। चाहे पढ़ने का हक हो, आर्थिक स्वतंत्रता का, अपना फैसला लेने का हक हो, आज भी अधिकतर स्त्रियों के लिए एक यह दूर से दिखने वाला स्वप्न मात्र है इन विचारों को 'जी जैसी आपकी मर्जी' में बेबाकी से दर्शाया गया है। लड़कियों को आज भी घर से बाहर जाने और नाटक देखने को माँ-बाप मना करते है। दीपा हमेशा ही अपने स्कूल में फ्सट क्लास रहती है परन्तु उनकी माँ जी तीनों बहनों को नाटकों में भाग लेने से मना करती है। दीपा स्वयं के कथन में कहती है कि "दादी हमेशा ऐसा ही करती है मुझे ओर मेरी दीदियों को कभी भी पहनने के लिए अच्छे कपड़े नहीं मिले। दीवाली पे साल में एक बार हमारे नए कपड़े बनते है। वो भी सड़क पर बैठे हुए दुकानदारों से और भैया के कपड़े, कपड़े की दुकान से खरीदते है। हमारा कभी बर्थडे भी नहीं मनाया जाता। भैया के बर्थडे पर बहुत बड़ी पार्टी होती है। घर के सामने टैन्ट भी लगता है। गाने भी बजते हैं। ऐसा नहीं कि हम भईया के बर्थडे पर खुशी नहीं होती लेकिन हमारा भी बर्थडे मनाना चाहिए।1 बच्चियों के मन की भावनाएँ जागृत होती है। परन्तु उन्हें दबा दिया जाता है फिर भावनाएँ कुण्ठित होती है चली जाती है। वे अपने अरमानों को मन में ही संजोए रखती है। देश ने चाहे कितनी ही प्रगति कर ली हो। लेकिन समाज में अब भी कई जगह अंधविश्वास के कारण नारी को निम्न वर्गीय माना गया है।

6.1.13 नारी अधिकार का प्रश्न

वरिष्ठ रंगकर्मी और नाटककार उषा गांगुली ने 'रूदाली' नाटक में उस नारी का चित्रण किया है; जो शनिवार को जन्मी थी, शनिवार के दिन को अशुभ मानने के कारण शनिवार को जन्मी शनिचरी को अशगुनी माना जाने लगा। कहा जाता है कि सनीचरी का अशगुनी होने के कारण उसका परिवार नष्ट हो गया वह परिवार में बिल्कुल अकेली रह गई। परिवार के सभी सदस्य काल की भेंट चढ़ गए। अब उनके पास रोने के लिए आँसू तक नहीं है। उसकी सास उसके विषय में कहती है:- सोमरी: तू सबको मारकर जिन्दा रहेगी डाइन। ससुर, जेठ आदमी सबको डकारे बैठी है। अब बेटा को खाएगी। सनीचरी: ज्यादा बकर-बकर मत करो। सोमरी: काहे न कर- सनीचरी को जन्म हुआ सनीचरी खाएगी नहीं सबको।1 सनीचरी: तू कउन-सा सुख पा गई सोमरी? तू तो सोमवार को पैदा हुई थी। अरे मंगली, धुधनी, बिसरी सबका हाल देख लिया हमने। हम से कोई नहीं पूछता कि खाया कि नहीं । दिन भर खाऊँ-खाऊँ। जैसे बाप तुम्हारे सौ मन अनाज धर गए हैं। अब एक आवाज भी निकाली तो सीधे टटुआ दबा दगे। उषा गांगुली की नाट्य रचना रंगमंच पर प्रभाव बिखेरती है। वह इस नाटक में दिखाई पड़ता है। इस नाटक में नारी का उत्साह आवेश में जैसा वेग होना चाहिए, वैसा ही इस नाटक में है। आवेश में कहने से वाक्य योजना में जो हल्का-सा उलटफेर होना नितांत व्यावहारिक है; वह भी इन नाटक में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार सभी आवश्यक गुण 'रुदाली' नाटक में दिखाई पड़ जाते है। नाटककार ने सरल से सरल वाक्यों का प्रयोग किया है। "दूसरी औरत: सनीचरी है ही दुरभागी, ई बखत बहुरिया भी भाग गई। एक औरत: पत्थर का कलेजा है डाइन का, एक बूँद आँसू नाहीं ? लछमी: का बक-बक लगाय रखी है ई बखत। धतुआ की बहुरिया! जा-हरूआ को ले जा घर में , कुछ खिला-पिला के सुलाय दो। जा बचवा। बिजुआ: भौजी कुछ इंतजाम करो, कब तक लहास पड़ी रहेगी? एक आदमी: संझा हो गई तो मुश्किल होगी चाची। दूलन: तू परेसान मत हो सनीचरी। हम सब इंतजाम कर लगे। ए नटुआ, जा संकरवा के लेकर लकड़ी ले आ। (विजुआ से) बोल अबका का लगेगा? नाटक की नायिका सनीचरी के साथ अनेक

घटनाएँ घटती हैं, लेकिन वह अंत तक उनका सामना संघर्ष पूर्व ढंग से करती है। सनीचरी को शनिवार के दिन पैदा होने के कारण उसे असगुनी माना जाता है। समाज का व्यवहार उसके प्रति दुर्भावनापूर्ण रहता है व्यक्ति अपने आपमें बुरा या असगुनी नहीं होता। व्यक्ति परिस्थितियों से विवशता के कारण अपने आपको असहाय समझने लगता है। जिस प्रकार से सनीचरी को अंत में रूदाली का काम करना पड़ता है रूदाली यानी वह स्त्री जो भाड़े पर रोती है, मेहनताना लेकर मातम करती है। 21वीं शताब्दी का यह नाटक रंग मंचीय प्रसिद्धि के लिए एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

6.1.14 नारी का सबला रूप

'अगले जनम मौहे बिटिया न कीजौ' भीवारानी नाटककार ने बड़े ही रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है नारी की बिडम्वनाओं के विषय में एसी प्रस्तुति शायद ही देखने को मिलती है जिसमें आम जन सबके सामने एक नाटक की प्रस्तुति रखते है। परन्तु जो कथा-व्यथा नाटक में प्रस्तुत की जाती है वही आम जन उस नाटक को अपने जीवन में लाकर परिवार का अतिक्रमण कर रहे है वो अपने जीवन में उसे लाकर उसे एक ऐसा रूप दे देते है कि मन झकझोर उठता है। एक बाप और भाई अपनी बेटी, बहन के साथ ही छल, फरेब कर बैठते है नाटक में तोता मैना दो पक्षी आपसी संवाद करके बड़े रुष्ट होते है। कहते है कि मनुष्य इतना निर्दयी हो सकता है कि धर्म और अधर्म को भी भुला चुका है। "मैनाः सदियों से जब से आदमी और औरत बने, तब से हाँ तब से तुम्हारी चालबाजियों के किस्से भी बनने लगे। अरे, दुनिया बनी तो नाते-रिश्ते बने हम औरत माँ, बहन, बेटी, बीबी..... जिसने जो कहा सब बनी। सारे धर्म बखूबी निभाए। अगर तुम लोग ! तुम्हें तो हम में बस मादा नजर आती रही, मादा भोगते रहे तुम हम.. .....। भोग की अनंत लालसा की गाढ़ी लार तुम्हारे हाठो पर फैलती रही और लपेटते रहे तुम हम, हमारे पवित्र रूपों को जिनके बल पर थमी हैं यह दुनिया, यह कुदरत, यह संसार। तोता: कमजोरों को बलवानों के अधीन रहना पड़ता हैं मैना रानी! इसमें नई बात कौन-सी है ? मैना: देह से कमजोर होने से क्या होता है

? मन से तो हैं हम तुमसे मजबूत.....सह सकते हो हमारी तरह प्रसव पीर ? भोग सकते हो राँड़पन का तीर ? झेल सकते हो बाँझपन का दर्द ? उठा सकते हो हमारा वह दुःख, जो अपनी बेवफाई से हमें देते हो। छिः घिन्न आती है। तुम लोगों से।1 इन संवादों द्वारा मैना व अन्य जन को समझाती है परन्तु जो नाटक के वास्तविक नायक है वे है राजकुमार व चंपा। चंपा राजकुमार की बहन है परन्तु वह उसे प्रेमिका के रूप में देखता है। "राजकुमारः में तो उस नन्हे रूप को देखकर दंग था। इतनी खूबसूरत! माता जी अकसर पिता जी से कहा करती कि अपने पुण्य प्रसून के लिए वे चाँद सी दुल्हनिया लाएंगी। सुन सुनकर उस छोटी-सी उमर में ही मेरे मन में भी एक सूरत बन गई थी अपनी दुल्हनिया के लिए। चंपाकली आई तो.... अरे, यह तो उसी का प्रतिरूप है, जिसे में ®ने अपने मन में गढ़ा था। (गायन वृंद में पुरुष स्वर में गाय न) तोरी पतली कमर लंबी के सिया हो रामा उस पर बसे काली नागिनिया गोरे-गोर अंगों पे लाल चूनर शोभे तोरी तिरछी नजर, काली कजरारी रामा, नैना से छोड़े कटारिया हो।"1 राजकुमार बहन के पवित्र रिश्ते को प्रेमिका रूप दे कर उसे अपनी पत्नी स्वीकारना चाहता है वह अपनी प्रेम पीड़ा को असहनीय बताते हुए कहते है "राजकुमार: ना बहुत हो गया। बहुत हो गई सब्र और धीरज की परीक्षा अब और नहीं चंपा सयानी हो गई है। वाह ! कैसा गदराकर फूटा है उसका यौवन। कैसा सूरजमुखी जैसा खिला है उसका रूप आहा भगवान! कब पा सकूँगा में उसे? बहुत हो गया.... ..... करना ही होगा अब कुछ-न-कुछ। भटकोएँ, जंगली फल। (हँसता है) राज्य में फलों की कोई कमी नहीं । मगर मेरी प्राण प्यारी, चंपा रानी को पसंद है तो यही जंगली फल भटकोएँ। इसीलिए तो वह भी जंगली बेल की तरह फैली हुई है, खिली हुई है.... अलमस्त, मदमस्त.... (भटकोएँ) आले पर रखते हुए.... ये....ये....है चंपा के आने-जाने का रास्ता.... और जब वह यहाँ से गुजरेगी, तब उसकी नजर तुरंत ही इन भटकोओं पर जाएगी और वह इन्हें खा लेगी। राजकुमार छल से अपनी बहन के सामने एक ऐसी शर्त रखता है जिसका उसे अनुमान भी नहीं होता वह उस भटकोएं के फल को खा लेती है शर्त के अनुसार भटकोएँ खाने वाले से राजकुमार विवाह करेंगें और राजकुमार के कुटिल मन की मनसापूर्ण हो जाती है।

परन्तु चंपाकली को कुछ मालूम नहीं होता वह देखती है कि मेरा अचानक विवाह तय हो गया और मुझे पता भी नहीं और न किसी राज्य का राजकुमार उसे देखने आया न रानी माँ ने मुझे कुछ बताया और इसी बीच तोता और मैना के आपसी संवादों की ओर चंपाकली का ध्यान अकर्षित होता है। वह उन की बात सुन कर हैरान और परेशान हो जाती है वह सुनती है कि उसकी शादी उसके भाई राजकुमार से हो रही है। इतना बड़ा धोखा इतना बड़ा अन्याय। वह सोचती है कि उस कपटी का व्यवहार, माँ-पिता का पुत्र मोह, लोगों के बूझे चेहरे अब मुझे पता चला है कि यह सब क्या है इनसे अच्छे तो ये पक्षी है जो धर्म-अधर्म की बात समझते है अधर्म के विरोध का साहस रखते है। मुझमें भी साहस है पाप को मिटाने का अधर्म के विरोध का। चंपा सोचती हुई पागल होती है और रोती है। चौदस का चाँद आसमान में होता है और चंपाकली नदी के किनारे जा बैठती है। और कुछ समय बाद खुद ही वह नाव को लेकर नदी की धार में उत्तर जाती है। इस पर सभी तरफ कोलाहल, भगदड़ चीख पुकार के शब्द सुनाई देते हैं। वे सभी राजकुमारी को देखते है। राजा, रानी, राजकुमार, चंपा को पुकारते है "रानी: चंपा! मोरी बिटिया! लौट आओ मेरी मैना, मेरी चिड़िया! मेरी सोना! तेरी यह असहाय माँ तेरे बगैर कैसे रहेगी? लौट आओ मेरी बिटिया! लौट आओ। (चंपा गीत गाते हुए रोते हुए जबाव देती है।) चंपाकली: कैसे में लौटूँ हे माई मेरी, कइसे सहूँ सारी बात तुम्हीं मोरी सासु ऐ माई, बाबा होऐंगे ससुर, भइया मोरे होऐंगे स्वामी, डूब धस दूँगी परान। राजा: चंपा, मोरी बिटिया! तू तो मेरी आँखों का तारा है। मेरे कलेजे का टुकड़ा लौट आ मेरी गुड़िया। अपने बाप की बात मान ले। मत जा आगे। लौट आ! चंपाकली: कइसे में लौटूँ हो बाबा, कइसे सहूँ सारी बात तुम्हीं मोरे ससुर हो बाबा, अम्मा होऐंगी सास भइया मोरे होऐंगे स्वामी, में डूब धसँ दूँगी परान। राजकुमार: इस पुरी दुनिया में तू ही तो एक मेरी बहन है। तू नहीं रहेगी तो कौन मुझे भाई कहेगा? कौन मेरी कलाई पर राखी बाँधेगा? कौन भाई दूज के दिन रोली-तिलक लगाएगा लौट आ मेरी प्यारी बहन! लौट आ! अपने भाई को इतना न सता। वापस आ जा। चंपाकली: कइसे में लौटूँ हो, भैया, कइसे सहूँ सारी बात तुम्हीं मोरे स्वामी हो भइया, अम्मा होएगी सास बाबा मोरे होऐंगे ससुर, डूब धँस दूँगी परान।

चंपाकली अपने रौद्र रूप को दिखाती हुई अपने प्राणों को न्योछावर कर देती है राजकुमार की बनाई कथा को व्यथा में परिवर्तित कर देती है। चंपाकली पाप होने से बचाती है और अधर्म के खेल को खुद खत्म होकर समाप्त कर देती है। इस नाटक में रंगमंचीय अभिनय बहुत महत्त्वपूर्ण रूप में प्रस्तुत होता है सारे नाटक में उत्साह और आवेश पूर्ण भाव प्रदर्शित होते है। यह नाटक नारी के उत्पीड़न पर प्रकाश डालता है। नाटक की सारी विषय वस्तु से स्पष्ट होता है कि नारी को सिर्फ भोग की वस्तु कहा है, जिसमें रिश्ते- नाते भी अधर्म की बलि पर चढ़ा दिए जाते है। 21वीं शताब्दी के नए नाटकों में जीवन की वास्तविकताओं को दर्शाया गया है। प्रसिद्ध नाटककार सुशील कुमार सिंह ने 'चार यारो के यार' बहुचर्चित नाटक की रचना की है जिसमें प्रथम मंचन के साथ ही रंग जगत में सनसनी फैला दी है। नारी जीवन की विडम्बना को सहज, सरल संवादों के माध्यम से प्रकट किया गया है। नाटक की सारी कथा वस्तु मुख्य पात्र बिन्दिया के चारों और घूम रही है। बिन्दिया जैसी अनेक औरतें इस देश में अपना जीवन दुख-दर्द में बीता रही हैं। लेकिन नायिका बिन्दिया पुरुष समाज को चुनौती देती है। नाटक के अंत में जब दर्शकों को आप बीती सुनाती है तो दर्शक वर्ग की आत्मा तड़प उठती है। बिन्दिया: (अपराधी भाव से) हाँ में ®ने खून किया है.....कब मना किया है में ®ने ....कि खून नहीं किया.....म® तो बस यह कहना चाहती थी..... कि आप मेरे बारे मन जाने तो अच्छा है... .....लेकिन आप कर भी क्या सकते है ? उससे बड़ी सजा भी क्या आप दे सकते हैं जो में ®ने भुगती है ? शराबी पति का कसाईपन नामर्द आदमी की घुटन..... दलालों जैसा प्रेमी छिः.....सब पर थूकती हूँ में ®.....उन पर भी और अपने पर भी..... सब कुछ मेरे मुँह से ही क्या सुनना चाहते हैं ? में ® स्त्री हूँ, ऐसी बात मेरे मुँह से बड़ी रसीली ओर चटपटी लगती है ? मुझे कुछ नहीं बताना.....जाइए, और जा कर सौ जाइए अपने-अपने हमबिस्तरो के साथ छुप कर.....खुले आम.....या जैसे जी चाहे... ....पर ईश्वर के लिए मुझे अकेला छोड़ दीजिए।

6.1.15 नारी का विद्रुप

भारत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिए अनुकूल बनाया जाता है। पुरुष प्रधान समाज में बचपन से एक लड़की को स्त्रीत्व के गुण सिखाकर तथाकथित आदर्श नारी के रूप में ढ लती है। इस आदर्श रूप के साथ जो कोई भद्र व्यवहार करता है तो उसे यह व्यवस्था भटकी हुई बिगड़ी हुई औरत-औरत नहीं रही इस तरह से खुद को कोसती है। 21वीं शताब्दी के नाटक 'अभंग-गाथा में डॉ° नरेन्द्र मोहन जी ने दर्शाया है कि तुकाराम को मंगला वेश्या अपने मोहनी रूप जाल में फंसना चाहती है – "तुकाराम: अद्भुत है तुम्हारा नृत्य और गायन। में गला: और में ®? तुकाराम: करीब से तुम्हें पहली बार देखा है। तुम रूपसी हो। मंगला: यह रूप तुम पर न्यौछावर कर चुकी हूँ। तुकाराम: में ® किसी और के रूप पर न्यौछावर हो चुका हूँ। मंगला: में ® तुम्हारी हूँ। तुमसे प्रेम करती हूँ। तुकाराम: प्रेम अबोला होता है, मंगला, गूँगे का गुड़, यह चित्त का अनुभव है। मंगला: तुम्हारे बिना मेरी हालत जल बिना मछली-सी हो गई है। मुझे स्वीकार कर लो, अपने में मिला लो। तुकाराम: मिलन वही है, मंगला, जिसमें मन मिल जाता है। मन के बिना केवल शरीर का मिलना मिट्टी का घासना है। 21वीं शताब्दी के नाटकों में जहाँ राजनैतिक भ्रष्टाचार रिश्वत घोरी को दर्शाया गया है, वही, सामाजिक परिस्थितियों में आपसी संबंधों , रिश्ते-नातों को टूटी हुई माला के मनकों की तरह बिखरते हुए देखा गया है। हृषीकेश सुलभ के 'अमली' नाटक में , उषा गांगुली के रूदाली नाटक में , विभा रानी के 'अगले जनम मौहे बिटिया न कीजौ' नादिरा जहीर बब्बर के 'जी, जैसी आपकी मर्जी' सुशील कुमार सिंह के 'चार यारो के यार' नाटक में संबंध को बड़ी सहजता से उकेरा गया है। धर्म पर अधर्म की विजय को दर्शाया गया है क्योंकि पुरुष प्रधान समाज में औरतों को चाहे कितने भी अधिकार मिल जाए परंतु वह सामाजिक रूप से उन अधिकारों से वंचित है उसे केवल भोग विलास की वस्तु के रूप में ही प्रयोग किया जाता है। उसे एक कमजोर वर्ग का नाम दिया जाता है। यह है 21वीं सदी में नारी की स्थिति ! "लक्ष्य मेरा सिर्फ इतना कामना में स्त्रीत्व हो जिस शिला से सर्जना हो बस तेरा व्यक्तित्व हो"

निष्कर्ष

उपर्युक्त रूप से कहा जा सकता है कि 21वीं शताब्दी ने अपने पांव पूर्ण रूप से पसार लिए हैं। समूची व्यवस्था एक बाजार के रूप में तबदील हो रहा है। वैज्ञानिक व तकनीकि क्रांति ने मशीन को मनुष्य का पर्याय बना दिया है। मनुष्य मशीन की तरह विहीन बनता जा रहा है। आज मनुष्य अपने स्वाभाविक मूल्यों , को बदल कर अन्त द्वन्द्व ग्रस्त, कुण्ठा, घुटन, कामुकता, दोहरा व्यक्तित्व, और स्वार्थीपन दिखा रहा है। आज व्यक्ति परिवार व समाज में रहते भी अकेलेपन से जूझ रहा है। 21वीं शताब्दी में संयुक्त परिवार बहुत ही कम संख्या में दिखाई देते हैं। जो भी संयुक्त परिवार बचे हैं वे टूटने के कगार पर खड़े हैं। एकल परिवारों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। परन्तु 21वीं शताब्दी में ए कल परिवारों में भी टूटन दिखाई देती है। क्योंकि पति-पत्नी के आपसी संबंधों में संदेहशीलता बढ़ रही है। दोनों पति- पत्नी अपने व्यक्तिगत रिश्तों में एक-दूसरे की दखलअंदाजी नहीं चाहते। परिवार को बढ़ाने के लिए विवाह की आवश्यकता होती है और वंश बढ़ाने के लिए बच्चों की आवश्यकता। युवा वर्ग विवाह को नकारकर लिव-इन-रिलेशनशिप व समलैंगिकता को अपना रहा है। बच्चे पैदा करना अपने कैरियर में बाधा मान रहा है। बुजुर्ग पीढ़ी अपने बच्चों से उपेक्षित है। बुजुर्गों को फालतू मानकर उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। परिवार में अधिकतर रिश्ते पैसे पर आधारित हो रही हैं। 21वीं शताब्दी के नाटकों में नारी के स्वरूप में बदलाव देखा गया है। नारी वर्ग ने उभरकर समाज में अपनी एक नई पहचान बनाई है। उसने अपने घर के काम-काजों को थोड़ा विराम देकर अन्य व्यवसायों में अपनी कामयाबी का परचम फहरा रही है। नारी ने अपनी ताकत को पहचान कर जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष वर्ग को टक्कर दे रही है। वह स्वतंत्र पहचान बना रही है। सशक्त होने के कारण नारी की वर्तमान स्थिति से पुरुष ईर्ष्या करने लगा है। नारी को हर क्षेत्र में तरक्की के बावजूद भी तरह-तरह के शोषण का शिकार होना पड़ता है। उसे नारी होने का अहसास कराया जाता है। परन्तु 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों में पूरा सामाजिक स्वरूप ही बदला हुआ है। गाँव भी छोटे-छोटे बाजारों औद्योगिक केन्द्रों के रूप में उभर रहें हैं, जिसमें लोगों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। वे हर प्रकार के शोषण का विरोध करने लगे है। और

उसके आपसी सम्बन्ध अर्थ आधारित बनने लगे हैं। 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों में बदलते सामाजिक दृष्टिकोण को सटीक ढंग से उठाने में सफल प्रयास रहा है। सुशील कुमार सिंह, 'चार यारो के यार', नदिरा जहीर बब्बर, 'जी, जैसी आपकी मर्जी, उषा गांगुली, 'रूदाली', विभारानी, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', नरेन्द्र मोहन, 'अभंग गाथा', राधा कृष्ण सहाय, 'अतः किम्', हृषीकेश सुलभ, 'अमली', अमृतलाल में दान, 'अधमुण्डा सिर और चौथी टाँग', आदि नाटक कारों ने बदलते सामाजिक दृष्टिकोण को वर्णित किया है इन्होंने 21वीं शताब्दी में बदलते समाज का स्पष्ट एवं सटीक चेहरा दिखाकर हमें अपने गिरेबान में झांकने पर मजबूर कर दिया है।

6.2 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का राजनैतिक स्वरूप

वर्तमान परिवेश को केन्द्र मानकर लिए गए नाटकों में "शासकीय समाज पर लोकप्रिय राजनीति के पड़ने वाले प्रभावों, मंत्रिमण्डल, पुलिस विभाग के भ्रष्ट आचरण खोखली राजनीति और खंडित होती राष्ट्रीय एकता आदि की विशुद्ध व्यंजना हुई है। साहित्यकार भी इसी समाज का अंग है। व इससे अछूता रहे, यह असंभव है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी राज्य में निवास करता है और जहाँ राज्य, वहाँ राजनीति भी है यदि साहित्यकार किसी राजनीतिक दल से जुड़ा है या वह राजनीति के अपने विकास का माध्यम बनाना चाहता है तो वह विशिष्ट सिद्धांतों की राजनीति का पक्ष ग्रहण करेगा। एक सच्चे साहित्यकार का राजनीति से तटस्थ रहना असंभव है। यदि हम किसी युग के साहित्य पर दृष्टिपात करें तो उसमें राजनीति की प्रतिक्रिया अवश्य मिलेगी। "जब गलत लोग किसी अच्छी चीज का इस्तेमाल करें तो वह भी गलत हो जाती है यह शासक वर्ग का चरित्र है। साँप चाहे फूलों की बेल से लिपट जाए, रहेगा तो साँप ही। कभी नहीं बदलती उसकी फितरत और नतीजा। लोगों को गलती लग जाती है कि नेताओं के धर्मदूत आकाश से उतरेंगे, उनके दुःखों को पोटली में बांधोगे और लौट जायेंगे वापस अपने स्वर्ग। धर्म, राजनीति, संस्कृति और साहित्य रंडी बन गए है। इन पॉलिटिशेन्ज के हाथों में इनका इस्तेमाल

तिजारत बन गया है। तिजारत अपने घर में खून-खराबा, भुखमरी, बेरोजगारी और हाहाकार। विदेशों में हो रहें हैं, भारत-उत्सव। फैस्टीवल ऑफ इण्डिया। लोग इतने सुखी हैं कि बस दिन-रात नाचते है, गाते है और मस्त रहते है। बना दी है शस्य-श्यामला हमारे राजनीति के अवतारों ने।

6.2.1 राजनैतिक व्यवस्था

21वीं शताब्दी के नाटक कॉफी होम में राजनेताओं की सबसे बड़ी अवसरवादी प्रवृत्ति दल-बदल को चित्रित किया गया है। लेकिन लोकतंत्र में अपने हितों की रक्षा के लिए संगठन राजनैतिक दल बनाने का अधिकार है। इन विषय पर चंदू प्रो॰ को कहता है कि - "चंदू: प्रजातंत्र मतो लोग अपने हितों की रक्षा के लिए अपने को संगठित करते हैं और इससे राजनैतिक पार्टियों का जन्म होता है और जनता के हित के लिए हर किसी के अपने-अपने सिद्धांत और कार्यक्रम हैं। प्रोफेसर: कैसे सिद्धांत और कैसे कार्यक्रम। आया राम गया राम राजनीति के ज्तंकम डंता हो गए है। कोई पार्टी छोड़ने को घुटन से आजादी में आना कहता हैं कोई पार्टी को 'ज्वाइन' करने को घर वापसी कहता है। मतलब तो केवल एक है सत्ता का भोग करना।"3 वैसे तो राजनैतिक व्यवस्था राज्य को सुचारु रूप से चलाने व जन कल्याण के लिए की गई थी। परन्तु मात्र राजनीतिक का अर्थ है दूसरी तरह से परिवर्तित घोटालों , षड़यंत्रों, भाषण बाजी, झूठ धोखेबाजी, छल-फरेब, विश्वासघात आदि शब्द राजनीतिक के पर्यायवाची बन गए हैं। कोई भी सम्मानित व्यक्ति राजनीति में नहीं आता यही कारण है कि वर्तमान राजनीति या तो पारिवारिक स्तर पर सिमट गई है या फिर इसमें गुण्डे, बाहुबली व स्वार्थी लोग शामिल हो गए हैं। 21वीं शताब्दी के नाटक 'नया सवेरा' में राम बाबू महाशय को मण्डल का अध्यक्ष बनाने लगते है इस अवसर पर महेश अपने साथियों को राजनीति यथार्थ से परिचित कराते हुए कहते है कि "कामिनी: सबकी इच्छा है तो अब आप भी आशीर्वाद दे ही दो जी। आखिर राजनीति में भी तो अपना कोई साथी होना चाहिए। महेश: राकेश तुम्हारा क्या ख्याल है, क्या तुम भी.....? राकेश: में ® भी पंचायत के साथ हूँ जी, जैसा सब

चाहते हैं, वही में ® चाहता हूँ। महेश: देखो, राजनीति इतनी बढ़िया चीज नहीं है। तमाम चमकने वाली चीजें सोना नहीं हुआ करती। ये चमचमाती गाड़ियों में घूमने वाले सजे-धजे नेतागण सही मायनों में सभी समाज के सेवक नहीं हैं इनमें से बहुत सारे लोभी, लालची और अवसरवादी भी है। आज हम पाँच-छह मिल बैठने वाले दोस्त यदि सही दिशा में चलें तो देश की किस्मत संवार सकते हैं और यदि कहीं भटक गये तो न तीन में रहेंगे न तेरह में । उलटे पृथ्वी पर भार बनके ही रहेंगे। जानते हो आज देश के सामने सर्वाधिक खराब नेतृत्व की ही है। डॉ॰ सरिता वशिष्ठ जी कहती हैं कि यह कहना अनुचित न होगा कि आज भारतीय प्रशासन अपने कर्तव्य, अपनी नैतिकता तथा अपने आदर्शों से नीचे गिर चुका है। सत्ता के लोभ में जनता का शोषण करना, समाज में हिंसा फैलाना योजनाओं के नाम पर राष्ट्र जनता के धन का दुरुपयोग करना, छलबन्दी व निरंकुशता का वातावरण उत्पन्न करना आज के प्रशासक के गुण माने जाते है।

6.2.2 प्रशासनिक दृष्टिकोण

लोकतंत्र विरोधी दलों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। विपक्षी दल जहाँ एक और सत्ता पक्ष की निरंकुशता व स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाते हैं। वहीं दूसरी और आम जनता की आवश्यकताओं व समस्याओं को शासन के समक्ष प्रस्तुत करते है। इसलिए आरोप-प्रत्यारोप के द्वारा विपक्ष व सत्ता पक्ष द्वारा एक दूसरे को नीचा-दिखाने की कोशिश भी की जाती है 'फिर से जहाँपनाह' नाटक में वसुंधरा, अब्दुल्ला और बलवान विपक्षी पार्टी के नेता है। तीनों सत्ता पक्ष को गिराने के लिए आपस में बहस करते हैं। सत्ता प्राप्त करने के लिए ये जनता में अनेक तरह के मिथ्या प्रचार कर उन्हें भड़काना चाहते है। "अब्दुल्ला: बलवान भाई ! समझ में नहीं आता, इस जन्म में हमकुर्सी मिलेगी भी या नहीं ? बलवान: जनता से पूछो! अपने अधिकारों के प्रति जागरूक ही नहीं है वह! वसुंधरा: जनता अपने दुखों का असली कारण ही नहीं जानती। अब्दुल्ला: उसे बताना है असली कारण यह है भ्रष्ट सरकार ! इसे बदलना है।

बलवान: (तैश मे व्यंग्य से) बदलना है ! अरे मियाँ सरकार को बदलना खेल नहीं है। वसुंधरा: न सही, लेकिन अगर हम जनता को जाग्रत नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? बलवान: यह काठ की हाँडी में खीर पकाना है मैडम ! अब्दुल्ला: चुनाव सर पर है और आप जाग्रत-जाग्रत की रट लगा रही हैं। अरे इस वक्त तो जनता को भड़काने की कोई तरकीब सोचो! बलवान: खाक सोच! चारों तरफ भुखमरी है, किसान आत्महत्या कर रहें हैं, भ्रष्टाचार हैं, देश कर्ज में डूबा है, गरीबी हटाओ योजना का लाभ गरीब तक नहीं पहुँचता, महंगाई का ये हाल हैं कि झोला भर नोट में झोला भर सब्जी नहीं आती। इस पर भी अगर जनता नहीं भड़कती तो क्या भूकंप उठा द! अंधड़ चला द। अब्दुला: हड़कंप, भूकंप, अंधड़। वही तो होता है असली चुनावी मुद्दा।"1 'फिर से जहाँपनाह' में त्यागमूर्ति नेता अपने चमचे काली को सरकारी दफ्तर में लगवा देता है। जब काली नेता से पूछता है कि उसे वहाँ क्या-क्या काम करना है। तो त्यागमूर्ति कहता है कि उसे वहाँ जाकर सोना है - काली: निठल्ले घूम रहें हैं सरकार। आप सुध ही नहीं लेते हमारी। "त्यागमूर्ति: हम नहीं लगे तो कौन लेगा ? जमा दिया है तुझे। काली: बड़ी कृपा। अब की परमानट चोकीदार की जगह है न ! त्यागमूर्ति: अरे, तू अफसर हो गया है अफसर ! काली: अफसर ! क्या करना होगा सरकार ! त्यागमूर्ति: कुर्सी पर बैठ-बैठ सोते रहना। सरकारी दफ्तर नहीं देखें हो क्या ? काली: नहीं सरकार सिर्फ थाना देखे हैं। त्यागमूर्ति: देख लोगे। समझ जाओगे, लेकिन खबरदार ! 21वीं शताब्दी में व्यक्ति अपने देश, समाज एवं परिवार से कटा हुआ। सत्ता के पीछे लगे हुए व्यक्तियों में देश के अनुरूप नागरिकता के गुण दिखाई नहीं देते। हमारा प्रशासन भ्रष्ट हो चुका है। भ्रष्ट प्रशासन से तात्पर्य है - ऐसा प्रशासन जिसमें छोटे तथा बड़े से बड़ा कार्य सिफारिश, रिश्वत तथा चाटुकारिता से होता है। चाटुकारिता मानवीय दुर्बलता है। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि दूसरा उसकी चापलूसी कर, उसके सामने हाथ जोड़े, ऐसे भ्रष्ट चरित्रहीन प्रशासन के हाथ में ही तो हमारे समाज, हमारे राज्य की शक्तियाँ होती है। ये शक्तियाँ नेताओं के हाथ में होती है। जो जनता को झूठे आश्वासन देते हुए उनकी सभी समस्याओं को सरकार तक पहुँचाकर जल्द ही दूर कर दिया जाएगा का आश्वासन देते है। इस

विषय में वी° आई° पी° नेता प्रशासन की कमियों को बताते हुए कहता है - "एक वृद्ध: अबल अबे तो एक आये.....गये.....अब दूसरे आ गये..... एक महिला: पानी नहीं है.....बिजरी नहीं है.....दवा नहीं .... ..दारू नहीं ..... दूसरा वी° आई° पी°: में ® सब जानता हूँ। हमें मिनट- मिनट की खबर मिलती रहती है। प्रशासन नाम की कोई चीज़ ही नहीं रह गई। यहाँ पुलिस नकारा हो चुकी है यहाँ की, सरकारी कर्मचारियों ने काम बंद कर दिया है। कुछ लोग: अरे साब इतने दिन से कर्फ्यू लगा है..... मुसीबत हो गई है.....ये दंगे। दूसरा वी° आई° पी° मुझे सब पता है मिनट-मिनट की खबर लेता रहता हूँ में ®। इस सरकार के बस का कुछ नहीं है। कोई नियंत्रण नहीं है.....कोई नियंत्रण नहीं नौकरशाही पर।..... गुंडे बदमाश.....खुले आम घूम रहे हैं और आदमी परेशान है.....बदहवास है।

6.2.3 प्रशासनिक अधिकारी

21वीं शताब्दी का युग जहाँ प्रगति का युग है वही भारतीय लोकतंत्र में राष्ट्र की प्रशासनिक बागडोर हमारे राजनेताओं के हाथ में हैं। समाज में प्रत्येक क्षेत्र में व्यवस्था बनाये रखने का काम प्रशासन में प्रशासक तथा जनता सबके अधिकारों तथा कर्तव्यों का ध्यान रखा जाता है। प्रशासन के हाथ में राज्य की शक्तियाँ होती है। अतः प्रशासन का सभी क्षेत्रों से बचे रहना कठिन है। जहाँ पहले न्याय तथा ईमानदारी का राज्य होता था वही आज झूठ धोखेबाजी, हिंसा तथा भ्रष्टाचार का शासन है। 21वीं शताब्दी के नाटक 'कॉफी होम' में पत्र कार विदुषी और प्रो° न्याय व्यवस्था से उठते अविश्वास की बात करते हैं इसका मुख्यकारण न्याय व्यवस्था में देरी है। पिता का शुरू किया मुकदमा पोते तक जाकर भी खत्म नहीं होता। "प्रोफेसर: नमस्कार वकील साहब, अच्छा हूँ, ऊपर वाले की दुआ से सब ठीक है और आप लोगों की दुआओं से कोर्ट कचहरी से बचा हूँ तो समझो बहुत अच्छा हूँ। कुशाग्र: आश्चर्य है, आप ऐसा कह रहे हैं। पत्रकार: इसमें आश्चर्य की क्या बात है वकील साहब ? आम आदमी कोर्ट और थाने से तो दूर ही रहता है। आम आदमी कोर्ट-कचहरी व थाने जाना अपना अपमान समझता है। वह तथाकथित

न्याय के लिए इन जगहों पर प्राथमिकता के तौर पर नहीं, अन्तिम उपाय के तौर पर जाता है। विदुषी: आपका दृष्टिकोण बिल्कुल सही है। हमारी न्याय-व्यवस्था खर्चीली है। अदालत में जाने पर न्याय भी मिलेगा या नहीं और मिलेगा भी तो कब? पीढ़ी दर पीढ़ी बीत जाती है, न्याय मिलता है तब, जब उसकी कोई प्रासंगिकता ही नहीं रह जाती"1 वर्तमान प्रशासन में मंत्र ी से लेकर संतरी तक सभी भ्रष्टाचार में संलिप्त है। आज बिना सिफारिश के कोई किसी की भी बात सुनने के लिए तैयार नहीं देश की भीतरी सुरक्षा एवं शान्ति व्यवस्था में पुलिस विभाग की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परन्तु आज पुलिस जनता के प्रति उचित व्यवहार नहीं करती अपितु वह तानाशाही, स्वेच्छाचारी हो गई है पुलिस थाने कभी भी पूरी फोर्स नहीं होती अधिकतर सिपाही वी॰ आई॰ पी॰ सुरक्षा में तैनात कमाई कर रहे होते हैं। थानेदार गौतम वायरलैस सेट पर बात करता हुआ कहता है कि - "थानेदार गौतम: हैलो.....हैलो..... - सुनाई नहीं पड़ रहा है.....इस सेट में , शायद.....बैटरी डाउन हो गई है इसकी। हैलो हाँ हैलो.....हाँ में ® इंसपेक्टर जगन्नाथ मित्रा, बोल रहा हूँ .....जये हिंद सर.....जी सर.....क्या मेडिकल अफसर को खबर कर दूँ.....एंबुलेंस भेजने की,.....जी.....भेज दूँ.....लेकिन कैसे.....यहाँ थाने पर तो फोर्स है ही नहीं सर.....डयूटी पर गई है। छः कांस्टेबल तो बीट पर गये हुए हैं। देहात में ..... बाकी कुछ.....ड्यूटी पर लगे हैं.....अधिकारियों के यहाँ..... चार आदमी.....भेजे हैं..... वी॰ आई॰ पी॰ मूवमेन्ट हो रहा है..... .मार्ग व्यवस्था देखने.....जी.....जी.....वो ट्रैफिक वाले.....जी वो. ..... इस समय, बैरियर पर चेकिंग कर रहे हैं.....ट्रकों की..... कारवाई भी बनायेंगे रात को आठ बजे से.....हैलो.....हैलो..... .....जी..... सर सर..... हाँ जीप के ड्राइवर से खबर तो हो सकती है। .....लेकिन सर.....सॉरी सर.....जीप तो दो साल से खराब पड़ी है।

6.2.4 पुलिस तंत्र

अपशब्दों का प्रयोग करना पुलिस के शब्दकोश का हिस्सा बनता जा रहा है। स्त्री हो या पुरुष सभी के लिए एक शब्दावली प्रयोग की जाती है। 'जलता हुआ रथ' नाटक में जब पागल बाबा पुलिस वाले से पूछता है कि वह क्या कह रहा है तो पुलिस वाला उसके साथ अभद्र व्यवहार करता है। और उसे कहता है – "बाबा: क्या कह रहा है तू ? सिपाही: हरामी। अंधा है। अपनी ड्यूटी दे रहा हूँ। तेरी माँ ट्रैफिक कंट्रोल कर रहा हूँ। बाबा: हरामी। अंधा है। मुल्क की ड्यूटी दे रहा हूँ तेरी मां ट्रैफिक जाम कर रहा हूँ।1 सिपाही: ओये बूढ़े। बैठ जा थड़े पर (उसे लाठी चुभोता है) अपनी माँ देखी है। लाठी नीचे से घुसेड़ूँगा और मुँह से निकालूँगा। तू जानता नहीं हम।"

6.2.5 सत्ता का बदलता स्वरूप

भारत में लोकतन्त्रिय शासन प्रणाली है, जिसमें जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा शासित होती है चुनाव के माध्यम से जनता अपने राजनेताओं को सत्ता की चाबी सोंपती है। परन्तु हमारे राजनेता मात्र सत्ता प्राप्त करने के लिए ही चुनाव लड़ते है। कुर्सी की लालसा ने उन्हें बेईमानी के पथ पर अग्रसर कर दिया है। ये नेता जनता में अपना विश्वास खो चुके हैं। 'आज की पुकार' नाटक में य ह दर्शाया गया है। दया: नमस्कार मंत्री जी मंत्रीजी: नमस्कार, कैसा चल रहा है... दया: जी, आपकी दया है... मंत्री जी: चुनाव आ रहे हैं। तुम्हारी मदद चाहिए... दया: हुक्म कीजिए सरकार... मंत्री जी: चुनाव, तुम जानते हो कि कितना टफ है, आजकल जीतना कितना कठिन हो गया है। बस पन्द्रह करोड़ की इंतजाम हो जाए तो अच्छा है। दया: पन्द्रह करोड़.... मंत्री जी: अरे, फिक्र मत करो... एक बार चुनाव जीत गया तो लक्ष्मी की ऐसी कृपा करवाऊँगा कि सोने का होटल बनवा सकोगे... दया: आप मुझे कम-से-कम एक सप्ताह तो दीजिए। मंत्री जी: ठीक है। ऐसा करना तुम मेरे फार्म हाऊस में आ जाना। में ®ने एक पार्टी रखी है। पार्टी का मजा भी लेना और माल भी ले आना। और हाँ.... उस पार्टी का सारा प्रबंध तुम्हारे होटल की ओर से होना चाहिए। हर बार तुमने ही योगदान दिया है। इस बार भी तुम ही देना। तुम्हारे साथ किये गये

वादे भी पूरे कर दूँगा....1 वास्तव में जनता के कल्याण व देशहित से इनका कोई सरोकार नहीं होता अपितु ये तो मात्र सत्ता पर कब्जा करना चाहते हैं। डॉ० सरिता वशिष्ठ के अनुसार "सत्ता का लोभ किसी भी व्यक्ति को साधु नहीं रहने देता है। सत्ता व्यक्ति को भ्रष्ट बनाती है। सत्ता प्राप्ति से एकाधिकार का भाव उत्पन्न होता है, इससे अहं उत्पन्न होता है। अहं की अधिकता भी सदैव विनाशकारी ही होती है। इसलिए सत्ता में आकर किसी भी व्यक्ति का ईमानदार रह पाना अत्यधिक कठिन है। भारतीय राजनीति का वर्तमान स्वरूप विकृत हो चुका है। झूठे आश्वासन, चुनावों में जनता का शोषण करना, अश्लील नारेबाजी करना, घटिया हथकंडों का प्रयोग करना आज के राजनीतिक हीरो लोगों के हथियार हैं। चुनाव में जीतने के लिए उनको सफेद झूठ बोलना आना चाहिए, जनता को मूर्ख बनाना आना चाहिए।

6.2.6 झूठे आश्वासन और भाषणबाजी

21वीं शताब्दी के नाटकों में राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह से प्रस्तुत किया गया है जैसे हमारे आस-पास कर्फ्यू लग जाता है। सारे शहर के लोकों का जीना मुश्किल हो जाता है जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। लेकिन जैसे धारा एक सौ चवालीस खत्म होकर कर्फ्यू घटता है तो नेता लोग हमदर्दी व आश्वासन भरे भाषण देने पहुंच जाते है। नेता लोग कहते हैं कि - "वी० आई० पी० - कहने दीजिए इनको। दुःख है, हमें बहुत दुःख है कि इतना सब कुछ हो गया हम इसकी मजिस्ट्रेट जाँच करा दगे। कुछ लोग - जाँच-वाँच से कुछ नहीं होता..... एक महिला - मरे तो जिन्दा होवना..... वी० आई० पी० - फिर भी जाँच तो करायेंगे, और दोषियों को दण्ड भी दगे। देखिए मजिस्ट्रेट साहब...इन मोहल्लों में..... ..पानी की व्यवस्था चुस्त-दुरुस्त करवा दीजिए। दूसरा वी० आई० पी० - में ® इस बात को एसैम्बली तक ले जाऊंगा।"1 जनता से सत्ता प्राप्त करने के लिए ये जनता से झूठे वायदे करते हैं उन्हें धर्म व जाति के सब्जबाग दिखाते है वास्तव में जनता के कल्याण व देशहित से इनका कोई सरोकार नहीं होता प्रभाकर क्षत्रिय के अनुसार "राजनीति कर्मियों की सामूहिक इच्छा शक्ति सत्ता को मिल-बांट

कर खाने भर के लिए है। यहां जनता हाशिये पर है - स्वार्थ के क्षणों में फुसलाने की चीज ! वह अपनी नियति में उतर आते हैं। 'सर्वसमर्थता' का अंधा नशा ऐसा कुंडलीनुमा ढांचा बनाता है। जहां सत्ता के किरदार गोल-गोल घूमते रहते हैं, जिससे जनता कुछ समय के लिए भ्रमित हो जाती है। भारत जब से स्वतंत्र हुआ है तब से आज तक यहां के नेता गरीब जनता को यही आश्वासन देते आये हैं कि शीघ्र ही गरीबी मिटाई जायेगी लेकिन आज तक भारतीय जनता की स्थिति यह है कि गरीब और अधिक गरीब होते जा रहे हैं राजनीति में भ्रष्टाचार व्यापारवाद को बढ़ावा मिल रहा है। 21वीं शताब्दी के नाटक भ्रष्टाचार में य ह प्रत्यक्ष चित्रित हुआ है। "रामवण: (गर्दन हिलाते हुए) हूँ....यही तो बात है। यमुना मामा जी अब व्यापार के साथ-साथ राजनीति में भी बाजार ढूँढ रहें हैं। रामवण: अच्छा पापा एक बात और बताओ। वैस्ट में नेता सत्ता में आ कमजोर हो जाते हैं। पर अपने यहाँ मोटे-ताजे क्यों हो जाते हैं? राम अवतार: यहाँ नेता राजनीति में व्यापार करते है। वहाँ नेता राजनीति में जिम्मेदार बनते हैं। "मनुष्य के बाहर और भीतर लालसा का अभूतपूर्व वर्चस्व आज का सच है। भीतर क्रूरता और बाहर हिंसा, भीतर साजिश और बाहर संबंधों का इस्तेमाल, भीतर संकीर्णता और बाहर अकेलापन"

6.2.7 भ्रष्टाचार

21वीं शताब्दी के आधुनिक दौर में मनुष्य के लिए तरह-तरह की चुनौतियाँ बढ़ रही हैं। शहर में आदमी अमन चैन के साथ सुख भोगते हुए रहना चाहता है जैसा कि भ्रष्टाचार नाटक में दिखाया गया है - रामवण के मन-मस्तिष्क में केवल दो ही धाराएं बहती है एक पढ़ाई की तो दूसरी पैसे की, पिता की लाचारी व माँ की झुंझलाहट उसे झकझोर देती थी। इसी झंझावत में कई बार सोचता था कि काश ! ये मामा, अपनी बड़ी-बड़ी गाड़ियों में उसके यहाँ नहीं आते। ये जब भी आते हैं घर में संतुलन बिगाड़ जाते हैं रामवण एक दिन मम्मी के साथ स्कूल जाते हुए आपसी वार्तालाप में कहता है "रामवण: मम्मी, माया जी की कोई गाड़ी ले लो न ? आपके भाई ही तो हैं। मम्मी: बेटा ऐसे कौन देता है ? शादी के बाद सबका

अपना-अपना घर परिवार हो जाता है।"1 रामवण रिश्ते बदलते हुए देख रहा था। समाज में पैसे की अहमियत इतनी बढ़ती जा रही थी कि आदमी की हैसियत उसी से तय होती थी। अब तो वह पढ़ाई भी पैसा कमाने के लिए करने लगा था। इस आधुनिकीकरण के दौर से आमजन प्रभावित है। उसने दुनिया को मंडी में तबदील कर दिया है। हर चीज क्रय की वस्तु बन गई। 20वीं शताब्दी में लगाए गए पौधे का महाकाय विष वृक्ष बन गया है। शोषण के नए-नए हथकण्डे अपनाये जा रहे है। गरीबों और कमजोरों को लूटने का नया तरीका ही यह आधुनिकीकरण है चाहे राजनीति दाव पच या आर्थिक परिस्थितियाँ हर समय आमजन पर वार होता है। 21वीं शताब्दी के नाटकों में य ह प्रत्यक्ष दिखाया गया है। 'फिर से जहाँपनाह' नाटक के पात्र चक्रवर्ती मुखिया पत्रकारों के समक्ष भाषण देता है कि हमारा राष्ट्र आधुनिकता के दौर में कितनी उन्नति कर रहा है चक्रवर्ती मुखिया जनता को प्रभावित करने के लिए अपने भाषण में कहता है कि - "चक्रवर्ती: (सरपट-भाषण मुद्रा में) प्यारे राष्ट्रवासिया! हमारा राष्ट्र शस्य-शयो में ला, मलयजशीतला है, फिर भी हम इसका दोहन नहीं कर पा रहें हैं। हमें प्रतिज्ञा करना है कि हम देश का दोहन करेंगे, इस पवित्र कार्य में पूरे विश्व को निमंत्रण दगे। वसुधैव कुटुम्बकम। हमें चौंसठ कलाओं और चौदह विधाओं का संरक्षण संवर्द्धन करना है। हमें सिर्फ भूमंडल तक नहीं रहना, मंगल तक जाना है। हमें क्रयशक्ति बढ़ाना है। हमारी प्रतिज्ञा है प्राण जाएं पर क्रयशक्ति न जाये, चाहे विदेशी उद्योग ही क्यों न बुलाना पड़े। हमें राष्ट्रीय विकास दर बढ़ाना है। वतन को बनाएंगे ताकतवर तेंदुआ की तरह इसी लिए तदुपत्ता को हमने राष्ट्रीय नीति बनाया है। हमें अपनी महान परंपरा पर गर्व है। हम इसे आगे बढ़ाएंगे। मेरा हाथ बटाइए राष्ट्र निर्माण में धन्यवाद नमस्कार। अपने भाषण से तो राजनेता अपने आप को समाज व देश का सबसे सच्चा हितैषी सिद्ध कर देते है, परन्तु इनकी वास्तविकता तो मात्र कुर्सी तक पहुँचने की होती है। तो वे गिरगिट की तरह रंग बदल लेते है। इस विषय पर डॉ॰ सरिता वशिष्ठ जी कहती है कि - "राजनेता भोली भाली जनता को सत्ता प्रेरित हेतु वोट लेने के लिए अनेक झूठे वायदे करते है। चुनावों के समय ऐसे-ऐसे आश्वासन जनता को दिए जाते हैं कि जो पूरे नहीं किए जा

सकते 'एक नेता यदि रोटी का आश्वासन देता है तो दूसरा नेता मतदाताओं को आवास की सुविधाएँ प्रदान करने का लालच देता है। नेताओं के ये आश्वासन जनता का शोषण करने का ही एक तरीका है। स्वयं को बखूबी पहचानते है। वे जानते है कि उनकी कथनी और करनी में बहुत अंतर है। इसलिए जनता का विश्वास बनाये रखने के लिए वे समय≤ पर भाषण द्वारा उन्हें आश्वासन देकर बहकाये रखते हैं।

6.2.8 वोट ब®क की राजनीति

21वीं शताब्दी के नाटककार स्वदेश दीपक के नाटक जलता हुआ रथ' में भिखारी झंडा सिंह और उनका परिवार फुटपाथ पर रहते है। नेता और उसके चमचे झंडा सिंह के पास वोट मांगने के लिए आते है नेता कहता है - "नेता: (बुढ़िया से) माता जी, आप सबके रहने के लिए जगह का इंतजाम हो.....। बूढ़ी: पिछली बार उस राजा के आदमी भी यही कहते थे। तुम लोगों को हमारी याद इलेक्शन से पहले आती है। जीते और भूले। नेता: राजा की बात मत कहो माता जी उसने सारे देश के लोगों को धोखा दिया। खुद उसकी पत्नी ने कोर्ट में केस किया था.....जो घरवाली नहीं संभाल सकता वो देश.....। बूढ़ी: (3 माह) हमारे लिए मकान बनेंगे। नेता: हां माता जी। अभी तो ट®ट लगवा दगे चुनाव जीतते ही सरकार से ग्रांट माँगेंगे मकानों के लिए। चमचा: (मुन्ना को देख) लघु उद्योग की फैक्टरी हम शुरू करवा दगे बैठे बिठाए कमाई। 21वीं शताब्दी के ग्लोबल व्यापी तकनीकी युग में मानव अपने विवेक के अनगिनत सपनों को पार कर विज्ञान की परम उन्नति के युग में आगे बढ़ रहा है। उसी तरह अनेक उपलब्धियाँ चुनौती भरा साहित्य नये-नये तर्क नीतियों को जन्म दे रहा हैं।

6.2.9 राजनेताओं का भ्रष्टरूप

आधुनिकता के इस दौर में हो रहे प्रशासकीय भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और उसमें पीस रही आम जनता को नाटक कारों ने अपनी रचनाओं द्वारा रेखांकित किया है। 'फिर से जहाँपनाह' नाटक में राजनेताओं

की असलियत पर प्रकाश डालते हुए बलवान कहता है - "बलवान - बच्चे को लेकर भागने वाले गुंडे पर जब बाप पिस्तौल तानता है तो गुंडा बच्चे को आगे कर देता है। उसी तरह ये लोग अपने पर खतरा आते ही देश को आगे खड़ा कर देते है। टेरिबल। इन सबको फाँसी होनी चाहिए। इस विषय पर सरिता वशिष्ठ जी कहते है कि "चुनाव में जो नेता सबसे अधिक धोखाधड़ी, मारपीट, बेईमानी करता है उसी को सबसे अधिक मत मिलते हैं। यह सत्य है कि यही स्थिति सदैव ही नहीं होती है। लेकिन अधिकांशतः यही स्थिति देखने में आती है। 21वीं शताब्दी के नाटकों में राजनीति को लेकर खड़े हुए सवालों, समस्याओं एवं उसके समाधान देने का प्रयास किया गया है। परन्तु राजनीति में परिवारवाद और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। एक व्यक्ति के चाहने से कुछ नहीं होता। "रामवण: (जाड़ी पीसते हुए) चाहने से कुछ नहीं होता। पालिटिक्स इतनी आसान नहीं है यहाँ। सभी पार्टियों में खानदानी कब्जे है। या तो टिकटें बिकती हैं या फिर रिश्तेदारों को, नहीं तो फिर अपने चेले-चपाटों को ही दी जाती हैं। इन पॉलिटिशियन ने गदर मचा रखा है। नेता बनते है। समाज सेवा के लिए। सेवा, समाज ही करने लगता है। लोग हाथ जोड़े इनकी कोठी, दफ्तर के बाहर खड़े रहते हैं। इतना ही क्या? इनके चमचों की देखा-देखी बेचारे वह भी इनके पाँव पकड़ते हैं। जैसे कोई अपराध कर रखा हो। 'लाल बत्ती जला शायरन बजाते हुए सड़क पर ऐसे चलते हैं देश जैसे उनकी सल्तनत हो और बाकी सब हम इनके गुलाम। कानूनी रेखा खिंचते हैं जैसे ये नेता उससे ऊपर हों, बाकी लोग उसके नीचे। सभी पार्टियाँ बकवास हैं। सब चोर हैं, ठग हैं, लूटेरे हैं, डाकू हैं.....?"1 भ्रष्टाचार नाटक में नाटककार नरेन्द्रपाल ने यह दर्शाया है कि राजनीति वास्तविकता में खोखली प्रवृत्ति में बदल गई है कि हर कोई सत्ताधारी बन अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता है।

6.2.10 चुनावी हथकण्डे

राजनेता चुनावों में जीतने के लिए कोई भी हथकण्डा अपनाने के लिए तैयार रहते हैं। समाज में हर प्रकार के तत्त्व विद्यमान रहते हैं। कुछ नेता ऐसे होते है जो बड़ी नम्रता से जनता से मतदान की अपील

करते हैं, वहीं दूसरी और कुछ ऐसे नेता भी है जो गुंडागर्दी, धमकी, घूस, पैसे आदि देकर वोट प्राप्त करते है। लोगों के प्रति झूठी संवेदना व्यक्त करते है। झूठे वायदे, झूठे आश्वासन, देकर राजनीति दलालों द्वारा प्रायोजित दंगे-फसाद राजनेताओं के चुनाव जीतने के चुनावी हथकंडे होते हैं। 21वीं शताब्दी के नाटक 'नया सवेरा' में कामिनी की जगह पार्टी पुरानी कार्यकर्ता व महिला मोर्चा की अध्यक्ष रंजना को टिकट दे देती है। तब कामिनी के समर्थक रंजना की उम्मीदवारी के विरूद्ध रैलियाँ निकाल कर नारे लगाते है। कृष्णकांत और रामबाबू रंजना के विरूद्ध मोर्चा निकालते हुए कहते हैं - कृष्णकांत: महेश जी ! आप निश्चिन्त रह। यहाँ आने दीजिए किसी भी रंजना-संजना को टिकट लेकर, हम उसे पछाड़ कर ही वापिस भेजेंगे, ताकि पार्टी को अपनी कमियों का एहसास हो सक। रामबाबू: चलो साथियों! अब और भी कार्य करने है। पहले अध्याय पद को तो हथियाओं। फिर इनसे निपटते हैं। क्षेत्र में हमारा राज है, हम देखेंगें कि कोई बाहर का प्रत्याशी आकर यहाँ अपने पैर फैलाता है।

6.2.11 मतदाता की स्थिति

कुछ दिनोंपरान्त टिकट कामिनी को न मिलकर रंजना को मिल जाती है, जिसे ये लोग बर्दाश्त नहीं कर पाते। उसके विरोध में क्षेत्र में एकाएक रैली का आयोजन किया जाता है, जिसकी मुख्य भूमिका रामबाबू निभाते है। रामबाबू: रंजना देवी ! हाय-हाय ! रंजना देवी ! वापिस जाओ, वरना हमसे मुँह की खाओ। गली-गली में शोर है, रंजना देवी चोर है। (नारे लगाते हुए बाजार से गुजरते हैं, तभी महेश सामने से आते हुए रामबाबू को रोकता है।) महेश: रामबाबू ! यह क्या हुआ ? टिकट यदि कामिनी जी को नहीं मिली और रंजना जी को मिली तो तुम लोगों ने विरोध में रैलियाँ निकालनी आरम्भ कर दीं । पार्टी से तो ये गद्दारी होगी ना? रामबाबू: हमने अपने अधिकारियों को यह दिखा देना है कि यदि हमारे ग्रुप को छोड़कर अन्य किसी को चुनाव टिकट देकर भेजा जाता है तो हम उलट-पलट भी कर देते हैं। महेश: मगर यह तो नाइन्साफी है, गलत है। रामबाबू: प्यार और युद्ध में हर चीज जायज हुआ करती है। हम भी

वहीं कर रहे हैं। में ® आपसे फिर मिलूँगा। "ऐसी स्थिति मन शासन के साथ न्याय हो पाता है। न जनता के। साथ ही शासन को उचित अधिकारी नहीं मिल पाता है और जनता को उचित अधिकार नहीं मिल पाते हैं।2 आज के दौर में अनेक तरह की चुनौतियाँ है, जिनका हमें प्रतिबद्धता के साथ सामना करना है इस स्थिति को बदलने के लिए एक जन-आंदोलन की जरूरत हैं, जिसमें नाटक कारों की भूमिका अहम होगी "साहित्य समाज के आगे-आगे चलने वाली मशाल है। इस मशाल को रचनाकार के सक्षम हाथों की जरूरत है, ताकि इससे प्रकाश फैले और अंधकार नष्ट हों। कहीं ऐसे न हो कि यह आग लगाने का उपक्रम बन जाए।

6.2.12 जाँच आयोग व कमेटियों की वास्तविकता

21वीं शताब्दी में नाटक के लिए सबसे बड़ी चुनौती पूंजीवादी व बाजारवाद के कारण तेजी से पनपती अपसंस्कृति के बीच नाटक में मनुष्यता को बचाकर मानव-मानव को मनोभूमि के एक उच्च धरातल पर खड़ा करना ही नाटककार का कर्तव्य होगा। भारतीय जनता स्वभाव से ही सीधी तथा भोली है। उसके सीधे पन व भोलेपन का लाभ हमारे राजनेता प्रत्येक पाँच वर्ष बाद उठा लेते है। 21वीं शताब्दी के नाटक 'कॉफी होम' में आम आदमी की स्थिति के विषय में प्रियंका कहती है कि चुनाव मतो नेता जनता को विकास का सपना दिखा देते है परन्तु वास्तव में जनता को गरीबी के नीचे धकेलते हैं। "प्रियंका - यह सच है कि देश ने हर क्षेत्र में प्रगति की है परन्तु यही नहीं कहा जा सकता कि इस प्रगति से देश के हर क्षेत्र ओर हर नागरिक को इसका फायदा पहुँचा है। पहले देश की आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाएँ अपनाई गई और कहा गया कि देश का विकास होगा तो हर नागरिक को इसका फायदा पहुँचेगा। This was trickle down theory और इसके आधार पर socialistic pattern of society की कल्पना की गई। और अब हम Market driven just society की कल्पना कर रहें हैं। और यह कहते हैं कि Market Society प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। परन्तु यह भूल जाते हैं कि Market forces केवल उन्हीं मांगो को

पूरा करती हैं जिन्हें पूरा करने के लिए लोगों के पास पैसा हो।..... और Market Economy गरीबों की जरूरतों को कैसे पूरा करेगी जिनके पास एक समय खाना खाने के लिए पैसे नहीं है ? चंदू - भाई हमारी सरकार ने तो गरीबों के लिए कई योजनाएं चलाई हैं और कोई भी भूखा नंगा नहीं रहेगा। प्रियंका - हां, लेकिन गरीब रेखा के नीचे ही रहेगा....और यह बेचारी रेखा न होती तो वह पता नहीं किसके नीचे रहता।"4

6.2.13 आम आदमी की स्थिति

सत्ताधारियों के शोषण का अधिक शिकार आम आदमी ही बनता है यदि कोई इनके विरूद्ध आवाज उठाता है तो उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह आम आदमी के भाग्य की बहुत बड़ी विडम्बना है कि सारी व्यवस्था आम आदमी के नाम पर होती है परन्तु उसका उपभोग नहीं कर सकता। इन सुविधाओं का भोग करता है वी° आई° पी° वर्ग खास वर्ग जिसकी सत्ता में जान पहचान है। 'कॉफी होम' नाटक में प्रोफेसर कहता है कि "प्रोफेसर: अभी कोई आपको इस कॉफी होम में मार भी जाए तो यह कानून कुछ नहीं करेगा। कुशाग्र: पुलिस है न इसके लिए.....पत्रकार: पुलिस ! पुलिस भी एक विशेष वर्ग की सुरक्षा के लिए है न कि आम नागरिक के लिए! आश्चर्य तो यह है कि समस्त व्यवस्था आम आदमी के नाम पर खास वर्ग के लिए होती है। आम आदमी तो दिखावे का मोहरा होता है। चुनाव होता है तो आम आदमी के लिए। मंत्रियों की संख्या बढ़ती है तो आम आदमी के लिए अदालतों की संख्या बढ़ती है तो आम आदमी के लिए। आम आदमी है कौन ? 21वीं शताब्दी की राजनीति को लेकर खड़े हुए अनेक सवालों, समस्याओं एवं उसके समाधान की राय देने का प्रयास 21वीं शताब्दी के नाटकों में किया गया है। इन नाटकों में राजनीति एवं उसके नियमों के तत्त्वों को लेकर भी कई दृष्टिकोण से आकलन किया है। राजनीति स्वार्थ व अवसरवाद की नीति है। इसलिए राजनीति में कोई किसी पर विश्वास नहीं करता। भ्रष्टाचार और राजनैतिक निरंकुशता ने इसमें अधिक घिनौनापन भर दिया है कि

‘प्रत्येक व्यक्ति आम-आदमी राजनीति से घृणा करता है। राजनीति में अब जीवन के आदर्श मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं है। वर्तमान राजनीतिक में भाषणबाजी द्वारा झूठे आश्वासन और झूठे वायदों से जनता को बहला-फुसलाकर कुर्सी प्राप्त करने में सफल हो जाते है। जनता चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती क्योंकि जनता के सामने साफ सुथरी छवि वाले राजनेताओं के रूप में कोई विकल्प नहीं है आम आदमी की विवशता राजनीति को नया रूप प्रदान करती है। पुलिस व प्रशासन सरकार के हाथ की कठपुतली बन गए है। प्रतिदिन होने वाले घोटालों से जनता को गुमराह कर जांच आयोग की कमेटियाँ बना दी जाती है। परन्तु कुछ समय पश्चात दोषियों को निर्दोष करार दिया है। यह स्थिति 21वीं शताब्दी के उस आमजन की है जो व्यक्ति राजनैतिक समाज से जुड़ा हुआ है।

निष्कर्ष

राजनीति जिसे राज करने की नीति कहते हैं। 21वीं शताब्दी में राजनेताओं की नीति यह है कि वह शासन व प्रशासन को अपनी इच्छानुसार चला रहे हैं। राष्ट्र हित को गौण रूप में रखा हुआ है। स्वहित प्रमुख बन गया है। राजनीति का मुख्य लक्ष्य प्रजाहित होता है परन्तु 21वीं शताब्दी में राजनीति का लक्ष्य प्रजाहित न होकर स्वहित है। आज समस्त नीति-नियम राजा की इच्छानुसार व सुविधानुसार बनाए जाते हैं। 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों में राजनीति का बदलता स्वरूप हमारे सामने आया है। राजनीति, राजनेताओं का एक पैतृक पेशा बन गया है। राजनीति मधन का बोल बाला दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। धन बली व अपराधी लोग राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं। राजनीति में हमारे सामने यह संकेत आया है कि इसमें अच्छे- अच्छे कलाकार, फिल्म कार, खिलाड़ी इसमें प्रवेश कर रहें हैं। इसके अलावा तमाम स्वार्थी लोग इसमें घुसे हुए हैं। एक तरफ हम गुंडागर्दी, आतंकवाद, नक्सलवाद अपराध जगत से जूझ रहें हैं। वहीं दूसरी और हम भ्रष्टाचार रूपी दानव से परेशान हैं। भ्रष्टाचार को राजनैतिक व प्रशासनिक संरक्षण प्राप्त है। क्षेत्रीय राजनीतिक दल-दिन-प्रतिदिन बढ़ रहें हैं। अंग्रेजों की जिस नीति

'फूट डालो और राज करो' से परेशान थे। हम 21वीं शताब्दी में उस नीति का अनुसरण कर रहें है। हमारे देश भक्तों , क्रांतिकारियों ने जिस आजाद भारत का सपना देखा था। वह सपना सिर्फ सपना बनकर रह गया है। राजनैतिक लोग पद, पैसा, भोग व आनंद की फिराक में घूम रहें हैं। आम आदमी को 'वोट' में तबदील कर दिया गया है। 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटक कारों में स्वदेश दिपक 'जलता हुआ रथ', किशोर कुमार सिन्हा, 'धारा एक सौ चवालीस', प्रभाकर श्रोत्रिय, 'फिर से जहाँपनाह', नरेन्द्रपाल 'भ्रष्टाचार', महेन्द्र शर्मा सूर्य 'नया सवेरा', शशि किरण 'कॉफी होम' आदि ने 21वीं की बदलते राजनीति स्वरूप को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इन नाटक कारों ने आमजन को रास्ता दिखाकर राष्ट्र को वर्तमान का सच दिखाकर सभी का मार्ग प्रशस्त किया है।

6.3 21वीं शताब्दी के नाटकों का आर्थिक स्वरूप

5.3.1 अर्थव्यवस्था और राजनीति वर्तमान अर्थव्यवस्था राजनीतिक दलों के हाथों में मोहरा बन गई है। प्रत्येक दल अपनी अलग आर्थिक विचारधारा रखता है। कोई अमेरिका की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का समर्थन करता है। तो कोई चीन की साम्यवादी अर्थव्यवस्था को उचित ठहराता है। आम आदमी की जरूरतों का सही मायने में मूल्यांकन कोई नहीं करता गरीबी और गरीब व्यक्ति दोनों राजनीतिक खेलों के मोहरें है। इससे राजनेताओं की अपनी खिचड़ी तो पक जाती है। लेकिन गरीब भूखा ही रह जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की जितनी जनसंख्या थी, उतने लोग आज गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। भारत में ग्रामीण गरीबी का प्रतिशत शहरी गरीबी का लगभग दो गुना है।

6.3.2 आर्थिक विषमता

आर्थिक विषमता के कारण गरीब और अमीर की एक ऐसी खाई पड़ गई है कि जिसके कारण गरीबों को जानवरों जैसा जीवन जीने पर विवश होना पड़ रहा है। हमारे नेता भी अमीर-गरीब की इस खाई को कम

नहीं करना चाहता है ताकि आम आदमी को राहत मिल सके इस पर मुख्यमंत्री चक्रवर्ती (फिर से जहाँपनाह) नाटक में उसे ऐसा करने से रोकते हुए कहता है कि - "वर्मा: नए साल का बजट अनुमोदन के लिए लाया हूँ। चक्रवर्ती: हाँ बताएँ। वर्मा: इस बजट में कम्प्यूटर, टी॰ वी॰ के साथ, रेशमी कपड़े, शराब, सिगरेट जैसी विलासिता की चीजों पर सौ प्रतिशत टैक्स बढ़ाने का प्रस्ताव है, इससे देश को पाँच हजार करोड़ की आय होगी, जिसे हम..। चक्रवर्ती: (व्यंग्य) यतीमों मबाँ टगे। वर्मा: एहाँ, नहीं, श्रीमान, योजनाओं में .....। चक्रवर्ती: (कुछ तैश में) आगे....आगे बताओ.....। वर्मा: जो जीवन-रक्षक पदार्थ हैं, जैसे नमक गेहूँ, तिलहन, मोटा कपड़ा, मिट्टी का तेल आदि इन पर टैक्स से साठ प्रतिशत छूट.....। चक्रवर्ती: (सव्यंग्य) इससे कितनी आय बढ़ेगी ? वर्मा: केवल तीस करोड़ का घाटा होगा। परंतु गरीब जनता को कई गुना राहत मिलेगी। चक्रवर्ती: इतनी मामूली-सी राहत के लिए तुम विलासिता पर टैक्स बढ़ा रहे हो। वर्मा: हमारी सरकार की नीति है गरीबी-अमीरी की खाई को कम करने की !"1 इस नाटक में मुख्य मंत्री चक्रवर्ती कहता है कि अमीरी-गरीबी भगवान ने बनाई है। ऊँच नीच तो भगवान ने बनाया है "वर्मा: कल ही तो आपने भाषण दिया था कि.....। चक्रवर्ती: दिया ही था न ! किसी का कुछ लिया तो नहीं ! भाषण तो हमें देना ही पड़ता है ! पड़ता है कि नहीं ? वर्मा: लेकिन गरीबों के बारे में .....। चक्रवर्ती: अच्छा वर्मा जी, जरा विलासिता को परिभाषित कीजिए! अरे भैया, जिसे रोटी नहीं मिलती, उसके लिए रोटी भी विलासिता है। है कि नहीं ? मंत्री जी, जमाना बैलगाड़ी से सुपरसॉनिक तक पहुँच गया और आप हैं कि बैलगाड़ी हाँक रहें हैं। 1. प्रभाकर श्रोत्रिय, 'फिर से जहाँपनाह', पृ॰ 205 233 (चारों और देखकर) बताओ कहाँ है गरीबी ? हमतो कहीं नहीं दिखती। वर्मा: हाँ माननीय यहाँ तोऽऽ.....। चक्रवर्ती: भगवान पर भरोसा रखो! करतार ने दुनिया ही ऐसी रची है, ऊँच-नीच तो रहेगी ही। पापी दंड भोगोगे, और पुण्यात्माओं को दंड देने वाले हम कौन ? विधाता के न्याय में बाधा डालने वाले....।"1 देश में आर्थिक विषमता तो प्राचीन काल से रही है। जरूर कुछ समानता के आसार देखने को मिलते हैं। जब ब®का, मिलों का राष्ट्रीकरण दिन-प्रतिदिन किया जा रहा है। 21वीं शताब्दी

के नाटक कारों ने आर्थिक विषमता के कारण हो रहे अन्यायों का खुलकर चित्रण किया है। जो समाज में रंगमंच के माध्यम से अधिक जागरूकता पैदा कर सकते है। डॉ॰ सरिता वशिष्ठ जी कहती है कि "केवल अर्थ का अभाव ही एक ऐसा तंत्र है जिसमें हमारे संपूर्ण नैतिक जीवन-मूल्यों का विघटन किया है। जिसका पेट भूखा है, वह क्या आदर्श की बात करेगा क्या नैतिकता की बात करेगा और क्या मूल्यों की बात करेगा उसे केवल दो वक्त की रोटियों से वास्ता है इनके लिए उसे सभी आदर्शों को कुचलना पड़ेगा।

6.3.3 गरीबी

गरीबी के कारण निर्धनों की बहू-बेटियों की इज्जत सेठ साहूकार या जमीं दार लूट लेते है। हृषीकेश सुलभ के नाटक (अमली) में बिहार जैसे प्रांत में आज भी लोग रोजगार की तलाश में दूसरे प्रांतों में चले जाते है और पीछे उनके परिवारों में केवल औरत ही रह जाती है। कुछ धनाढ़य लोग उन्हें अपना शिकार बनाना चाहते है। वे उन्हें अपनी पांवों की जूती समझते है। इस रचना के नाटककार ने नारी के शोषण के विरूद्ध बोलने की शक्ति दी है। 'अमली' नाटक की मुख्य नारी पात्र हैं वह महादेव राय साहूकार का आधी रात को उसके घर आने पर विरोध करती हुई कहती है कि - "अमली: मालिक! उतनी रात में आप हमरे अँगना में आए हैं, गाँव के लोग का कहेंगे? आप हियाँ से चल जाएँ सरकार। हमरी आबरू भी बिगड़ेगी और आपका मान-मरजाद भी। लोग दस बात बोलेंगे। महादेव राय: हमरे मान-मरजाद की फिकर छोड़ तू। एहि गाँव में कवनो ना जनमा है। जो जीभ हिलावे। पहिले ई बता, तू कहिया से आबरूवाली हो गई ? एतनी भारी इज्जत कहिया से हो गई तुम्हारी ? बचना के साथ रास रचाती है, तो इज्जत आबरू का डर ना लगता है ? अमली: मालिक, हम गोड पर गिरते है। झूठ बात हमरे माथे पर थोप के हमरा धरम मत बिगाड़िए। 21वीं शताब्दी के नाटकों में नारी के विभिन्न रूपों की विवेचना की गई है। नारी आज सुशिक्षित हैं। वह प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्र है। प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कदम से कदम

मिलाकर नारी आज आगे बढ़ रही है। "आधुनिक युग में आर्थिक दृष्टि से हमारे देश में सदियों से चले आ रहें दो वर्ग अमीर और गरीब के बीच एक अन्य वर्ग का भी उदय हुआ है। यह वर्ग 'मध्यम वर्ग' के नाम से जाना जाता है। इस वर्ग की स्थिति और भी अधिक दयनीय है। यह वर्ग न तो बिल्कुल श्रमिक वर्ग की भांति ही जी सकता है। और न ही अमीरों की भांति जी सकता है। इस वर्ग से हमारे समाज में कुछ विशेष ही अपेक्षाएं रखी जाती है। जिनमें से प्रायः यह ध्यान में रखा जाता है किसी की भले ही आय कम हो उसका स्तर ऊँचा होना चाहिए।"1

6.3.4 बेकारी की समस्या

बेकारी की समस्या ने आज अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। बेकार नवयुवक चिड़चिड़ा होकर उद्दण्ड प्रवृत्ति का हो जाता है उन्हें पूरी करने और पाने के लिए वह जल्दी ही अनैतिक मार्ग पर भटक जाता है।2 उच्च शिक्षा प्राप्त किए हुए जब युवाओं को रोजगार नहीं मिलता तो वे खर्च चलाने के लिए छोटे-मोटे कामों को अपना रोजगार का साधन बना लेते हैं। सकुबाई नाटक में एक लड़की घर-घर जाकर डिर्टजट की मार्किटिंग करती है उसे देखकर सकुबाई दंग रहती है। "लड़की: मैडम दरवाजा खोलिए। हम लोग सुपर हाईट डिटर्जेन्ट कम्पनी की तरफ से आए है। वॉशिंग पाउडर का डैमोस्टेशन देना है। सकुबाई: नहीं बाबा! साहब, मेम साहब बाहर गए है। मेरे को नहीं लेना है। लड़की: लेने को कौन बोलता है! कम-से-कम दरवाजा तो खोलिए, हम फ्री में देके जाएंगे। सकुबाई: नहीं बाबा नहीं लेना है। (बड़बड़ाती हुई अन्दर आती है। क्या ये लोग फ्री में देकर जाएँग। कपड़ा क्या पहने थी वो इतना टाइट। टाइट याने एक दम टाइट। ये पैन्ट के अन्दर घुसी कैसे होगी? क्या ये लोग उलटे-सीधे कपड़े पहनकर घर-घर घूमते रहते है। (सोचकर) पर घर-घर तो हम लोग भी घूमते है। इसकी भी कोई मजबूरी होगी.....पर ये तो पढ़ी लिखी होगी बारहवीं चौदहवीं .....हम तो एकदम अनपढ़ है। .....ऐ

देवा.....क्या जमाना आ गया है। पढ़े लिखे लोग भी घर-घर घूमते हैं और अनपढ़ भी। चलो इस बात में तो हम लोग बराबर हुए।

6.3.5 महंगाई

महंगाई केवल वस्तुओं की ही नहीं बढ़ रही शिक्षा भी इससे अछूती नहीं रह गई है। शिक्षा आज एक व्यापार बन गई। साँच कहूँ तो.....नाटक में लोकगाय क और विदूषक कॉन्वेंट स्कूलों की महंगी शिक्षा की चर्चा करते हुए कहते हैं कि - "लोक गायक: अरे बुद्धू, नाटक कोई भेड़-बकरी है क्या ? यह है कला.....बड़ी-बड़ी शिक्षाएँ होती हैं इसमें , कोरा खेल-तमाशा नहीं होता। विदूषक: तो नाटक-नौटंकी क्यों करते हो? पाठशाला खोल लो बापजी ! लोक गायक: खोलेंगे तो पाठशाला क्या' कान्वट' खोलेंगे। जहाँ कान ही क्या, आँख, नाक और दिमाग भी गिरवी चले जाएँ। विदूषक: (हो-हो कर हँसता है) भली कहीं, घणी चलेगी दुकानदारी ! लगे भिक्षा, दगे शिक्षा। खैर छोड़ो यह पचड़ा, करो नाटक तगड़ा ! हाँ, आप क्या कह रहे थे.....वगैरा.....! 21वीं शताब्दी के नाटकों में आर्थिक विषमता को दर्शाया गया है भारतीय समाज में आर्थिक विषमता का विस्तार खूब हुआ है। शासन तंत्र और पूंजीपतियों के मध्य चल रहे अप्रत्यक्ष संवादों ने आम आदमी का मूल्य दो कौड़ी का कर दिया है। आज की पुकार नाटक में ए क औरत अपने मकान मालिक से रहम की भीख मांगती हुई कहती है। औरत: जरा तो रहम कीजिए, इंसानियत के नाम पर... मकान मालिक: बातें न बना, पैसा रख। औरत: हम सही समय पर मकान का किराया देते हैं कि नहीं । मकान मालिक: तू कह अपने खसम को कि... औरत: महँगाई इतनी ज्यादा है कि पहले क्या और निचोड़े क्या। मकान मालिक: (सामान उठाकर बाहर फकता है) आदमी: देखो, में ® गद्दारी नहीं कर सकता। में ® कैसे बिजली का कनेक्शन तुम्हें दे दूँ (रुककर) यह गैरकानूनी है। कल पकड़ा गया तो कौन जिम्मेदार होगा। मकान मालिक: तू होटल में काम करता है तो ऐसा कर... मुझे रोज एक पऊवा लाकर दे, (जोर से) नहीं तो घर खाली कर। औरत: नहीं, हम गलत काम नहीं करेंगे।

(सामान बाहर फकने की आवाज, रोने-चीखने की दर्दनाक डरावनी आवाज उन आवाजों से यह स्वर निकल रहा है कि किसे अपनी रक्षा के लिए पुकार) (बत्ती बुझती है।)1 वर्तमान नाटक कारों ने अपने नाटकों में प्रमुख रूप से नौकर पेशा वर्ग की बेईमानी, रिश्वत-घूस, सिफारिश, आर्थिक आत्मनिर्भरता, निर्धनता-गरीबी और आर्थिक भ्रष्टाचार, महंगाई आदि समस्याओं को लेकर ताना-बाना बुना है।

6.3.6 रिश्वत खोरी

रिश्वत हमारे समाज में बहुत गहराई तक पहुँच गई। इसके कारण आर्थिक व्यवस्था का संतुलन खराब हो रहा है रिश्वत खोरी से समाज को दोहरा नुकसान होता है। इससे एक तो आयोग्य व्यक्ति अपना कार्य करवा जाता है। 21वीं शताब्दी के नाटक 'आज की पुकार' में मुख्य भूमिका होटल की होती है। जब वह बन कर तैयार हो जाता है तो उसको बनाने वालों पर बड़ी मुसीबत आ जाती है दया निधि ग्रुप ऑफ इंडस्ट्रीज के देश भर में बहुआयामी विकास के साथ-साथ पॉलिटिक्स पार्टियों के बुरे प्रभाव पड़ने लग जाते है। जिसमें सबसे बड़ा प्रभाव रकम लेन-देन का बनता है। जिसमें मि° दया निधि, मि° गंगाधर, मि° रामदेई तथा सलाहाकार मि° सुख देव कुमार की दूरदर्शिता के बुरे परिणाम सामने आते हैं। दया जी कहते हैं: दया: जी अच्छा, पर मि.... पी°ए°: दमानी। दया: मि° दमानी जी, दस पेटी किस चीज की बनी हुई... लकड़ी की, टिन की... और उसका साइज। पी°ए°: पेटी का अर्थ नहीं समझते... दया: पेटी का मतलब बक्सा, सन्दूक ही होता है, न... पी°ए°: (हँसता है) बरखुरदार, दस पेटी का मतलब होता है (रुककर) दस लाख... तुम परसों तक तैयार रखो। फोन रख देता है। (यह सुनते ही, दया सन्न हो जाता है। उसके बोलने-सुनने की शक्ति खत्म हो जाती है। तहलका मच जाता है। वे सारे के सारे घबराहट के मारे तेज-तेज कदमों के चलते हुए कक्ष के चक्कर काटते हैं, फिर फोन बजता है। पी°ए° की आवाज सुनाई देती है।) पी°ए°: मि° दया निधि, नेता जी का कहना है कि आपके होटल में ही ठहरेंगे, वहीं ले लिया जाएगा। दया: (घबराई हुई आवाज में) सर, कैसे इतने का... पी°ए°: सात सितारा होटल चला

रहे हो कोई सराय नहीं ... कमरे के टेरिफ तिगुने कर दो, दो दिनों में आ जाएगा। (अभी फोन रखा ही था कि शिक्षा मंत्री जी का फोन आ गया।) मंत्री जी: अरे दया, भाई कैसे हो...? दया: (लड़खड़ाई आवाज में) जी थोड़ा अस्वस्थ हूँ... मंत्री जी: डाक्टर को दिखा कर दवा दारू कर लो। (रुककर) में ®ने इसलिए फोन किया कि तुम्हारे इलाके में ए क महिला कॉलेज खोल रहे हैं और उसमें दया निधि का नाम और तुम्हारे पार्टनरो के नाम तो अवश्य होने चाहिए (सब बड़े खुश हो रहे हैं) में ® चाहता हूँ कि एक करोड़ की छोटी रकम अभी दे दो, फिर आगे जब चाहिए होगा तो माँग लगे। दया: कब तक...? मंत्री जी: जब चाहो, सुविधानुसार... (फोन बन्द हो जाता है)"1 दूसरा रिश्वत लेने वाला व्यक्ति उस पैसे का दुरूपयोग करता है। इससे समाज में आर्थिक व सामाजिक असंतुलन पैदा हो जाता है। "एक बार रिश्वत का पैसा जब जेब में आया कि व्यक्ति का ईमान डोल जाता है, शराब का नशा तो आसानी से उतर भी जाता है, रिश्वत का नाश ऐसा है जो कभी भी नहीं उतरता। यह प्रायः विभागों के छोटे से लेकर बड़े अधिकारी तक का शौक है। 21वीं शताब्दी के नाटककार दया प्रकाश सिन्हा के नाटक 'इतिहास चक्र में बाबू रिश्वत लेते पकड़ा जाता है। तो वह उच्चाधिकारी कुबेर की शरण में पहुंच जाता है। और डरता है कि यदि उसके विरूद्ध जांच हुई तो वह सब का नाम बता देगा। इस पर कुबेर बाबू से कहता है। "कुबेर: आखिर मामला क्या है ? बाबू: सेठ साहब, इनक्वायरी होने जा रही है। कमेटी बैठ गई है। अब बताइये, बीवी बच्चों के लिये चार पैसे कमा लिये, तो उससे किसी साले का क्या बिगड़ गया ! अच्छा, कहा सुना माफ कीजियेगा। बहन जी, रस्सी लाइये न। कुबेर: में ® इसमें क्या कर सकता हूँ? बाबू: आप कर ही क्या सकते हैं। सब कुछ तो में ®ने ही किया है। इनक्वायरी होगी तो क्या वह लोग बचे रह जायेंगे जिनको फायदा हुआ है। (कुबेर घबरा कर उठ खड़ा होता है।) बाबू: रिश्वत लेना गुनाह है, तो रिश्वत देने वाले को भी तो सजा मिलती है। कुबेर: यह इनक्वायरी नहीं हो सकती। इनक्वायरी बैठाने वाले भी तो नहीं बच सकेंगे। बाबू: सेठ साहब, कमा इतना लिया, मगर रहे भोले के भोले। इस इन्क्वायरी में हम जैसे छोटे आदमी मारे जायेंगे या आप जैसे पैसे वाले। हुकूमत जिसके पास है उसका कुछ नहीं होगा। आखिर

इनक्वायरी करने वाले भी तो आदमी है। कुबेर: (दृढ़ शब्दों में) यह इनक्वायरी नहीं होगी। तुम जाओ। बाबू: जाता हूँ। मगर कहे जाता हूँ कि अगर पकड़ा गया तो इसी कमरे में फांसी लगाऊँगा। बहन जी रस्सी तैयार रखियेगा। फांसी आपके हाथों से पहनूंगा। रिश्वत लेने के लिए जब तक कड़े दण्ड प्रावधान नहीं होगा तब तक यह कलंक समाज से मिट नहीं सकता जहाँ एक और नारी कार्य करती है। वहां पर उससे अधिक से अधिक कार्य करवाया जाता है। वहीं नारी के शरीर पर भी वासनात्मक दृष्टि रखी जाती है।

6.3.7 अर्थ का दुरुपयोग

21वीं शताब्दी में समाज रिश्वत खोरी ओर घोटालों से भरा हुआ है। एक नवजात शिशु को दी जाने वाली सुविधाओं से लेकर वृद्ध व्यक्ति को मिलने वाली पेंशन तक में सभी जगह घोटाले नजर आते हैं। चाहे सरकारी कार्य या फिर निजी कार्य सही कारण है। हमारा देश घोटालों का देश है। 21वीं शताब्दी के नाटक 'अलख आजादी की' नाटक में विदूषक विभिन्न घोटालों बाजी की जयजयकार करते हुए कहता है:- "सभी: नमो नमः। विदूषक: इंजीनियर-ठेकेदार। सभी: नमो नमः। विदूषक: गुंडा-माफिया.... सभी: नमो नमः। विदूषक: घपला-घोटालों सभी: नमो नमः। विदूषक: हवाला-बवाला..... सभी: नमो नमः। विदूषक: ट्रांसफर-पोस्टिंग..... सभी: नमो नमः। विदूषक: भाई जी चारा..... सभी: नमो नमः। विदूषक: परमाणु परीक्षण..... सभी: नमो नमः। 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक तक जो नाटक आए हैं, उनमें राजनीति, धर्म, संस्कृति, अर्थ व्यवस्था, सामाजिक जीवन मूल्य, स्त्री पुरुष का संबंध, वैज्ञानिकता के कारण आए बदलाव आदि प्रसंगों को रंगमंच पर दर्शाया उनका व्यापक प्रभाव समाज पर डाला है। इन नाटकों में जहां जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है, वहीं जीवन का आदर्श रूप भी देखने को मिलता है। सदुपयोग कम दुरूपयोग अधिक हो रहा है। धन के दुरूपयोग के कारण भ्रष्ट, अर्थ आधारित सम्बन्ध विभिन्न समस्याएँ विभिन्न घोटाले भ्रष्ट राजनीति गरीबी, बेरोजगारी भिक्षा वृत्ति बेकारी आदि

समस्याएँ समाज को अपने आप में फांसती जा रही है। इस कारण भारत की आर्थिक स्थिति और अधिक कमजोर हो गई है। 21वीं शताब्दी के नाटक 'आज की पुकार' के पात्र दया के मन में विचार चल रहे हैं जिन्हें दर्शक सुन सकते हैं। दया का मन: दया... यह तो ऐसी बात हुई कि दर्शकों के समक्ष कपड़े उतारते रहने में जिसने अगुवाई ली है, ऐसी एक छैल-छबीली अभिनेत्री ने ससर बोर्ड को सोचने पर मजबूर कर दिया है। ससर बोर्ड से उसका यह कहना है कि आप लोग थियेटरामें उमड़ रहे दर्शकों के मिजाज को उनकी रुचि को पहचानना सीखो। कैसी फिल्म लगने पर हाउस फुल जाते हैं। यह देखने के लिए अपनी आंखों को और तेज करो। ऐसे युवक जिनके कंधोपर देश का भविष्य है, ऐसे युवक कैसी फिल्म देखना चाहते हैं। यह समझने के लिए अपनी बुद्धि को और तीक्ष्ण बनाओ। सुख देव: दया भाई, आपके मन में उठने वाले सवाल सब ठीक हैं, पर आपको धीरे-धीरे सब समझ आ जाएगा माना कि आदर्श के तौर पर आंखों के समक्ष रखने के लिए राम और सीता, हरिश्चंद्र-तारामती, सीत सावित्री, भक्त प्रह्लाद ठीक है किन्तु जीवन का आनन्द लूटने के लिए तो ये सब आउट ऑफ डेट है, बेकार है... परमानंद: अब क्या कर... सुख देव: देना चाहिए... आखिरकार आप लोग तो प्रजा के प्रतिनिधि हो ना उनके सुख से सुखी और उनके दुख से दुखी..."1 21वीं शताब्दी के नाटकों को रंग मंचीय रूप देकर नाटकों के विभिन्न उदाहरणों द्वारा भारत की वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों को व्यक्त करने के सशक्त प्रयत्न किये गये हैं। यही एक ऐसी विधा है जो जन साधारण को गहराई से प्रभावित करती है।

6.3.8 शिक्षित व बेरोजगारी

बेरोजगारी एक विश्व समस्या बनकर हमारे समकक्ष खड़ी है। विश्व का प्रत्येक देश इस समस्या से किसी न किसी रूप में संघर्ष कर रहा है। लोग बेरोजगारी के कारण अपने मूल निवास को छोड़कर रोजगार की तलाश में शहर दर शहर धक्के खा रहे हैं। बेरोजगारी से अभिप्राय ऐसी अवस्था से है जिसमें ए क व्यक्ति जो किसी कार्य को करने में समर्थ है परन्तु उसके पास काम करने के अवसर का अभाव है।

अन्तर राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार बेरोजगारी में उन सभी व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो रोजगार पाने के इच्छुक हैं किन्तु उसे पाने में असमर्थ है भारत जैसे विकासशील देशों में य ह समस्या और अधिक विकराल रूप धारण कर रही है क्योंकि भारत में जनसंख्या विश्व में दूसरे नंबर पर है और उसके मुताबिक रोजगार के अवसरों का अभाव है। बेरोजगारी मनुष्य के आत्मविश्वास को समाप्त कर उसमें हीनता को जन्म देती है। वह अपने आप को अर्थव्यवस्था पर बोझ समझता है। बेरोजगार व्यक्ति राष्ट्र के विकास में अपना कोई योगदान नहीं दे सकता। प्राचीन काल में बेरोजगारी की समस्या तो थी परन्तु वह अत्यन्त सीमित थी। भारत एक कृषि प्रधान देश होने के कारण यहाँ किसानों की संख्या अत्यधिक थी परन्तु भारत 21वीं शताब्दी के इस वैश्वीकरण/मशीनीकरण के दौर में कृषि से काफी पिछड़ गया है। आजकल के शिक्षित युवा वर्ग को खेती करना पिछड़ेपन/गंवारू होने का सूचक लगता है। मशीनीकरण के युग में मजदूरी लगभग खत्म हो गई है क्योंकि उनका स्थान मशीनों ने ले लिया है। मजदूरी न होने के कारण व्यक्ति के पास कोई काम नहीं हैं पश्चिमी देशों की तरह वे भी सूटड-बूटड रहना पसंद करते हैं महा नगरीय प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। "रामदेई: दया भाई... दया भाई... बड़ा अनर्थ हो गया... किशनू बढ़ई का बेटा, जो नौकरी के लिए शहर ड्राइवरी करने गया था, उसे किसी खून के इल्जाम में उसके मालिक ने जेल करवा दिया है। समवेत: ऐसा कैसे... उसके बाप का राज है... (हाहाकार मच जाता है। पीछे से माँ के विलाप करने के दारुण स्वर सुनाई देते हैं। हाय... मेरा बच्चा... कोई मदद करो...)"1 मनमुताबिक काम न मिलने पर या तो काम करते ही नहीं या फिर कम समय में अधिक धन कमाने की लालसा में गैर कानूनी काम करते है। घोटाले करते हैं, चोरी करते हैं, कहने का अभिप्राय है कि बेरोजगार व्यक्ति कर्तव्य विमूढ़ होकर घूमता रहता है। बेरोजगारी के कारण अपराधों को बढ़ावा मिल रहा है। "विकास आधुनिकीकरण, सोंदर्यीकरण और पावर प्राप्ति के नाम पर मूल समस्याए एवं आम आदमी का दर्द अपेक्षित है। 21वीं शताब्दी में भूमंडलीकरण व वैश्विक उदारीकरण के फलस्वरूप कम्पयूटरीकरण तथा तकनीकी करण के कारण बेरोजगारी अपना भयंकर

रूप धारण करती जा रही है। पुराने कारखाने कई तकनीक आने कारण बंद हो रहे है। उन कारखानों में काम करने वाले कर्मचारी बेवक्त बेकारी का सामना करते है। नई पीढ़ी भी बेरोजगारी की समस्या से त्रस्त है। परन्तु शिक्षा का महत्व बताते हुए 'आज की पुकार' नाटक में मास्टर जी कहते है "दया निधि: आप यदि शहर जाकर किशनू के बेटे रामप्रकाश को नहीं छुड़ाते तो... (रामलाल, गंगाधर भी साथ हैं) मास्टर जी: इसीलिए तो कहता हूँ तुम सब पढ़ना-लिखना सीख लो। सब अनर्थों का मूल अशिक्षा और लोभ है। रामप्रकाश फँसा कैसे?... लोभ और अशिक्षा के कारण। 1. राधेश्याम शर्मा (संपादकीय) हरिगंधा पत्रिका, मार्च से उद्धृत (अंक 151 हरियाणा साहित्य अंक 1994 पंचकुला मार्च 2007) रामलाल: पढ़-लिख, लिख-पढ़ के अच्छा-सा राजा बेटा बन... जाता है... नहीं तो मेरी तरह जी तोड़ मेहनत करते रहोगे फिर भी पैसा नहीं होगा। में ® चिन्ता में रहता हूँ। (किसान की बात सुनकर सब गम्भीर हो जाते हैं।) मास्टर जी: आप सब चिन्ता छोड़िए और पढ़ाई पर ध्यान दीजिए। जो समय चिन्ता में जाता है, वह कूड़े दान में डाले गये कचरे की तरह होता है। जो चिंतन में जाता है, वह सीधा तिजोरी में जाता है। इसे आज की भाषा में समय प्रबंधन कहते हैं। इसको तुम सब अच्छी तरह जानते हो। समय पर बीज डालना, समय पर दूध दुहना आदि। वे चाहे कितनी भी पढ़ाई करलो परन्तु उन्हें उनके सुखद भविष्य की कोई गारंटी नहीं दी जाती। आज शिक्षित बेरोजगारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बेरोजगारी को परिभाषित करते हुए वीरेन्द्र नाथ सिंह कहते हैं। "वह दशा जिसमें ए क व्यक्ति जो काम करने योग्य है और प्रचलित मजदूरी की दर पर काम करने के इच्छुक है, फिर भी उसे काम नहीं मिलता। बेकारी की इस व्यवस्था के अन्तर गत वे व्यक्ति शामिल नहीं हैं जो शारीरिक या मानसिक रूप से बीमार हैं और काम करने के योग्य नहीं हैं, इनमें बीमार, बूढ़े और अपाहिज आते हैं। वर्तमान सदी में शिक्षित बेरोजगारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आज सौ अंकों में से सौ अंक लेकर भी रोजगार की कोई गारंटी नहीं है। "मास्टर जी: स्वगत में इनसे शिक्षा की बात तो करता हूँ पर आज बढ़ती शिक्षा की समस्याएँ, छात्रों की कठिनाइयाँ... माता-पिता की मनोवैज्ञानिक दशा देखते हुए कैसे कहा जा सकता है

कि देश उन्नति कर रहा है... मध्य वर्ग के लिए उच्च शिक्षा संकट है। तभी तो में ® गांव में ही पड़ा हूँ... में ®ने भी कितना झेला... शिक्षा में प्रयोग और परिवर्तन सदा होते हैं। गुणात्मक विकास का लक्ष्य बहुत दूर ही रहा। शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मंडल, शिक्षा आयोग, अन्तर राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन गठित हुए, लेकिन शिक्षकों का वेतन मान, पद, प्रतिष्ठा कहां सुधरी...??? (चिन्तित) हमें अपने विचारों एवं सोचने के तरीकों में परिवर्तन लाने तथा जीवन की प्रति अपना नजरिया बदलने की आवश्यकता है। इनकी भावनाओं और उत्साह को समझते हुए मुझे धैर्य से काम लेना होगा और इन सबकी मेहनत और इन सबकी मेहनत और संकल्प को पूरा करना होगा। (रुककर) इनका मुझ पर विश्वास है। धैर्य के संग आशा और विश्वास जुड़ जाएँ तो नेता को और सजग हो जाना चाहिए। (अन्तरात्मा की आवाज) शास्त्रों में कहा गया है "धैर्य धारण कठिन होता है लेकिन उनके फल मीठे होते हैं।"1 प्रतियोगिता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ नौकरियों की माँग बढ़ती जा रही है। नौकरियों के लिए दिन-प्रतिदिन घोटाले हो रहे हैं। इस माँग को पूरा करने के लिए शक्ति न तो सरकार में हैं। और न बड़े पूंजीपतियों में । यद्यपि दोनों क्षेत्रों की ओर से देश की बेकारी दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है फिर भी तेजी से बढ़ती जनसंख्या के मुकाबले में हमारा देश नौकरियों के अवसर प्राप्त नहीं कर पा रहा है। यही कारण है कि आज योग्यता सड़कों पर घूम रही है और अयोग्य लोग वातानुकूलित क में राम बैठे हैं। एक व्यक्ति गुंडागर्दी और शरारतों के दम पर सरकार में मंत्र ी बन जाता है। क्योंकि चुनावी उम्मीदवार के लिए किसी प्रकार की कोई शैक्षणिक और नैतिक योग्यता नहीं है। समाज में भी कामयाब एवं सफल व्यक्ति का सम्मान किया जाता है परन्तु बेरोजगार चाहे कितना ही योग्यता लिए हुए हो उसे शर्मिंदगी का सामना करना पड़ता है। बेरोजगारी की इस समस्या से निदान के लिए वह वैद्य-अवैद्य में अन्तर करने में सक्षम हो गया है उच्च शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग बेरोजगारी से पीड़ित है। उनकी प्रतिभाएँ दिन-प्रतिदिन मर रही है। जहाँ चपरासी, हैल्पर, चोंकीदार की भर्ती

निकलती है वहां उच्च शिक्षा प्राप्त वर्ग आवेदन कर रहा है। वह कोई भी कार्य कर धन पाने की इच्छा को पूरा करना चाहता है।

निष्कर्ष

21वीं शताब्दी को अर्थ की सदी कहने के पीछे इसमें अर्थ की प्रधानता सर्वोपरि है। इसमें अर्थ ही प्रधान वस्तु हैं। यह अर्थ प्राचीन काल के चार पुरुषार्थों में से एक है। शेष तीन पुरुषार्थ धर्म, काम और मोक्ष तीनों इस अर्थ के आगे व्यर्थ हो गए हैं। पुरानी समाज व्यवस्था में य ह अर्थ मात्र साधन था। इससे धर्म, काम और मोक्ष की साधना की जाती थी। मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य सा साध्य मोक्ष था। 21वीं शताब्दी को देखते हुए यह लगता है कि मोक्ष का कोई स्थान अब नहीं है। मोक्ष का स्थान काम ने ले लिया है किन्तु यह काम भी अर्थ के आगे दब गया है। इस प्रकार अर्थ प्रधान होना मनुष्य जीवन का लक्ष्य बन गया है। आज विश्व में प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी के पीछे भाग रहा है। कोई सुख, सफलता और सम्पन्नता के पीछे भाग रहा है, कोई यश, सम्मान या पद के पीछे भाग रहा है, कोई सत्ता के पीछे, कोई धन और सम्पत्ति के पीछे और कोई योग और आध्यात्म के पीछे भागता जा रहा है। यह एक अजीब प्रकार की दौड़ है जिसका प्रारम्भ तो है परन्तु अन्त का पता ही नहीं है। इस भागदौड़ में किसी के पास न इसके प्रति कोई रूचि है। आर्थिक जगत से नैतिकताएं, ईमानदारी, अपनापन विश्वास आदि मूल्य टूट रहे हैं। झूठे सपने दिखाए जाते हैं। विज्ञापन किसी को उत्पाद की बिक्री बढ़ाने के लिए होता है। परन्तु आज के समय में लड़ के लड़कियां अपने बदन से कपड़े उतारते है और विज्ञापन की आड़ में बड़ े-बड़े कलाकार झूठ बोलते हैं। अमिताभ बच्चन, सलमान खान, आमीर खान, हेमा मालिनी, प्रियंका चोपड़ा, ऐश्वर्य राय, अभिषेक बच्चन, ओमपूरी आदि प्रतिष्ठित कलाकार पैसे कमाने के लिए किसी भी प्रोडक्टस की तरह-तरह की खूबियाँ बताते हैं। ये जिस भी प्रोडक्ट को प्रयोग में लाएं जनता इन पर आँख बंद कर विश्वास करती है। बड़े-बड़े खिलाड़ी मास्टर बलास्टर सचिन तदुलकर, सौरभ गांगुली, युवराज सिंह, हरभजन

सिंह, वीरेन्द्र सहवाग, ब्रेट ली, स्टीफन फलेमिंग, गिलक्रिस्ट आदि महान खिलाड़ी भी किसी भी उत्पाद की सच्चाई से दूर होकर उस उत्पाद की बिक्री बढ़ाने के लिए विज्ञापन देते है। ये जनता के साथ भद्दा मजाक व विश्वासघात है। 21वीं शताब्दी के नाटककार आधुनिकता की दौड़ में य ह प्रश्न उठाते हैं कि आर्थिक जगत में कौन सी बात विश्वसनीय है ? किस पर भरोसा किया जाए ? कौन सी वस्तु खरीदी जाए ? आमिर खान एक तरफ देशभक्ति की फिल्म बनाकर लोगों में देशभक्ति जगाते हैं तो दूसरी ओर विदेशी माल (कोका-कोला) का प्रचार-प्रसार कर जनता को अपनी तरफ आकर्षित करते है। यह समाज इनसे सच्चाई मांगता हैं। बड़े-बड़े कलाकारों व खिलाड़ियों को ये समाज अपना आदर्श मानता है। 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटक कारों ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि पैसे के चक्कर में जनता में फैले अपने विश्वास को मत तोड़िये अपने विश्वास को बनाए रखने के लिए समाज के बदलते आर्थिक स्वरूप के द्वारा देश के प्रत्येक कोने में शिक्षा की किरण पहुंचाने का बीड़ा उठाया है। 21वीं शताब्दी के नाटककार ह्रषीकेश सुलभ 'अमली', 'प्रभाकर श्रोत्रिय 'फिर से जहाँपनाह', 'साँच कहूँ तो', दया प्रकाश सिन्हा, 'इतिहास चक्र', सुशील कुमार सिंह, 'अलख आजादी की' आदि ने 21वीं शताब्दी में बदलते आर्थिक स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में चित्रित कर हमें आर्थिक जगत की सच्चाई को बताया है।

संदर्भ

[1]. डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 53–54

[2]. उषा गांगुली, रूदाली, पृ॰ 52

[3]. वही, पृ॰ 47

[4]. राधा कृष्ण सहाय; अतः किम्, पृ॰ 10

[5]. हृषीकेश सुलभ, 'अमली' पृ॰ 61

[6]. अमृत लाल मदान, 'अधमुण्डा सिर और चौथी टाँग', पृ॰

[7]. विभारानी, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', पृ॰ 60–61

[8]. विभारानी, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', पृ॰ 60–61

[9]. विभारानी, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', पृ॰ 65

[10]. सुशील कुमार सिंह, 'चार यारा ¬ के यार', पृ॰ 36–37

[11]. डॉ॰ बिरेन्द्र सिंह यादव, 'हिन्दी कथा साहित्य म ¬ पारिवारिक विघटन, पृ॰ 7

[12]. सुशील कुमार सिंह, 'चार यारा ¬ के यार', पृ॰ 24

[13]. डॉ॰ ऋतु सारस्वत 'सहजीवन की उलझन ¬', दैनिक जागरण, 30 अक्तुबर 2010, संपादक (सजय गुप्त)

[14]. डॉ॰ विनीता राय, 'मूल्य और मूल्य संक्रमण', पृ॰ 129–130

[15]. डॉ॰ स्वाति तिवारी, 'आजकल कथाबिंब पत्रिका', पृ॰ 28

[16]. नदिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ॰ 30

[17]. वही, पृ॰ 30

[18]. नदिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ॰ 30

[19]. नादिरा जरीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ° 17–18

[20]. उषा गांगुली, रूदाली, पृ° 12

[21]. वही

[22]. उषा गांगुली, रूदाली, पृ° 23–24

[23]. विभारानी, अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो, पृ° 11–12

[24]. विभारानी, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो, पृ° 20

[25]. वही, पृ° 26

[26]. वही, पृ° 20

[27]. विभा रानी, अगले जनम मोह े बिटिया न कीजो, पृ° 53–54

[28]. डॉ° नरेन्द्र मोहन, अभंग गाथा, पृ° 66

[29]. स्वदेश दीपक – 'जलता हुआ रथ' पृ° 42

[30]. व्यापार चिन्ह

सप्तम अध्याय

21वीं शताब्दी के नाटकों का बदलता रंग मंचीय स्वरूप

21वीं शताब्दी परिवर्तनों की सदी है, जिसमें हर क्षेत्र में परिवर्तन दिखाई दे रहा है। इसमें औद्योगिक विकास के साथ प्राकृतिक साधनों का बड़ी तेजी से दोहन हुआ। पश्चिमी प्रभाव, वैचारिक परिवर्तन, रहन-सहन में पश्चिमी प्रभाव, अति-आधुनिकता, घोर-बौद्धिक शिक्षा में परिवर्तन आदि अनेक बिन्दु इस शताब्दी की मुख्य पहचान करवाते हैं। 21वीं शताब्दी चुनौतियों की शताब्दी है जिसमें जनसंख्या वृद्धि, संसाधनों की निरंतर घटती स्थिति, प्रदूषण कृषि उत्पादन की सीमा, पर्यावरण की क्षति कुछ ऐसे ही तत्व हैं जिनकी ओर ध्यान जाता है तो लगता है कि आने वाले दिनों में लोग कैसे जीयेगी? 21वीं शताब्दी की एक चुनौती महंगाई का बढ़ना भी है। महंगाई के साथ गरीबी, सामाजिक बुराइयाँ, अपराध बढ़ते जाते है और जीवन की गुणता समाप्त होती जाती है। इससे अन्न की कमी ही नहीं बढ़ती बल्कि गंदी बस्तियाँ भी खड़ी हो जाती हैं, जो रोग का कारण बनती है। एक तरफ मुख्य समस्या जनसंख्या की है। जब तक परिवार नियोजन कारगर नहीं होता, जनसंख्या बढ़ती रहेगी और उसके साथ ही वस्त्र, अन्न, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की समस्याएँ बनी रहेगी। आज के युग में विकास एक बहुत बड़ी समस्या है विकास यदि सुख-साधन उपलब्ध कराये तो इससे पर्यावरण प्रदूषण भी होगा यदि जनसंख्या संतुलन नहीं आया तो उत्पादन और जनसंख्या के बीच सही आनुपातिक सम्बन्ध नहीं बने तो शारीरिक ही नहीं कई मानसिक बीमारियाँ, तनाव और प्रदूषण समाज को खोखला कर डालेंगे "आज के इनसान का एक चेहरा नहीं है, जिसे बताया जा सके। आज के इनसान के कई शैड्स हैं। वह बहुत मेहनती, तरक्की पसंद ईमानदार, सच बोलने वाला सच्चा इनसान भी है तो काम चोर अवसरवादी, जल्दबाज, लालची भी है। वह जल्दी सब कुछ पाने की होड़ में भी लगा है, लेकिन इन विभिन्न शैड्स के इनसानों में

उन लोगों की संख्या कम है जो रूककर, ठहरकर किसी मुद्दे पर सोच विचार करते है। आज के इनसान के मन में हड़कम्प मचा हुआ है। 21वीं शताब्दी में अधिक से अधिक लोग विकास में सहयोग देने की स्थिति में आ जाएंगे। फिर भी रहन-सहन का स्तर बढ़ाने सबको शिक्षा दे पाने और गरीबी हटाने के लिए बहुत ज्यादा विकास अपेक्षित होगा। रंगकर्मी राम गोपाल बजाज ने उत्तर-आधुनिक-सा आदमी लेख में लिखा है कि - "आज का इनसान इनसानियत खोता जा रहा है। अब नई पीढ़ी से उम्मीद की जा सकती है कि वह कुछ कर। दरअसल शहर और शहरीकरण, विज्ञान के साथ में शीनीकरण के युग में आज एक जिंदगी दूसरी जिंदगी को क्या दे रही है? हम धरती से लेते जा रहे हैं, उसे दे क्या रहे हैं? समाज में क्रूरता और हिंसा बढ़ती जा रही है। सब और संतोष बहुत कम रह गया है। आज हम जिस दफ्तरी संस्कृति में जी रहे हैं, वह काम न करने, मुक्त की खाने, टाल-मटोल करने, रोकने या बाधा पहुंचाने को प्रोत्साहित करती है। इक्कीसवीं सदी में इस आदत को तोड़ने के लिए बहुत कौशिश करनी पड़ेगी। इसके लिए जन-जन में अपनत्व की भावना जगानी होगी हमें वह तप करना होगा कि विकास जन-जन के लिए हो, मुट्ठी भर लोगों के लिए नहीं जन-जन के बीच का अंतर खत्म किए बिना काम नहीं चलेगा। यदि सामाजिक न्याय मिलेगा तो जन-जन की भागेदारी से ही आलस्य, जड़ता और प्रमाद दूर भगाये जा सकेंगे। भारतीय रंगमंच में भी काफी बदलाव आया है। 21वीं सदी अपनी एक अलग पहचान लेकर आई है। जिसमें नाटक और रंगमंच के सम्बन्ध को भी एक नया आयो में दिया है। नाटक साहित्य की एक प्रमुख विधा है। लेकिन समय परिवर्तन के साथ-साथ नाटक रूपक का पर्याय माना जाता है। नाटक जीवन की प्रति लिपि होने के साथ-साथ व्यवहारों का दर्पण और सत्य का प्रतिबिम्ब है। इक्कीसवीं का हिन्दी नाटक उसी परम्परा का आधुनिक बिन्दु है, आज नाटक की अपनी एक अलग पहचान एवम् निजी शब्दावली है। नाटक एक विशिष्ट साहित्यिक विधा है और इसकी अपनी विशेषताएँ है। नाटक के तत्त्व भी उसकी विशेषताओं के अनुकूल होंगे। इक्कीसवीं सदी नाटकों का परिवर्तित रंग मंचीय स्वरूप नाटक के तत्वों के माध्यम से दर्शाया गया है।

7.1 कथावस्तु

किसी भी मूल ढाँचा, मिति एवं आधार कथानक होता है। सामान्यतः कथा इतिहास और कथावस्तु को समानार्थक मानकर इसका प्रयोग कथानक के लिए किया जाता है, परंतु उसमें रूप गत अंतर अवश्य होता है। "कथा क्रमानुरूप व्यवस्थित घटनाओं का कथन, कथा है। इतिवृत्त में तथ्यों का कथन मात्र होता है और रसार्द्रता का अभाव रहता है। परंतु घटनाचक्र के कालानुक्रम में अपेक्षित परिवर्तन करते हुए अथवा मनः कल्पना से अद्भुत घटनाओं को मिलाकर उसका नया अनुरूप बनाना कथावस्तु कहलाता है। दिल्ली-6 (ललित सिंह पोखरिया) में कथावस्तु के घटनाचक्र को व्यवस्थित रूप में दर्शाया है जिससे उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ है - प्रतिमपाल: लो फिर कोई मैसेज आ गया। बालमदीन: स्विच ऑफ कर दो दोस्त! इस मोबाइल का स्विच ऑफ कर दो। ये मोबाइल दोस्ती और मुहब्बत के बीच ऐसी मुसीबत बन गया है इस जमाने में जैसे भारत-पाकिस्तान के बीच एल° ओ° सी°!...देखो में ®ने अपना मोबाइल स्विच ऑफ कर रखा है। प्रतिमपाल: स्विच ऑफ ही रखना है तो मोबाइल रखते ही क्यों हो अपने पास? बालमदीन: तुमने मुझे बुलाया है यहाँ कुछ जरूरी बात करने के लिए! मैं तुमसे बात करने आया हूँ - मोबाइल पर नहीं । में ® दोस्ती की इज्जत रखना जानता हूँ। इसीलिए मोबाइल स्विच ऑफ किया है। आलोच्य नाटक का कथानक परिवर्तित घटनाओं के साथ आगे बढ़ता है। नाटक के कथानक को कथावस्तु या वस्तु कहा जाता है। कथावस्तु को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जाता है। एक मुख्य अथवा अधिकारिक कला और दूसरी गौण अथवा प्रासंगिक कथा नाटक में रहती है। अधिकारिक कथावस्तु में मुख्य पात्रों से सम्बन्धित कथा को लिया जाता है। अधिकारिक कथा सूत्र प्रारम्भ से लेकर फल-प्राप्ति तक होता है। प्रासंगिक कथा वस्तु का सम्बन्ध सीधा नायक या नायिका से न होकर अन्य पात्रों से होता है। प्रासंगिक कथा नाटक की मूल कथा को आगे बढ़ाने में सहाय क होती है। अम्मा...अम्माँ... मेरी बुआ आई है, उनका नाम है चन्द्रमाला है। तो एकदम काली भुजंग... लेकिन नाम रखा है चन्द्रमाला जैसे हो व®जती माला, अपने चारों बच्चों को लेकर दो-दो महीनों के लिए यहाँ आ जाती है, उनकी इसीलिए

इतनी शान है क्योंकि उनके चारों बच्चे लड़के हैं। इसीलिए वो हवलदार बन गई है और वो चारों के चारों इतने भादु, अकड़ू और खाऊ है कि बस क्या कहे। सबसे छोटा वाला नरेन्द्र कुमार, उससे बड़ा राजेन्द्र कुमार, उससे बड़ा वीरेन्द्र कुमार और सबसे बड़ा सुरेन्द्र कुमार अपने आप को शाह रूख खान समझता है, आईने के सामने खड़ा होकर दिनभर 'तुझे देखा तो ये जाना सनम' गाता रहता है। एक दिन वो शाहरूख खान बहुत तेज आवाज में टी॰ वी॰ देख रहा था, दुर्गा दीदी अन्दर पढ़ रही थी, दीदी ने जब उससे कहा, तो दीदी को चिढ़ाने के लिए आवाज और तेज कर दी, दीदी ने गुस्से में आकर टी॰ वी॰ बन्द कर दिया, बस फिर क्या था, उधर से बुआ जी का अटैक शुरू हो गया, जोर-जोर से रोने लगी एए ए पूरा नाटक और कहने लगीं "चलो, चलो बच्चों सामान, बांधा, भिखारी नहीं हैं, हमारे घर में भी टी॰ वी॰ है। ये सुनकर अम्मा बुआ जी के हाथ-पाँव जोड़ने लगीं, माफ कर दो दीदी माफ कर दो इतने में दुर्गा दीदी को थप्पड़ मारा और कहा बुआ जी से माफी माँग"1 आलोच्च नाटक में मुख्य कथा के साथ-साथ गौण कथा कथावस्तु को आगे बढ़ाती है। नाटक रंगमंच पर भी तभी सफल होता है जब मुख्य पात्र के साथ-साथ गौण पात्र मंच पर अपनी भूमिका निभाते दिखायी देते हैं। अतः आज कल के नाटकों में प्रेक्षकों को पात्रों का परिचय उनके आपसी संवाद द्वारा ही सम्बन्ध और उस कथानक का भी ज्ञान पाते हैं, जो मंच पर तो प्रस्तुत नहीं किया गया, परन्तु जिसका मंच पर चल रहे कथानक से गहरा संबंध होता है। इस प्रकार कथानक सम्बन्धी जानकारी के साथ हम यह भी ज्ञान प्राप्त करते हैं कि मंच पर पत्रों का परिचय प्रेक्षकों से किस प्रकार होता है। प्राचीन काल में कथानक निर्माण एवं पात्र के मंच पर अवतरित होने के सम्बन्ध में अनेक निर्देश थे, परन्तु आज का नाटक किसी भी निश्चित सीमा के बंधन में नहीं है वह कहीं से भी, किसी भी पात्र को चुनकर कथानक का निर्माण कर सकता है और संवादों द्वारा पत्रों का परिचय प्रेक्षकों को दे देता है।

7.2 पात्र योजना

नाटक की कथावस्तु को गति पात्र प्रदान करते है। इसीलिए इनकी योजना भी कथावस्तु के अनुसार ही होती है। पात्र योजना में अभिनेता का व्यक्तित्व वाणी, अभिनय कला आदि देख कर किया जाता है व्यक्तित्व से अभिप्राय शरीर बाह्यकृति एवं मुखाकृति से है, पात्र के लिये आवश्यक है कि उसका स्वरोच्चारण स्पष्ट हो। "यदि पृथ्वी राज का अभिनय करने वाले कलाकार की वाणी धीमी, तोतली या मरी हुई सी सुनाई दे तो वह ग्रहण नहीं हो सकती, जिसकी वाणी में गूंज हो, हुंकार हो, भारीपन हो वही पृथ्वी राज की भूमिका का यथार्थतः निभा सकेगा।"1 नाटक के सभी तत्व पात्र अथवा नेता या नायक पर ही आश्रित रहते है। कथावस्तु के बाद भारतीय आचार्यों ने नाटक का दूसरा प्रधान तत्व 'नेता' माना है? नेता का अर्थ है:- प्रधान पात्र या नायक। नाटक का नायक कथानक को अपने निर्दिष्ट फलागम तक ले जाता है। इसी केन्द्रिय पात्र की ओर नाटकीय वृत घूमता है। आज का नाटककार मानता है कि केवल नायक ही नहीं नाटक का प्रत्येक पात्र एक विशेष और अद्वितीय चरित्र लाभ होता है। दिल्ली-6 नाटक में राजनीतिक परिवेश में राष्ट्रहित की बात सोचने वाले जन-नेताओं की विडम्बना को नायक द्वारा चित्रित किया गया है। "बालमदीन: आप अंदर कमरे में चली जाइए। जो किताब पसंद आ जाये ले जाइए ... हाँ! पढ़ने के बाद वापस जरूर कर दीजिएगा। (सब हँसते हैं) (शालिनी अंदर जाती है) डी॰ पी॰ जी॰: मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। बालम्! तुम आने वाले समय के आदमी बन रहे हो। मेरा काम ऐसे ही आदमी कर सकते हैं और अपनी किस्मत चमका सकते हैं। हमारे देश की राजनीति एक नये मोड़ पर पहुंच रही है। शुरूआत में अधिकतर सच्चे देशभक्त और सच्चे इनसानों ने देश की बागडोर थाम रखी थी। उसके बाद आई अनपढ़ महिला, माफियाओं, खूनियों, डाकुओं, दलालों और मसखरों की सल्तनत। बहुत जल्द वो दिन आने वाला है जब देश की पॉलिटिकल मशीनरी ऐसे जम ही जायेगी जैसे बहुत ठंड पड़ने पर पाइपलाईन में पानी जम जाता है और पानी सप्लाई ठप्प हो जाती है या सीवर का पानी गलियों में भर जाता है तो सारा मैला क में राम छितरा जाता है। तब राजनीति की बहुत बड़ी करवट लेनी पड़ेगी। तभी देश पटरी पर आएगा और विकास की गाड़ी पटरी पर दौड़ेगी। बालमदीन! जो लोग छुरेबाजी, दलाली,

अपहरण और ऐयाशी की योग्यता लेकर... विधानसभा और लोकसभा में पहुँच रहे हैं, उनके दिन खत्म हो जाएंगे। अनपढ़, गँवार और लम्पट देहाती लट्ठ भांजते हुए ग्राम प्रधान चुनाव प्रचारक बन रहे है। लोग प्रधानी का मुखौटा लगाकर ग्राम विकास के पैसे पर भूखे कुत्तों की तरह टूट रहे हैं। गांव की हर गली, हर मोहल्ले को कुरुक्षेत्र बनाए हुए है। भोली-भाली जनता के बीच में लूट और हराम की रोटी में सुख पाने वाले लोग पैदा हो रहे है। आज की किसी अत्यन्त साधारण जीवन की सरल कहानी और गाथा भी साहित्यिक महानता को जन्म दे सकती है। "पात्र कथावस्तु के संचालक होते हैं। उनका कथा, घटना और परिस्थिति के साथ घनिष्ठ और सजीव सम्बन्ध होता है। पात्र एक ओर साधन है, दूसरी और साध्य भी अर्थात् जहाँ एक ओर पत्रों के क्रियात्मक घात-प्रतिघात से कथावस्तु गतिशील होकर उद्दिष्ट प्रभाव से प्राप्त होती है, वहाँ दूसरी ओर वस्तुजन्य स्थितियों से पत्रों के चरित्र-निर्भित और प्रकाशित होता है। 'गगन दमामा बाज्या' में पात्रों के चरित्र-चित्रण से कथानक को गतिशीलता मिली है। नाटक शहीद सिंह को केन्द्र में रखकर रचा गया है। पत्रों का अभिनय उनके चरित्रों को उद्घाटित कर देता है बिस्मिल: बहुत तकलीफ होती है मरने में ..... बरखुरदार.... भगत: आप को कैसे मालूम? आप कभी में रे हैं क्या? (एक सन्नाटा) (बिस्मल असहज होकर पहलू बदलते है।) मौत के बारे में जितना मुझे मालूम है.... उतना ही आप को भी। हिसाब बराबर हुआ। बिस्मिल: (थोड़े असहज) इस कमरे में बैठा हर शख्स कभी ना कभी ....थोड़ा बहुत मेंरा है। इनके जिस्म के घाव इस बात के सबूत हैं। भगत: (बोलना शुरू करता है)। जिस्म पर लगे घाव आदमी की ताकत का सबूत नहीं होते जनाब। ताकत कहीं और से आती है। खून बहाना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है....। वो अपना हो..... या सामने, वाले का। बात ये है कि जिस्म से टपकी हुई एक बूँद आने वाली नस्ल के सारे के सारे खून में आग लगा सकती है या नहीं । इंसानी जिंदगी बहुत कीमती होती है। हँसते-हँसते उसको फांसी के तख्ते पर चढ़ा देना हिम्मत का काम जरूर है... मगर काफी नहीं । वक्त और मौका तय किए बगैर अपनी जान गंवाना बेवकूफी है। हिन्दुस्तान के स्वाधीनता संग्राम के सौ साल के इतिहास में "शायद कहीं कमी रह गई....1 नाटक के नायक को विनयशील,

सुन्दर त्यागी कार्यकुशल, मृदुभाषी, प्रज्ञा वान, कलाओं का ज्ञाता, स्वाभिमानी कुलीन, स्थिर चित, युवा, बुद्धिमान उत्साही, स्मृति-सम्पन्न, दृढ़ तेजस्वी, शास्त्रज्ञा, पवित्र और धार्मिक होना चाहिए। और नाटक की प्रधान नायिका सर्व गुण सम्पन्न नायक की प्रिया होती है। उसके मुख्य गुण रूपवती गुणी, शील, यौवना, मधुरता और शक्ति से युक्त, प्रसन्न स्नेहपूर्ण मधुर, भावपूर्ण सच बोलने वाली, लयताल का ज्ञान रखने वाली और रसयुक्त होती है। नायिका का रूप और गुण नायक के आकर्षण का केन्द्र होता है। नाटक की कथावस्तु के विकास के लिए नायिका प्रेरणा स्वरूप होती है। नाटक में चरित्र चित्रण कथा के रूप में विश्लेषणात्मक ढंग से नहीं किया जाता, बल्कि अभिनयात्मक ढंग से या परोक्ष रूप से होता है। नाटक के पात्र एक-दूसरे के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। या स्वयं अपने चरित्र का उद्घाटन करते हैं। 21वीं शताब्दी के नाटक 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' में बदहवास- सी बनी चुनरी ओढती है खुद को निहारती चंपा फिर आसमान की ओर देखती है और बड़बड़ाती है कि यहाँ मेरा कोई नहीं है जिसके भरोसे तू अपनी जिंदगी काटेगी? पिता जी और भैया न नहीं समझी बात, न सही मगर (रानी मां) वो कैसे इस खेल में "शामिल हो गई? माँ का बल बेटियों को सारी जिंदगी लड़ने की ताकत देता है। मगर यहाँ तो अब कुछ नहीं लेना रहा वह उभरती नदी की धारा ने अपने आपको समा लेना चाहती है। वह नाव को खेती हुई नदी के बीचोबीच धाराओं में बहती चली जाती है और नाव खेलने वाला राजकुमार को सूचना देता है कि चंपा नदी की धारा में बह गई है इस पर रानी परिवार का चरित्र प्रस्तुत होता है। "रानी: चंपा। मोरी बिटिया! लौट आओ मेरी नैना, मेरी चिड़िया। मेरी सोना। तेरी यह असहाय मां तेरे बगैर कैसे रहेगी? लौट आओ। मेरी बिटिया, लौटा आओ। (गीत के जवाब में चंपा कहती है।) चंपाकली: कैसे मैं लौटूँ हे माई मेरी, कइसे सहूँ सारी बात तुम्हीं मोरी सास ऐ माई, बाबा होगे ससुर, मइया मोरे होएगे स्वामी, डूब, धंस दूँगी परान। राजा: चंपा, मोरी बिटिया! तू मोरी आँखों का तारा है। मेरे कलेजे का टुकड़ा, लौट आ मेरी गुड़िया। अपने बाप की बात मान ले। मत जा आगे। लौट आ! चंपाकली: कइसे मैं लौटूं हो बाबा, कइसे, सहूँ सारी बात तुम्हीं मोरे ससुर हो बाबा, अम्मा होएँगी सास, मइया मोरे होएँगे

स्वामी, मैं डूब, धसँ दूँगी परान। राजकुमार: इस पूरी दुनिया में तू ही तो एक मेरी बहना है। तू नहीं रहेगी तो कौन मुझे भाई कहेगा? कौन मेरी कलाई पर राखी बाँधेगा? कौन भाई दूज के दिन रोली-तिलक लगाएगा? लौट आ मेरी प्यारी बहना। लौट आ! अपने भाई को इतना न सता। वापस आ जा। चंपाकली: कइसे मैं लौटूँ हो भैया, कइसे सहूँ सारी बात तुम्हीं मेरे स्वामी हो भइया, अम्मा होएँगी सास बाबा मोरे होएँगे ससुर, डूब धँस दूँगी परान" इक्कीसवीं शताब्दी के नाटकों के मुख्य पात्र या नायक पौराणिक नाटकों की तरह उच्च कुल सम्पन्न राजा या दैवी पात्र नहीं होते और नायिकाएँ प्रेमिकाएँ व खण्डिता पात्र नहीं होती है। आज के नाटकों में वही व्यक्ति मुख्य पात्र बन सकता है जो नाटकीय कथा-प्रवाह में योगदान द। आज के नाटकों में चरित्र- चित्रण का विधान आमूल-चूल बदल गया। समाज का परिचित व्यक्ति ही आज के नाटक का नायक हो सकता है। "आज दर्शक यह चाहता है कि पात्र चाहे पौराणिक, ऐतिहासिक हो या समसामयिक उसका मनुष्य और साधारण मनुष्य होना पहली शर्त है।"1 पत्रों का चरित्रांकन यथार्थ, स्वाभाविक व सप्राण होना आवश्यक है। यह तभी सम्भव हो पाएगा जब लौकिक धरातल से अवतरित पात्र मानव सुलभ सभी द्वन्द्व, उतार-चढ़ावों एवं मनोभावों से अनुप्राणित होंगे। चरित्र-चित्रण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा में नाटककार को सतर्कता रखनी पड़ती है। एक तो नाटककार को अपने व्यक्तित्व को पत्रों के व्यक्तित्व से ऊपर रखना आवश्यक होता है; दूसरे उसे पत्रों के चरित्र-चित्रण में बुद्धि गम्यता, परिपूर्णता, दर्शनीयता लाने में पर्याप्त सावधानी रखनी पड़ती है। नाटक में पात्रों का चरित्र-चित्रण पत्रों के पारस्परिक क्रियाकलापों, उनके हावभाव, उनके स्वगत, कथनों तथा अन्य सहायक पत्रों द्वारा व्यक्त की गई सम्मतियों से सम्पन्न होता है।

7.3 संवाद तथा कथोपकथन

मनुष्य का कार्यकलाप उसके चरित्र का सबसे परिचायक होता है। यही कारण है कि संवाद या कथोपकथन और कार्य व्यापार की अन्वित चरित्र की दृढ़ता के साथ नाटककार के कौशल का परिचय

देता है। सफल और सार्थक संवाद वहीं होता है जो या तो कथा क्रम को आगे बढ़ाने में सहाय क हो या चरित्र पर प्रकाश डाले। कथोपकथन को बहुत कुछ श्रेय कथानक को विश्रृखंला अथवा सुश्रंखला, गतिशील अथवा अगतिशील बनाने का मिलता है। नाटक 'अगिन तिरिया (रवीन्द्र भारती) में संवाद सहज सरल होने के कारण रंगमंच के अनुकूल हैं क्योंकि रंगमंच पर संवादों की सरलता ही उसे सफलता दिलवाती है और ये विशेषता रवीन्द्र भारती के नाटक में विद्यमान वनदेवी का कथन है कि "सदियों पूर्व एक रात ऐसे ही वे गुण गुना ... रहे थे जुगनू भी भा®रे भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर गुनगुनाने लगे। सन्नाटा यह सुनकर हिल गया। उसने सोचा कि ये बढ़ेंगे यदि सुर में आ गए तो फिर मेरे अस्तित्व का क्या होगा? अंधेरे का क्या होगा? अँधेरे से सन्नाटे ने जाकर आने वाले खतरों की चर्चा की कि अँधेरा जुगनुओं के दुस्साहस पर बौखला गया। वह जुगनुओं को मारने लगा। इधर-उधर वे प्राण बचाकर भागने लगे। लेकिन कहाँ भागते, चारों ओर अँधेरे का साम्राज्य था। इस कथा को सुनकर सुआ का अंतर जूझता है।.. .. "संन्यासी पुरोहित हम इसी तरह मारते रहेंगे? क्या अंधेरे में इसी तरह हम जीवन भर रहेंगे? हमें अग्नि नहीं मिलेगी? आलोक नहीं मिलेगा? सुआ का यह सवाल 21वीं शताब्दी के बहुजन समाज का है। इस नाटक के प्रथम अंक के तीसरे दृश्य में वनदेवी और सुआ के संवाद में सृष्टि रचना की आदि गाथा। 'हिहड़ी पिपड़ी का प्रसंग आता है। सब प्राणी, उसी आदि पुरुष हिहड़ी-पिपड़ी की संतान हैं। वनदेवी के इस प्रश्न को सुनकर सुआ सवाल करती है कि संन्यासी पुरोहित हमें मारते क्यों है? सुआ: संन्यासी पुरोहित किसकी संतान है? वनदेवी: हिहड़ी पिपड़ी के। सुआ: और हम? वनदेवी: हिहड़ी-पिपड़ी के। सुआ: फिर वे हमें क्यों मारते है।? (कोई उत्तर नहीं) नेपथ्य में पानी में कई लोगों के चलने की आवाज आती है। वन देवी उठ खड़ी होती है। इधर-उधर देखने लगती है। वनदेवी: (सुआ से मुखातिब होकर) तुम भीतरी कक्ष में जाओ लगता है कि दूसरे द्वीप की वनदेवियाँ आ रही हैं। (वनदेवी द्वार की और बढ़ती है और सुआ भीतरी कक्ष में जाने के लिए मुड़ती हैं, साखा का प्रवेश होता है)2 इन नाटक के संवाद सहज, सरल, सजीव, स्वाभाविक, सार्थक, संक्षिप्त, पात्रों की आयु, मनःस्थिति के अनुरूप कथावस्तु को स्पष्ट

करते हैं जो रंगमंच के अनुकूल हैं। सुमन कुमार का कथन है कि - "नाटककार रवीन्द्र भारती का नाटक अग्नि तिरिया' अपनी प्रासंगिकता, व्यापक विषय-वस्तु, सांकेतिक बिम्ब योजना एवं दृश्य-विधान लोक रंजन पात्र एवं उनके यथेष्ट नाटकीय व्यवहार और अनूठी भाषिक योजना के कारण प्रयोगशील निर्देशेको के लिए एक चुनौती भरा आमंत्रण है, जहाँ रंगमंच के नवीन मुहावरों को गढ़ने की गुंजाइश है। संवादों का संबंध नाटक के पत्रों के चरित्र-चित्रण एवं कथावस्तु के विकास से है। नाटक में संवादों का महत्व अन्य गद्य-विधाओं की अपेक्षा अधिक इसलिए है कि नाटककार जो कुछ भी कहना चाहता है वह केवल पत्रों के कथोपकथन द्वारा ही कह सकता है। नाटक अपनी ओर से कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि नाटककार को अन्य कोई सुविधा उपलब्ध नहीं होती। वह केवल पत्रों पर ही निर्भर करता है। नाटककार अपना कथ्य केवल पत्रों के कथोपकथनों के माध्यम से ही सम प्रेषित करता है। इसलिए इन बातों को ध्यान में रखकर जो नाटक लिखे जाते हैं वे ही सफल होते हैं। 'रंग-राज तरंगिणी' नाटक के संवादों के बीच 'विराम' लिखकर उसको नए रूप में दर्शाया है। यह नाटक राजा अनंत देव और रानी सूर्यमती की कथा पर आधारित है। अनंतदेव: हाँ युद्ध! और यह युद्ध निर्णायक होगा। विराम।। ब्राह्मण 2: तन्वंग के पुत्रों में से किसको राज शोंपेंगे आप? यदि दोनों को तो राज्याधिकार दिया गया तो कहीं गृहयुद्ध न भड़क उठे। ब्राह्मण 3: अपने कुल को छोड़ दूसरे कुल को राज्य सोंप कर आप नयी समस्याओं को जन्म न दगे? ब्राह्मण 1: राजन! कलश देव का पुत्र राजकुमार हर्ष युवावस्था पा गया है क्या वह इस योग्य नहीं ? इस नाटक के सीधे सरल और संक्षिप्त संवादों में पात्रों के मनोसंघर्ष, परिवार पर छाये आतंकपूर्ण वातावरण तथा सदस्या, के दबे विरोध, राजा अनंत देव के बाह्य और अंतर्जगत के विरोधाभास को व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता है। आलोच्य नाटक में प्रजा पर होने वाले अत्याचार, राजा के कुसंगी मित्र आदि आज के हालात के प्रतीक जैसे लगते है मंच पर पत्रों के आपसी संवाद कथावस्तु को सजीवता प्रदान करते हैं। इक्कीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों में रंगमंचीयता की दृष्टि से सभी रूपों और शैलियों का अपूर्व सफलता के साथ प्रयोग हुआ है। शान्ति मलिक का कथन है "कि नाटक के

विभिन्न उपकरणों को एक सूत्र में पिरोकर नाटक का रूप प्रदान करने वाला तथा नाट्य शरीर में सजीवता का संचार करने वाला एक मात्र तत्त्व संवाद ही है 'आज का सच' (सुशील कपूर) नाटक के संवादों म्वें नाटकीय गति, दृश्य लय और पैनी अर्थ-व्यंजना है। जिससे नाटकीय संवाद अभिनेय की दृष्टि से प्रभावोत्पादक हो सके। नाटक के संवाद नाटकीयता के उद्देश्य को स्पष्ट करते है और जो समस्या उसमें उठायी गयी है। उसको संवाद ही अभिव्यक्ति देते हैं। "रेणुका: वे व्यापार, दुकानदारी आदि घरेलू अन्य लघु उद्योग धंधाद्वारा भी आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकती है। मैं तो कहती हूँ प्रत्येक पढ़ी लिखी लड़की को नौकरी अवश्य करनी चाहिए। विभा: तब तो उसे बिल्कुल मशीन बनना होगा, क्योंकि घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी तो उसे उठानी ही है इसी से तो स्त्रियों के नौकरी के पक्ष में नहीं हूँ। रेणुका: (विस्मय से देखती हुई) अरे, आप पढ़ी-लिखी होकर और स्वयं नौकरी करती हुई ऐसा कह रही हैं? पत्रों के संवाद विषय, घटना और वातावरण के अनुरूप होने से आलोच्य नाटक को रंगमंचीयता में सफलता मिलती है। "संवाद में अभिनेता का बोध न होकर केवल एक ऐसे चरित्र का बोध हो जो एक विचार, प्रस्ताव अथवा जीवन-पक्ष का वकील है, व्याख्याता है। मंच पर पत्रों के आपसी संवाद कथावस्तु को सजीवता प्रदान करते है। परम्परागत नाटकों से भिन्न प्रतीक शैली में आलोच्य नाटक में संवादों के माध्यम से शासन तन्त्र की पोल खोली गई है। नाटक में गुजरते प्रत्येक क्षण को नाटककार कार्य अथवा संवाद द्वारा टीस उसी प्रकार भरता है जैसे कि चित्रकार अपने कैनवास का प्रत्येक इंच प्रभावपूर्ण और उचित रंग से। संवाद सहज, सरल, सजीव, स्वाभाविक, सार्थक, संक्षिप्त, पात्रों की आयु मनः स्थिति के अनुरूप कथावस्तु को स्पष्ट करने वाले होने चाहिए। "मास्टर सीताराम: यहाँ तो आओ बिंदिया: मुझे सुनाई पड़ रहा है, जो कुछ कहना हो ऐसे ही कह दीजिए। मा सीता राम: नाराज हो? बिंदिया: यही कहना था? मा सीताराम: नहीं यह बात नहीं "1 उपर्युक्त संवादों के माध्यम से नाटककार ने रंगमंच के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। इस नाटक के संवाद सहज, सरल, सजीव तथा प्रभावोत्पादक दिखाई दे रहे हैं। नाटक के पात्र बौद्धिक स्तर से उतरकर हृदय की भाषा का व्यवहार करते दिखाई दे

रहे हैं, जिससे उनके संवादों में मर्मस्पर्शिता आई है। 'नाटक की कथावस्तु कथोपकथन या संवाद के रूप में रहती है, वास्तव में संवाद में ही कथावस्तु का स्वरूप खोजा जा सकता है। 'जी, जैसी आपकी मर्जी'...' में नाटककार ने चार स्त्री पत्रों के आपसी संवादों से आज के समाज में ' स्त्री स्वतंत्रता' पर व्यंग्य किया है कि आज भी ज्यादातर स्त्रियों के लिए पढ़ने का हक, आर्थिक स्वतंत्रता और अपने फैसले खुद लेने का हक एक दूर से दिखने वाला सपना मात्र ही है।। नाटककार ने नारी जीवन पर लिखा है - 'एक बार मेरी दुर्गा दीदी बहुत बीमार हो गई उन्हें पीलिया हो गया, उन्हें ना तो किसी डॉक्टर को दिखाया, ना कहीं ले जाया गया, दुर्गा दीदी की हालत बहुत बिगड़ गई, यहाँ तक कि उनकी चादर और तकिया भी पीला हो जाता था। भैया को तो अगर थोड़ा बहुत खाँसी जुकाम भी होता है तो कानपुर ले जाते हैं इलाज करवाने के लिए....और मेरी दीदी के लिए कुछ नहीं ? कथावस्तु और पात्र अथवा चरित्र-चित्रण के विकास में कथोपकथन एक ऐसा उपकरण है, जिससे एक ओर वस्तु का विस्तार होता है, तो दूसरी और पत्रों के चरित्र का विकास भी। 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटक कारों ने नाटक में अन्य तत्वों की अपेक्षा से संवाद-योजना पर विशेष बल दिया है। जिससे नाटकों की संवाद-योजना सरल, सुबोध, सजीव चुस्त प्रभावोत्पादक और कलात्मक हो गई है।

7.4 देशकाल और वातावरण

नाटक में देशकाल- वातावरण का सबसे अधिक महत्व है, क्योंकि बिना उपयुक्त देशकाल का निर्माण किये नाटककार अपने वर्ण्य-विषय को संप्रेषित करने में असमर्थ रहता है। साहित्य में विशेष रूप से कथा साहित्य में देशकाल और वातावरण की संयोजना करना आवश्यक होता है। इसी कारण देशकाल और वातावरण को एक पृथक तत्त्व के रूप में स्वीकृत मिली है। देशकाल की सृष्टि किये बिना नाटककार का कथानक पंगु बना रहता है। ऐतिहासिक नाटकों में देशकाल और वातावरण के अनुकूल भाव-भाषा, आचार-विचार और रीति-नीति को तद्रूप ढालने में सफल होने वाला नाटककार ही श्रेष्ठ

नाटककार कहलाता है। 'रंग राज तरंगिणी' नाटक ऐतिहासिक महाकाव्य पर आधारित है। इस नाटक मे नाटककार ने एक पुरानी कथा में ए क आदमी की पीड़ा को वर्तमान से जोड़ा है। जिसमें वर्तमान समय में भाई- भतीजावाद और मित्रा- चहतो वाली स्वार्थ राजनीति के दर्शन होते हैं। ब्राह्मण: राजपुरुष और न्यायपालक भी प्रजा को किसी न किसी बहाने संकट में डालते रहते हैं। उत्कोच दिये बिना किसी का कोई काम ही नहीं बनता। अनन्तदेव: कोई सज्जन पुरुष, बलवीर अथवा देश और धर्म का हित-चिंतन कुछ नहीं कहता? ब्राह्मण: जब कथनी और करनी में साम्य न हो, कुल संस्कारों की और प्रवृत्ति न हो, तो राजन। मक्कारो के इस युग में सज्जना, बलवीरों और ज्ञानियों की कौन सुने? आज भी वही हालात पैदा हो गए है कि शासक वर्ग अपनी सुख-सुविधा के लिए प्रजा पर कोई न कोई नियम बना देते हैं। चाहे उसके लिए प्रजा को उसका विरोध क्यों न करना पड़े? यह नाटक भी रंगमंच के अनुकूल वातावरण को प्रस्तुत करने में सफल है। "कथानक और उसके संचालक पत्रों का सीधा संबंध देशकाल और जीवन के विविध सत्य-असत्य परिस्थितियों से होता है। पत्रों का वस्त्राभूषण विधान, आचार-व्यवहार, उनके कार्य व्यवहार, उनका परिवेश, उनकी भाषा आदि के प्रति नाटककार यदि सजग नहीं है तो वह अपने नाटक में यथार्थता और सजीवता की सृष्टि कदापि नहीं कर सकता इनका कारण यह है कि नाटककार को जिस युग के कथानक को प्रस्तुत करना होता है, बिना उपर्युक्त सतर्ककताओं के वह उसे युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करना होता है, 'अमली' नाटक समकालीन समाज की जीवंत पुनर्रचना है। अमानवीय अर्थ तंत्र और सामन्तीय सामाजिक वातावरण की विद्रपूताओं में पिसते व्यापक समाज की दारूण स्थितियाँ नाटक को समकालीन प्रस्तुति देती है। बुधिया: रमेसरा रे! हमरे जीते जी तू परदेश न जाएगा ! मांग का सेनुर पाछ लिया ढाका की कमाई के पीछे। तेरा बाप गया, सो आज तलक ना लौटा। अब कोख उजाड़े की हिम्मत ना है हमरे पास। रमेसरा: तू छिपके सुन रही थी का? बुधिया: हाँ रे, हाँ! सुन रही थी। तुम्हारा बाप भी गया था ढाका.... जुट मिल में नोट छापने। बार जोहते उमिर कट गई रहे। ....तू पेट से धरती पर आया....जवान हुआ...कनिया की डोली उत्तर गई... पर तेरा बाप ना लवटा। ना तू कनवो देश जाएगा,

न कनिया नरहर जाएगी। तू अपनी बात पर अड़ा है, तो हमरी भी अपनी बात है। देशकाल वातावरण की परिस्थितिया, परंपराओं, जीवन पद्धतियावेशभूषा आदि का अच्छा चित्रण इस नाटक में हुआ है जिससे नाटक में सजीवता एवं प्रभोवात्पादकता आई है। ऐतिहासिक नाटक में वातावरण का सर्वाधिक महत्व है। ऐतिहासिक नाटक वातावरण की रंचमात्र भी उपेक्षा करके नहीं चल सकते। वातावरण में देशकाल बाह्य है और मनोदशा आंतरिक। आलोच्य नाटक में दोनों प्रकार की क्षमता है। वातावरण की दृष्टि से नाटक के पात्रों की मानसिक एवं शारीरिक तैयारी में ए क उष्णता और प्रवाह का संचार हुआ है। 21वीं शताब्दी के नाटककार अपने दायित्व के प्रति अत्यधिक सजग है। उनकी रचनाएँ रंगमंच पर दर्शकों के सामने इस ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं जिससे दर्शक यह समझने लगते हैं कि वे किसी सच्ची घटना को प्रत्यक्ष देख रहे है।। नाट्य-कौशल की परख इसी आधार पर की जाती है कि नाटककार दर्शकों के सामने तत्कालीन जीवन-मूल्यों को प्रस्तुत करने में समर्थ है या नहीं ।

7.5 भाषा

नाटक चाहे पाठ्य हो या दृश्य-भाषा का उसके लिए अत्यन्त महत्व है। भाषा पर लेखक का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। उसका प्रत्येक शब्द एवम् वाक्य पात्र और परिस्थिति का साक्षात् चित्र-सा प्रस्तुत कर द, यही उसकी सबसे बड़ी सफलता है। जो पत्रों द्वारा रंगमंच पर दर्शकों के सामने प्रभावपूर्ण शब्दावली का प्रयोग होता है वह प्रशंसनीय योग्य होता है। 21वीं शताब्दी के नाटकों में पात्रों के बोलते समय यह आभास नहीं होता कि पात्र रटाई हुई भाषा बोल रहे हैं। पत्रों के आपसी संवादों की भाषा व्यावहारिक और प्रवाहपूर्ण है जिससे पत्रों का अभिनय रंगमंच पर सफल है दिल्ली-6 (ललित सिंह पोखरिया) नाटक में पात्रों के संवाद सहज, सुबोध और मंचीय दृष्टि से उपयुक्त है इसमें सर्वव्यापी भ्रष्टाचार के दौर में प्रदूषित राजनीति का चित्रण है। "प्रीतमपाल: लेकिन ऐसे एकदम से अचानक! आनन्दी पाल: मैंने डी°जी°पी° से पूरी बात कर ली है। आजकल पार्लियो में टकी बैठक नहीं चल रही है, वो मेरठ में ही है।

परसों उनके दिल्ली वाले बंगले से एक आदमी कुछ कागजात लेकर जा रहा है। मैं तुझे उसी के साथ भेज दूँगा। बिहारी लाल: कुछ ही साल की तपस्या हैं प्रतीमपाल बस! बेटा सारा नक्शा बदल जाएगा - पैसा, शोहरत और ताकत सब तेरे कदमों पर होंगे। तू हमारे खान-दान का सूरज बन जाएगा। आलोच्य नाटक में छोटे- छोटे मुहावरों और प्रतीकों का समयानुकूल सार्थक प्रयोग करके नाटककार ने भाषा की अभिनेता को बनाया है। लम्बे वैचारिक संवादों की अवहेलना करते हुए समसामयिक तथा मानवीय दोनों स्तरों से दर्शकों को स्पर्श करते हैं। इन नाटकों की भाषा पात्रों की मर्यादा और योग्यता के अनुकूल है। जिससे नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई नहीं होती है। 21वीं शताब्दी के नाटककार हृषीकेश सुलभ, विभा रानी, नरेन्द्र मोहन, सुशील कुमार सिंह नादिरा जहीर बब्बर, पीयूष मिश्रा, ललित सिंह पोखारिया, सुशीला कपूर, आदि नाटककारो के नाटक की भाषा अपने रंग, ध्वनि स्पर्श और संकेतों तथा सम्पूर्ण मंचीय विशेषताओं से युक्त संवादों के शिल्प में नाटक को आकार प्रदान कर नाट्यनुभूति के एकदम करीब लाती है। नाटक की भाषा को मानव-जीवन की भाषा माना जाता है, क्योंकि जिसके साथ मानव-मन की भावमयी अनुभूतियाँ, मुद्राएँ, क्रियाएँ और स्थितियाँ सदा जुड़ी रहती है, 'गगन दमामो बाज्या' नाटक में पीयूष मिश्रा ने नाटक का आरम्भ काव्यात्मक भाषा से किया है, जो दर्शकों को आकर्षित करती है। भाषा रंगमंचीयता लिए हुए है। "जाड़ों की भीड़ है निकलती जाए गर्मी का काफिला गुजरता जाए बारिश की छींट के जुलूसों के संग पतझड़ का कारवां किलकता जाएं। आलोच्य नाटक में जो गीत आए उनमें लय- विन्यास और भावावेग में अद्भूत तालमेल है। इस नाटक में नाटककार ने मंच के माध्यम से राष्ट्रवादी भावना को दर्शाया है। भगत सिंह और साथियों को आधार मानते हुए आज के युवा वर्ग को उनसे प्रेरणा लेने का संदेश इस नाटक में नाटककार ने दिया है। नैमिचन्द्र जैन का विचार है कि -"नाटक मूलतः काव्य ही है और संसार के समस्त श्रेष्ठ नाट्य-साहित्य की भाषा में काव्य किसी गहन व्यंजना और चमक निरपवाद रूप से मौजुद है। नाटक की भाषा एक विशेष प्रकार के काव्य की भाषा है, जिसका व्यंजनापूर्ण भावगर्भित और उद्दीपन होना एकदम अनिवार्य है। आज के नाटकों में

पात्रों द्वारा भाषा का स्वाभाविक रूप में प्रयोग हुआ है। 21वीं शताब्दी के नाटक कारों ने भाषा के प्रति अधिक सजगता दर्शायी है जिससे नाटकों की भाषा, दृश्य-विधान, अभिनय, गति तथा अन्य रंगीन तत्वों से जुड़कर सत्याभास कराने में समर्थ हुई है। रंगमंच पर नाटक 'हुमा को उड़ जाने दो' में भाषा की औचित्य पूर्ण अभिव्यक्ति हुई हैं रंगमंच पर पत्रानुकूल भाषा की दृष्टि से लेखिका ने इस नाटक की रचना की यह केवल ऐतिहासिक नाटक नहीं बल्कि इतिहास के बेहतरीन तिनकों को बटोर कर काल्पनिक पक्षी हुमा की भान्ति बनाया गया एक काल्पनिक नीड़ है। नाटक की भाषा दर्शकों को प्रभावित करने वाली है। हमीदा बानो: (घायल स्वर में) लेकिन हमारे आने के बाद भी फर्क नहीं पड़ा ! हम भी आपको सुकून नहीं दे सके। हुमायूँ: (अपनेपन से) आइंदा कभी इससे (-प्याले की और इशारा करते) अपना मुकाबला मत कीजिएगा। आप नहीं जानतीं आप हमारे लिए क्या हैं। आपसे हम दिल और दुनिया दोनों की बात करते हैं। इस नाटक की भाषा संज्ञा, सर्वमान्य या क्रिया पदावली भाषा नहीं, बल्कि मंचीय गुणों से युक्त भाषा है। पत्रों द्वारा रंगमंच पर दर्शकों के सामने प्रभावपूर्ण शब्दावली का प्रयोग इस नाटक में दर्शाया गया है। नाटक की भाषा नाटकीय गुणों से युक्त अभिनय के हाव-भाव तथा नाटकीय मनोरंजकता लिए हुए है। 'चार यारो के यार' नाटक रंगमंच पर भाषा की दृष्टि से अनुकूल है। इस नाटक में छः पात्र अपनी स्पष्ट भाषा द्वारा किसी एक व्यक्ति की बजाय एक समूची परिस्थित एक समूचे वातावरण और एक समूची सम्भावना के रूप में अपने आपको प्रस्तुत करते हैं। यह नाटक परम्परागत नाटकों से भिन्न प्रतीक शैली में उस अँधेरे दौरे की व्यंग्यपूर्ण त्रासदी जीवंत दस्तावेज तथा दर्शकों को हिला देने वाली एक सीधी कार्रवाई है तो उसकी भाषा दर्शकों को एक जगह बांध देती है। "दोष मैं किस दूं, सब भाग्य का ही खेल है। यदि मैं अपने पहले पति को छोड़कर दूसरा ब्याह ना रचाती...चोंकिये मत, कोई नयी बात नहीं कर रही हूँ.... दूसरा ब्याह करना कोई गुनाह तो नहीं है और वह भी तब जबकि किसी स्त्री का पति हर रोज नशे में धुत होकर लौटे और अपनी पत्नी के बेजुबान जानवर समझ बेरहमी से पीटना शुरू कर दे... लात, घूंसे, थप्पड़ या जो कुछ भी हाथ में आ जाये... जलती हुई लकड़ी, जूते

या लोहे की राड़.... कब तक सहती... आखिर कब तक...एक दिन जब यह नटकीय यात्ना असहय हो गई, तो मैं। चुपचाप अपने पति को हमेशा के लिए छोड़कर अपनी माँ के यहाँ चली आई....।" इस नाटक की भाषा सहज, सरल तथा रंगमंच के अनुकूल है। पात्रोनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है, जिससे नाटक की कथावस्तु को मंच पर प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई नहीं आई। 21वीं शताब्दी के नाटककार ने इस सामर्थ्य का परिचय दिया है कि नाटक में जिस भाव को व्यक्त करना चाहता है उसी के अनुकूल भाषा का चयन किया है। जिससे नाटककार की भाषा यथार्थवाद को स्पष्ट करती है। नाटककार की भाषा की मंचीय-गति में नाट्य- लय और दृश्य-लय की विलक्षणता, रंग-प्रस्तुति में सर्वत्र दर्शनीय है। भाषा की व्यंग्यात्मक-ध्वन्यात्मकता चोट दर्शकों को आंदोलित करने में समर्थ है।

7.6 रस और उद्देश्य

21वीं शताब्दी के हिंदी नाटकों में प्राचीन नाटकों के समान रसों की योजना भले ही प्राप्त न हो, किंतु इनमें सामाजिक को रसानुभूति करने का प्रयास अवश्य रहता है, जिसके मूल में मानव जीवन को उदात्त बनाने तथा उनकी रूचियों को परिष्कृत करने की भावना रहती है। भारतीय परम्परा के अनुसार नाटकों में रस को प्रमुख माना जाता है। पाश्चात्य परंपरा में उद्देश्य को। अभिनय देखते समय प्रेक्षकगण अभिनीत वस्तु के साथ तादात्म्य प्राप्त करने पर जब अपना सर्वस्व मूल आनंदित हो उठते हैं अथवा अश्रु प्रवाह करने लगते हैं, तो उनके भावों की यह लोकोत्तर आनंदानुभूति की स्थिति ही रस कहलाती है। प्रत्येक नाटक में कोई- कोई रस अंगी रूप में (मुख्य) होता है। और दूसरे रस भी अंग रूप में आ सकते हैं। 'हुमा को उड़ जाने दो' नाटक में हमीदाबानों और हुमायूँ के प्रेमपूरक वार्तालाप में श्रृंगार रस का चित्रण किया है, लेकिन हुमायूँ की मृत्यु पर करुण रस का परिपाक भी हुआ है। "हुमायूँ: (अँगूठी बढ़ाकर) हुजूर यह हीरा भी आप ही की नजर है.... हमीदाबानो: (कुछ लज्जाकर प्रसन्न स्वर में) तो पहनाईए। (हमीदाबानो हाथ आगे बढ़ाती है तो हुमायूँ बहुत प्रेम से उन्हें अगूँठी पहनाते हैं।) हुमायूँ: निखार आ गया हीरे में !

(हमीदाबानो लजा जाती है और अपनी उँगली में पहनाई गई अँगूठी की मोहित भाव से देखती है....)"1 नाटक में मिलने वाले रस से समाज को आनंद आता है। इसलिए कालिदास ने माना है कि "नाटक केवल साधारण व्यक्तियों को ही आनंद नहीं पहुंचाता, बल्कि देवताओं को प्रिय लगने वाला एक यज्ञ का काम भी करता है। नाटक ही एक ऐसा उत्सव है जिसमें भिन्न- भिन्न रूचि वाले प्रत्येक व्यक्ति को एक-सा आनन्द मिलता है। नया सवेरा' नाटक में ठाकुर देवेन्द्र सिंह की पत्नी तारा को मरने के बाद ये व्यय रहता है कि उसका पति दोबारा शादी कर लेगा और पुत्र सूरज को दर-दर की ठोकर खाने पर विवश होना पड़ेगा इस पर तारा कहती है कि "ठाकुर: तारा....। तारा: और एक भीख मांगती हूँ, अन्य राजपूतों की तरह भूल से भी दूसरी शादी मत कराना। कुल की कीर्ति को उज्ज्वल करने के लिये भगवान ने एक पुत्र आपको दिया है, इसके अलावा और कोई कामना न करना। पहले ही हमारे देश में सौतिया-डाह ने कई घरों को जला कर खाक बना डाला है। ठाकुर: ऐसा सोचना भी मेरे लिये पाप है, तारा.....। तारा: मुझे आपसे यही आशा थी...स्वामी....! वो देखे तारो के कमल मुरझाने लगे हैं....अहगोदय की लाली पूरब में फैलने लगी है...नया सवेरा हो चुका है...सबके शरीर में नवरक्त का संचार होने लगा है....और....मेरी....ये असाध्य बीमारी... .अब नष्ट हो चुकी है.... अब नष्ट हो चुकी है. ...स्वामी। ठाकुर: तारा.....। तारा: (सांस उखड़ जाती है) वह...वह देखो...सूरज.... आ गया है.... सफेद आधे बाजू का कोट....गले में कोई डॉक्टरी यन्त्र डाले....। कितना भला लग रहा है वह.... वह....देखो तो.... डॉक्टर बन गया....अब अब.... बिना इलाज के कोई.... तारा नहीं मरेगी....स्वामी.. ..बेटा....सूर....र....ज...। (एक भयंकर चीख उसके मुख से निकली और गर्दन एक झटके के साथ ठाकुर देवेन्द्र की गोद में निर्जीव होकर लुढ़क गई। उन्हें लगा जैसे उनकी पूरी दुनिया वीरान हो गई है।)"1 इस नाटक में भय रस को प्रस्तुत किया गया है जिसमें ए क माँ की व्यथा कथा सुनाई गई है। अलोच्य नाटक में नाटककार ने रस योजना का सफल प्रयोग किया है। नाटककार स्वयं निर्देशक भी है। इसलिए इनके सभी नाटक मंच पर रस परिपाक की दृष्टि से उच्च कोटि के माने जाते है। नाटक दृश्य-

श्रृव्य विधा होने के कारण रस के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ललित सिंह पोखरिया 'दिल्ली-6 में भौतिक सुख की उन्नादी चाहत के फलस्वरूप नैतिक पतन की और सत्त अग्रसर भारतीय युवा समाज में प्रेम और मित्रता जैसे उच्चतर मानवीय भावों के क्षत-विक्षत होने की विडम्बना है। मीडिया जगत के ग्लैमर से सम्मोहित युवा-वर्ग के आकर्मण्य दिशा-हीन जीवन को सही रास्ते पर लाने के लिए प्रेरित करना नाटककार का लक्ष्य है साथ ही राजनीति भ्रष्टाचार के कारण देश की हो रही दुर्दशा का कारण राजनेताओं को मानकर युवा वर्ग को इस भ्रष्टाचार रूपी जाल से बचने की प्रेरणा दी है। नैमिचन्द्र जैन का कथन है कि - "प्रत्येक नाटककार की परिस्थितियाँ स्वभाव तथा रूचियाँ भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। वह अपनी समसामयिक समस्याओं व उलझनों को अपने दृष्टिकोण से विश्लेषित करता है।"1 थान सिंह के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किये है कि "में लोकतंत्र के प्रहरी मीडिया के सामने आत्मसमर्पण करता हूँ कहते हैं दर्द हद से बढ़ जाए तो दवा हो जाता है ठीक वैसे ही आज मेरे आतंकी पागलपन का दौरा हद से बढ़कर मुझे हैवान से इंसान बना गया।2 21वीं शताब्दी के नाटक कारों का मुख्य उद्देश्य दर्शकों के मन पर कोई प्रभाव अंकित करना अथवा किसी विचार को उनके मस्तिष्क पर जमाना होता है। "अलख आजादी की" (सुशील कुमार सिंह) में नाटककार ने शासनतंत्र की पोल खोली है। नाटककार ने अपने पैने लेखन से यह संदेश देने का प्रयास किया है कि आजादी को बरकरार रखना एक बड़ी बात है। चारों और भ्रष्टाचार और घोटालों में डूबे नेताओं , नौकरशाहों के भरोसे देश किस करवट बैठेगा? नाटककार ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को आमंत्रित करने के प्रश्न को ईस्ट कम्पनी और तमाम युरोपियन चरित्रों से जोड़ा है। 'समुद्र के रास्ते यूरोप से भारत आने जाने का मार्ग उस समय किसी को मालूम नहीं था। ईसा की 15वीं शताब्दी से युरोपियन ने भारत का जलमार्ग खोजने के प्रयास शुरू किये। ..... स्पेन, पुर्तगाल, हॉलेंड, इंग्लिस्तान और फ्रांस.....इस होड़ में य े पाँच देश शामिल हुए और लगभग सौ साल तक भटकते रहे।..... अनेक जहाज बर्बाद हुए.....बहुत सी जाने गई और काफी धन नष्ट हुआ। इटली का कोलम्बस पहला नाविक था जिसने भारत पहुंचने का बीड़ा उठाया था,

लेकिन भारत पहुंचने की बजाय सन् 1492 में वह पहुंच गया अमेरिका। (व्यंग्यपूर्वक) जिसे मरते दम तक वह भारत ही समझा रहा। 'अलख आजादी की' आलोच्य नाट्य कृति में देश के गुलाम होने की ओर बढ़ रहें है। अन्तर इतना है कि पहले भौगोलिक सीमाओं को लेकर परतंत्रता थी और अब आर्थिक परतन्त्रता। 21वीं शताब्दी के नाटक कारों ने अपने नाटकों में मानव के शाश्वभाव, अनुभूतियों और समस्याओं को स्थान दिया है और इनका यथार्थ एवम् आदर्श-चित्रण ही प्रमुख रूप से किया है। वर्तमान नाटक उच्चकोटि के माने जाते हैं क्योंकि ये अनुभूतियाँ, भाववेगा, संवेदनाओं से युक्त हैं। नाटक की गहनता नाटककार के महान लक्ष्य एवम् प्रेरणा पर आधारित है। 21वीं शताब्दी का नाटककार अपने उद्देश्य को पाठकों एवं सामाजिको के समक्ष प्रत्यक्ष रूप मन रखकर परोक्ष रूप में घटनाओं, पत्रों के क्रियाकलापों एवं उनकी बातचीत के माध्यम से व्यंजित करता है। 21वीं शताब्दी के नाटक कारों ने ऐतिहासिक अथवा सामाजिक कल्पना प्रधान या यथार्थ प्रधान नाटक लिखे है, उसमें मान जीवन का चित्रण अवश्य किया है। प्रत्येक नाटक किसी न किसी उद्देश्य को देखकर लिखा जाता है। नाटक का उद्देश्य चाहे सामाजिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं अथवा आर्थिक यश की प्राप्ति का चित्रण करना हो। परन्तु वह एक बिम्ब पर टिकाये होता है जो एक पुष्ट उद्देश्य को बनाये रखता है मानव स्वभाव के अनेक गुण, अनेक रूचियों एवं कार्य-कलापों का अधिकाधिक स्पष्ट, स्वाभाविक एवं कलापूर्ण चित्रण किया है।

7.7 वर्तमान रंग मंचीय संकल्पना

21वीं शताब्दी के नाटकों का रंग मंचीय अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि नाटक रंग मंचीय दृष्टि से सफल है। 'अमली', 'अगले जन्म मौहे बिटिया न कीजौ', गगन दमामों बाज्या 'धरती आबा', 'आगरा बाजार', 'एक जिद्दी लड़की', 'अग्नि तिरिया', जनवासों आदि नाटक रंग मंचीय दृष्टि से सफल है। वर्तमान समय में इस बात की आवश्यकता महसूस की जा रही है कि एक इस प्रकार का रंग मंचीय विधान का विकास किया जाये, लो एक साथ नाटक के साहित्यिक और रंग मंचीय पहलू को प्रकट

करने की कौशिश कर। मंच पर नाटक के भावात्मक गुण को अभिनेता की भाव-भंगिमाओं, वाणी और संवाद द्वारा दर्शकों के सम्मुख लाया जाता है। यथा - "कैशियर: (मंच पर सामने की ओर आ जाता है, सबको चुप कराते हुए) शांत हो जाइए आप सब (हाथ को हिलाते सबको शांत करता है) 'कॉफी होम' की शांति भंग मत करिए। यहां का वातावरण दूषित मत करिए.....आप सब इस कॉफी होम में , जरा सोचिए, सिर्फ बात करने से क्या होगा? कुछ करिए, देश के लिए, देश की जनता के लिए, अपनी-अपनी जगह जाकर, अपना-अपना काम ठीक से करिए', यह कहा गया है कि एक नए दृष्टिकोण की जरूरत है, सिर्फ कॉफी होम में बैठकर चर्चा करने से समस्याएँ समाप्त नहीं होगी। नाटक में प्रस्तुत भाव व्यवस्था पर प्रहार समझ में आ जाती है। 21वीं शताब्दी के नाटक कारों का रंगकर्म बेहद सशक्त होकर सामने आया है। उनके अभिनेता जमीन से जुड़े हुए हैं। जी, जैसी आपकी मर्जी.....नाटक के माध्यम से नाटककार ने समाज में नारी- भावना की क्या भूमिका है? को रेखांकित किया है। "दीपा: मैं हमेशा सोचती हूँ ऐसा क्यों होता है ? क्यों अम्मा को मार पड़ती है ? क्यों हम बहनों को मार पड़ती है, क्यो भैया इंग्लिश मीडियम में और हम बहिन हिन्दी मीडियम में .....? भैया को दो-दो ट्यूशन फिर घिस-पिट के पास होता है। हम बिना ट्यूशन के स्कॉलरशिप लाते हैं।'1 मंचीय प्रयोग में दीपा का वाचिक अभिनय रंगमंच के अनुकूल है। इस नाटक में अभिनय के सभी प्रकारों को देखा जा सकता है।2 "नाटक की शैली कथावस्तु की अभिव्यक्ति को सुन्दर और प्रभावपूर्ण बनाती है। शैली वही होनी चाहिए जो विषय की मांग को पूरा करती हो। अगर शैली विषयवस्तु पर हावी होने लगे तो नाटक खराब हो जाता है.....दरअसल शैली एक अमूर्त चीज है और विषय बदले जाने पर शैली भी बदल जानी चाहिए। 21वीं शताब्दी के नाटककार ह्रषीकेश सुलभ रंग सज्जा को बहुत सादगी भरा रखते है। 'अमली' नाटक में विदेसिया शैली की सार्थक रंगयुक्तियों का नए तरीके से कुशलता के साथ इस्तेमाल किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी रंगमंच के भीतर यह एक नया प्रयोग है। इस नाटक में पारम्परिक गीता एवं नृत्यों का समन्वय किया गया है जो नाटक के कथ्य एवं विदेशीय शैली दोनों के अभिन्न अंग हैं। सूत्रधार और

गड़बड़िया जैसे पात्र 'अमली' को एक ओर संस्कृत परम्परा से जोड़ते हैं तो दूसरी ओर लोक परम्परा सो संगीत हृषीकेश सुलभ की नाट्य प्रस्तुतियों का बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। गीत-संगीत उनकी प्रस्तुतियों के अनिवार्य घटक के तौर पर मौजूद हैं। ये कभी पत्रों के विचार प्रकट करते हैं, कभी कथानक को आगे बढ़ाते हैं। संगीत के लिए सुलभ जी ने विविध आंचलिक धुनों का प्रयोग किया है। "अमली बटोही गीत भइया बटोहिया रे तुहुँ जाले कवना देस ? दिन भर बिलमि के मोर सनेस सुन, भाइया बटोहिया रे तुहुँ जाले कवना देस ? रोजी-रोजगार करें, रुपिया कमाई कर, भइया बटोहिया रे पिया मोरा गइले विदेश। रोवत-रोवत मोरी अँखिया पिरइली रे, भाइया बटोहिया रे एको नाहि भेजले सनेस, सुन रे बटोहिया, सुन मोरे भाई, भाइया बटोहिया रे जिन्दगी में इल मोल कलेस। बटोही: मन मोरे दुःखी भइले सुनि के वियोग तोर, बहिनी अमली रे सहलो ना जाला तोर कलेस। 21वीं शताब्दी के नाटक 'अमली' में नाटककार हृषीकेश सुलभ के संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। नाटककार ने निर्देशक को गीतों के कुछ परिवर्तन की स्वतंत्रता भी दी है। भाषा की दृष्टि से यह नाटक रंगमंच पर पूर्णतया सफल है। नेमिचन्द्र जैन का विचार है कि "रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्राण प्रतिष्ठा के बिना नाटक को सम्पूर्णता प्राप्त नहीं होती। इसलिए रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन या उसके विविध अंगों और पक्षों पर विचार अपूर्ण ही नहीं, भ्रामक हो जाता है। 21वीं शताब्दी के नाटककार रवीन्द्र भारती की शैली बहुत बड़ी विशेषता है। उनके मंच पर कोई भी दृश्य अभिनय का कोई भी हिस्सा, दृश्यबन्ध का कोई भी सामान अनावश्यक नहीं होता है। इनके नाटक 'जनवासा' में स्टेज शांत रहता है। इस नाटक को कई स्थानों पर मंच पर खेला जा चुका है। इनकी शैली में रंगमंच पर उत्सव हो जाता है। नाटक में रस भी तभी उत्पन्न होता है जब पात्र का दर्शक से तारतम्य होता है। भूदानी बाई लोक संस्कृति की महिमा का उल्लेख करती है कि संपन्न लोकसंस्कृति का हमारे जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। भूदानी बाई: लोक संस्कृति लोक, गाथाओं में रथ- में उर की बड़ी महिमा है। इस धरोहर को अश्रुण्ण रखने की जरूरत है। इन्हीं से जन्मी है लोक गाथाएं और जन्में हैं हजारों लोकगीत। ईश्वर भाई: यानी यह काम की

चीज है। भूदानी बाई: यह तो समझने पर है।2 प्राचीन नाटकों में उच्च कुल संपन्नता के आधार पर नायक नायिका को स्थान दिया जाता था, परंतु वर्तमान में नाटककार सामान्य जन को आधार बनाकर अपने नाटक को रचता है। 'धरती आबा' नाटक में ए क भारतीय पारम्परिक दंग दृष्टि का नया आयो में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। इस नाटक में नाटककार ने हमारी पश्चिमों भिमुखी प्रवृत्ति को रोकने का प्रयास किया गया है। और साथ ही हिन्दी रंग दृष्टि को उसकी जड़ों से जोड़े रखकर भी एक विशिष्ट प्रकार की आधुनिकता प्रदान की है। हृषीकेश सुलभ के सम्पूर्ण रंगकर्म की विशेषता सादगी ही है। वे हँसते-हँसते हुए ऐसी बातकर जाते हैं जो गंभीरता में भी नहीं कही जा सकती। करमी: मेरा रोना कोई नहीं सुनता। विरसा: मैं सुन रहा हूँ माँ। करमी: मुझे कोई नहीं देखता। विरसा: तुम कहाँ हो माँ? करमी: तेरी छाती में हूँ !.....तेरे खून में हूँ। तेरी साँसाम..... तेरी आवाज में । नाटक में रंगमंच की दृष्टि से विशिष्ट बन्धनों का पालन करके साध्य तक पहुंचना पड़ता है। रंगमंच से सम्बन्धित प्रत्येक दिशा-ध्वनि, प्रकाश व्यवस्था और दृश्य-सज्जा आदि की दृष्टि से 21वीं शताब्दी के नाटक रंगमंच के अनुकूल है। रंगोपयुक्त भाषा के साथ ही रंग नाटक में रंग प्रभाव बढ़ाने के लिए सेर एवं प्रकाश व्यवस्था पर खासा ध्यान दिया जाता है। प्रकाश-व्यवस्था मंच पर रोशनी के साथ ही नाटक की शैली ओर वृत्ति दर्शाने में सहाय क होती है। परिवार से समाज तक त्रस्तु, एकांकी, कुण्ठित, भविष्य की आशा से रहित वर्तमान के अंधकार में भटकते विद्रोह की अपेक्षा मानसिक आक्रोश में उलझ े मानव की पीड़ा और अन्तर द्वन्द्व का रंगमंच पर पूर्ण प्रभाव 21वीं शताब्दी के नाटककार का है। "चित्र, मूर्ति, संगीत तथा अन्य कलाओं की अभिव्यक्तियों की अपेक्षा रंगमंच जीवन को आर्थिक समग्रता, सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करता है। भविष्य में हिन्दी नाटककार यदि रंगमंच की एक नई तस्वीर तैयार करना चाहते हैं तो उन्हें विविध छविया, रंगों और गतियों से भरपूर होने के साथ-साथ अपने निहितर्थ में दर्शक वर्ग के अन्तर मन को गहरे तक भेदने की क्षमता रख।

निष्कर्ष

21वीं शताब्दी आधुनिक तकनीकी की शताब्दी है। प्रत्येक क्षेत्र में नई- नई तकनीक का प्रयोग हो रहा है। नाटक को रंगमंच पर सफलतापूर्वक दिखाने के लिए नई-नई आधुनिक तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। नाटककार नाटक रचना करते समय रंग मंचीय अवधारणा का पूरा चित्र अपने मानस पटल पर लेता है। साहित्य की प्रत्येक विद्या को युगानुकूल संप्रेष्य को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने के लिए प्रत्येक युग में नया रूप धारण करना पड़ता है, आज रंगमंच के अनुकूल जो नाटक लिखे जा रहे हैं। उनकी संख्या लगातार बढ़ रही है, परंतु जिस शिक्षित वर्ग को नाटककार नाटक दिखाना चाहता है उसका उन नाटकों से परिचय ही नहीं है। यही रंगमंच की असफलता का कारण भी है। हिंदी में नियमित नाटक मंचन करने वाली रंग-संस्थाएं नहीं के बराबर है जिससे वर्तमान समय में हिन्दी रंगमंच की स्थिति बड़ी चिंतनीय दिखाई दे ही है। हिन्दी रंगमंच के विकास के लिए गहरी साधना और लगन जरूरी है। 21वीं शताब्दी का पहला दशक बीते जाने पर यह स्पष्ट रूप में दिखाई देने लगा है कि वर्तमान समय में हिंदी रंगमंच में सीधी-सीधी यथार्थवादी प्रस्तुतियों के ज्यादा स्थान नहीं रहा है। वर्तमान समय नाटककार और निर्देशक दोनों को मिल-जुल कर कार्य करना चाहिए। 21वीं शताब्दी का नाटककार मंच की सीमाओं को दृष्टि में रखकर ही नाटक लिखे रहे हैं, जिससे नाटक रंगमंच पर खरे उत्तर रहें हैं। आज नाटककार मानवीय संवेदना के बहुविध रूपों को रंग मंचीय दृष्टि से पचाकर शिल्प दृष्टि से पचाकर शिल्प दृष्टि से पारंपरिक और नवीन नाट्य शैलियों का अद्भूत सम्मिश्रण कर रंगमंच को नयी दिशा दे रहा है।

संदर्भ सूची

[1]. अहा! जिन्दगी पत्रिका, अंक 05 जनवरी 2011, पृ° 13

[2]. रंगकर्मी राम गोपाल बजाज, अहा! जिंदगी अंक 05, जनवरी 2011, पृ° 11

[3]. बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, पृ° 55

[4]. ललित सिंह पोखरिया, दिल्ली-6, पृ° 9

[5]. नादिरा जहीर बब्बर, जी जैसी आपकी मर्जी, पृ° 16

[6]. डॉ° विश्वनाथ शर्मा, हिन्दी रंगमंच का उद्भव विकास, पृ° 22

[7]. ललित सिंह, पोखरिया, दिल्ली-6, पृ° 35

[8]. विपिन गुप्त, हिन्दी नाटक में ¬ समसामयिक परिवेश, पृ° 44

[9]. युष मिश्रा, गगन दमामा बाज्यो, पृ° 61

[10]. विभारानी, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो, पृ° 53-54

[11]. जयदेव तनेजा, समसामयिक हिन्दी नाटका¬ में ¬ चरित्र-दृष्टि, पृ° 14

[12]. रवीन्द्र भारती, अगिन तिरिया, पृ° 68

[13]. रवीन्द्र भारती, अगिन तिरिया, पृ° 68

[14]. रवीन्द्र भारती, अगिन तिरिया, पृ° 32-33

[15]. सुमन कुमार, अगिन तिरिया नाटक की भूमिका में ¬, पृ° 14

[16]. मोती लाल क्यूम, रंग राजतरंगिणी, पृ° 30-31

[17]. शान्ति मलिक, नाट्य सिद्धान्त विवेचन, पृ° 71

[18]. सुशील कपूर, आज का सच, पृ° 27

[19]. लक्ष्मीनारायण लाल, आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ° 46

[20]. सुशील कुमार सिंह, चारा¬ चारा¬ के पार, पृ° 26

[21]. सुशीला धीर, भारतेन्दु युगीन नाटक, पृ° 30

[22]. नादिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ° 18

[23]. मोती लाल क्यूम, रंग-राजतरंगिणी, पृ° 28

[24]. विपिन गुप्त, हिन्दी नाटक में ¬ समसामयिक परिवेश, पृ° 471

[25]. हृषीकेश सुलभ, अमली, पृ° 40

[26]. ललित सिंह पोखरिया, दिल्ली-6, पृ° 30-31

[27]. पीयूष मिश्रा, गगन दमामा¬ बाज्या¬, पृ° 43

[28]. नैमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ° 29

[29]. मीराकांत, हुमा को उड़ जाने दो, पृ°

[30]. मीराकांत, हुमा को उड़ जाने दो, पृ° 34

उपसंहार

नाटक एक प्रयोग मूलक कला है जिसमें जनसंप्रेषणीयता का गुण सबसे अधिक होता है। नाटक का उद्देश्य दर्शकों के मनोविनोद के साथ-साथ हितों पे देश देना भी है। नाटक और रंगमंच का संबंध शब्दों में प्राण फूंकने की लंबी प्रक्रिया से स्पष्ट होता है। नाटक की सार्थकता और जीवंतता उसके रंग मंचीय आयामों में दिखाई देती है। नाटक की प्रयोगमूलक वृत्ति ही उसे साहित्य की अन्य विधाओं की उपेक्षा केवल शाब्दिक रूप के सीमित आकार से मुक्त कर उसकी सर्जनात्मक क्षमता को कई गुणा बढ़ा देती है। नाटक में दृश्यात्मक और श्रव्यात्मक दोनों प्रकार के तत्वों का समावेश इसे अन्य विधाओं की अपेक्षा विशिष्ट बना देता है। नाटक मूर्त रूप देने की पृष्ठभूमि तो नाटककार अपनी नाट्यकृति में ही तैयार कर देता है। लेकिन उसका वास्तविक उत्कर्ष रंगमंच पर ही संभव हो पाता है। रंगमंच पर ही नाटक पुर्नजीवन, पुर्नव्याख्या प्राप्त करते हुए नाटककार के उद्देश्य को सार्थकता प्रदान करता है। यह एक सामाजिक कला है जिसमें अनेक कलाओं का संगम है। भिन्न-भिन्न मानसिकता, धर्म, व्यवहार आदि के दर्शक इस सामूहिक कला को देखते हुए एक जैसी अनुभूति से होते हुए परस्पर भाव के एकसूत्र हो जाते हैं। अतः साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक से अधिक सघन और बहुआयामी होने की मांग रहती है। नाटक के ये गुण मंचन प्रक्रिया में ही उजागर होता है। नाटकीय संवाद, कथानक, चरित्र चित्रण, उद्देश्य आदि सभी में बहुआयामिता से नाटक में गहराई नजर आएगी। नाटक में जितनी 296 अधिक संभावनाएँ होगी उतनी ही उसकी प्रासंगिकता बढ़ेगी। नाट्य शास्त्रकार भरत मुनि ने भी 'नाट्यशास्त्र' के अंतर्गत नाट्य का वर्णन करते हुए उसे कहीं भी रंग मंचीय परिकल्पना से पृथक करके नहीं देखा है। एक रंग प्रपोक्ता ही मंच, अभिनय, संवाद, निर्देशक, दर्शक, अभिनेता आदि पर इतनी चर्चा कर सकता है। इस व्यावहारिक चर्चा के कारण ही 'नाट्यशास्त्र' को व्यावहारिक विज्ञान भी कहा जाता है।

नाट्य कला की भारतीय परंपरा अति प्राचीन है। इसका प्रमाण संस्कृत रंगमंच की समृद्ध परंपरा के रूप में हमारे सामने है। यद्यपि अनेक देशी-विदेशी व्यवधानों से यह परंपरा लुप्त प्रायः हो गई थी तथापि लोकनाट्य रूप में निरंतर प्रवहमान रही। हिंदी नाटक और रंगमंच का पुनरुद्धार ब्रिटिश भारत की औपनिवेशिक परिस्थितियों में अंग्रेजों के आगमन के बाद हुआ। अंग्रेजों के मनोरंजन के लिए कई पारसी कंपनियों का उदय हुआ जिनका उद्देश्य तो मात्र दर्शकों की भीड़ इकट्ठी करके उनका मनोरंजन करना था लेकिन जाने अनजाने इन्होंने हिंदी रंगमंच को भी समृद्ध किया था इन पारसी कंपनियों के समानांतर ही अन्य अनेक मंडलियाँ भी हिन्दी रंगमंच के उत्थान में सक्रिय योगदान दे रही थी। भारतेंदु काल से नाटक और रंगमंच को विशेष रूप से समृद्धि प्राप्त हुई। भारतेंदु और प्रसाद युग में प्राचीन और नवीन विचारधाराओं के बीच संघर्ष चल रहा था। भारतीय जनमानस को जाग्रत करने में भारतेंदु के पश्चात प्रसाद भी आगे आए और एक समन्वित शैली के प्रयोग से हिंदी नाट्य संपदा को समृद्ध किया। हिंदी नाटक और रंगमंच को जनोपयोगी बनाने के लिए शुक्लोत्तर युग के रंगकर्मियाने हिंदी भाषा और भारतीय रंगशैली को महत्व देते हुए ऐसे नाटक लिखे और प्रस्तुत किए जो आमजन को अपने लगे। सन् 1933 के पश्चात रंग मंचीय गतिविधियां क्षीण होती गई और नाटक को पाठ्य और मंचित के रूप में विभाजित किया जाने लगा। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश साम्राज्य और पूंजीवादी व्यवस्था के कारण बंगाल में जो मानव कृत अकाल पड़ा था, उसने भी साहित्यकारों, समाजसेवियों और लेखकों को उद्वेलित किया। आम जनता की समस्या को राष्ट्रीय रूप देने के लिए 'इप्टा और 'पृथ्वी थियेटर' जैसी संस्थाओं के कार्य भी उल्लेखनीय हैं। हिंदी रंगमंच के पुनरुत्थान के लिए इन्होंने कई नाटक लिखे और पूरे भारत में घूम-घूमकर उन्हें प्रस्तुत भी किया। तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं को अपनी प्रस्तुतियों का विषय बनाया और पारंपरिक रंग शैलियों में प्रस्तुत करके अखिल भारतीय रंग चेतना का प्रसार किया।

विभिन्न संस्थाओं और मंडलियों ने अपनी मेहनत से भारतीय रंगमंच के सूत्रों को संजोए रखा। पांचवे दशक में सरकार ने सांस्कृतिक धरोहरों के अंतर्गत रंगमंच के उत्थान की ओर ध्यान दिया तो उसका सुखद परिणाम राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के रूप में हमारे सामने था। भारतीय परंपरा से विमुख और पश्चिमी परंपरा का अनुगमन करते-करते रंगकर्मियों को अधूरे पन का अहसास हुआ तो उन्होंने अपने रंगमंच की तलाश प्रारंभ की। भारतीय मानस की ग्रहणशील समन्वयकारी मूल प्रवृत्ति फिर से उभरने लगी। इस समय हिंदी नाटक ओर रंगमंच में अपना स्वतंत्र, सार्थक अस्तित्व पाने की छटपटाहट दिखाई देती है। देश, संस्कृति और समाज को रचनात्मक आधार देने की सक्रियता के साथ-साथ आधुनिक जीवन के अनुभवों को भी निष्ठापूर्वक अभिव्यक्त करने की भावना देखी जा सकती है। इस नई सर्जन शील भारतीय रंग-दृष्टि का विकास विभिन्न परंपरा-सूत्रों के समन्वयात्मक रूप में ही संभव हो सकता था। एक तरफ नाट्य विद्यालय जैसी सरकारी सहायता प्राप्त संस्था रंगमंच के उत्कर्ष में लगी थी तो दूसरी तरफ भिखारी ठाकुर, हबीब तनवीर, लख्मी चंद और नौटंकीकार श्रीकृष्ण पहलवान, नत्थाराम गौड़, त्रिमोहन उत्साद आदि रंगकर्मियों में इतना साहस था कि अपने ही बल पर भारतीय रंगमंच के सूत्रों को बांधे हुए थे। रंगकर्मियाने जान लिया था कि परंपरा के साथ निर्भीक साक्षात्कार रंगमंच की सार्थकता के लिए अत्यंत आवश्यक है और इसी से भारतीय रंगमंच की अपनी एक विशिष्ट पहचान बनेगी। परंपरा का अर्थ यह नहीं है कि अतीत के चौखटे, में वर्तमान को जड़ दिया जाए बल्कि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परंपरा का नवीन संदर्भों में वर्तमान के साथ संयोजन करना है। जब एक साथ पूरे भारत में अलग-अलग कोनों से रंगकर्मियाने हिंदी मंच पर भारतीय रंगमंच के तत्वों का प्रयोग कर उसे समृद्ध किया। यह दौर और बाद में सत्यदेव दूबे, राजिन्दर नाथ, ब० व० कारंत, बंसी कौल, राम गोपाल बजाज, जैसे निर्देशकों का है जिन्होंने भारतीय रंगमंच के रूप और स्तर की बिल्कुल परिवर्तित कर दिया था। शंभु मित्र द्वारा 'रक्तकरबी' (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) हबीब तनवीर का छत्तीसगढ़ी शैली में 'आगरा बाजार' 'इब्राहिम अल्काजी द्वारा 'आषाढ़ का एक दिन' और 'अंधायुग', विजय तडुलकर का

'घासीराम कोतवाल' शेक्सपीयर के 'मैकबैथ' पर आधारित ब० व० कारंत की प्रस्तुति 'बरनम वन', शंकरशेष कृत 'एक और द्रोणाचार्य यक्षगान शैली में 'अंधायुग' की प्रस्तुति आदि कुछ ऐसे चर्चित नाटक है जिन्हें पारंपरिक शैलियों में प्रस्तुत कर ये सभी रंगकर्मी मौलिक और कल्पनाशील रंगकार्य के सूत्रधार बने और एक ऐसा रंगमंच विकसित किया जो बनावट और चरित्र में हिंदी का अपना रंगमंच कहलाए। इस प्रकार भारतीय रंगमंच को जानने के लिए परंपरा से जुड़ना अनिवार्य हो गया।

आज रंगमंच के संदर्भ से नाटक को देखने समझने की दृष्टि में जो नवीनता दिखाई पड़ती है, वह उल्लेखनीय है। हमारी रंग परंपरा में निहित अन्त शक्ति विश्व में अपनी अलग पहचान बनाने में समर्थ है। वैज्ञानिक विकास से नाटक और रंगमंच को काफी बल मिला है। 21वीं शताब्दी के नाटकों का उद्देश्य मात्र मनोरंजन तक ही सीमित न होकर मानव की विविध समस्याओं से दर्शकों को अवगत कराकर, उन्हें उनसे जूझने, समझने एवं विमुक्त होने की प्रेरणा देना है। आज हिन्दी रंगकर्म को अपनी श्रेष्ठ नाट्य कृतियों से समृद्ध करने वाले नाटक कारों की एक लम्बी श्रृंखला बनती है। नादिरा जहीर बब्बर, पीयूष मिश्रा, सुशील कुमार सिंह, शशि किरण, रवीन्द्र भारती, हृषीकेश सुलभ, हबीब तनवीर, उषा गांगुली, संजय सहाय, देवेन्द्र राज अंकुर, मोहन महर्षि किशोर कुमार सिन्हा, स्वदेश दीपक, कृष्ण बलदेव वेद, कृष्ण अम्बष्ट, दया प्रकाश सिन्हा, राधाकृष्ण सहाय आदि का 21वीं शताब्दी के नाटक कारों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके सभी नाटकों का विभिन्न कस्बा, गांव, नगरों में निरंतर हो रहा मंचन इस बात का प्रमाण है कि रंग चेतना की दृष्टि से उनके नाटक बेहद समृद्ध है। 21वीं शताब्दी के पसरे पांवों ने समूची व्यवस्था को बाजार में तबदील कर मनुष्य को मशीन का पर्याय बना दिया है। नाटकों के बदलते रंग मंचीय स्वरूप में स्वाभाविक मूल्यों को बदल कर रख दिया है। जीवन में तनाव, कुण्ठा, घुटन, कामुकता, दोहरा व्यक्तित्व, स्वार्थीपन घर कर गया है। आपसी रिश्तों में विघटन आ गया है। संयुक्त परिवार में टूटन, एकल परिवार, लिव-इन-रिलेशनशिप को बढ़ावा मिला है। नारी अपने वर्ग में एक प्रतिष्ठित की भूमिका पाकर पुरुष वर्ग को टक्कर दे रही है। पुरुष की ईर्ष्या भावना के कारण नारी

शोषित हो रही है। इन नाटक कारों ने समाज के बदलते दृष्टिकोण को सटीक ढंग से उठाने का प्रयास किया है। आज के सामाजिक परिवेश में मानवीय संबंधों के एकदम चोंकाने वाले आयो में उभर कर सामने आये है।। समलेंगिकता इसी प्रकार का एक विषय है, जिसे हम चारों और देखते हैं और अनुभव करते हैं। हबीब तनवीर ने 'बहादुर क्लारिन के माध्यम से सामन्तवाद पर वार किया है। इनका रंगमंच देशी तरीकों से हमारे समाज के मामूली हालात की कहानी कहता है। 'आगरा बाजार' में मंदी और सियासी मार से पिटते आम आदमी को किरदार बनाया है। हबीब तनवीर उस साधारण व्यक्ति की बात करते थे जो गुणधारी हो जो रक्षणीय हो।

नाटककार एवं निर्देशक हृषीकेश सुलभ ने लोकनाट्य शैली बिदेसिया में अन्तर्निहित शक्ति को पहचाना और उसे आधुनिक रंग दृष्टि के साथ जोड़कर उसके स्वरूप व संरचना मे बदलाव कर नई अर्थ सम्भावनाएँ पैदा की। भारतीय परम्परा रंगदृष्टि का नया आयो में प्रस्तुत करने का प्रयास किया 'अमली' में हास्य और रोमांस के क्षणों के बीच शोषण और अत्याचार के विभिन्न चरित्रों को 301 उभारा है। 'धरती आबा' जीवन में संघर्ष ओर लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए विभिन्न परिस्थितियों का सामना करने के लिए प्रकरित करने वाली एक ओजपूर्ण गाथा को रंगमंच के अनुकूल दिखाया है। सुशील कुमार सिंह के 'अलख-आजादी की' नाटकमात्र एक रंग मंचीय नाटक ही नहीं है बल्कि यह हिन्दुस्तान के विगत चार सौ सालों का बेबाक लेखा-जोखा है। 'चार यारो के यार' नाटक की मुख्य पात्र बिन्दिया की त्रासदी नाटककार ने स्त्री-पुरुष संबंधों को कई पहलुओं से अंकित किया है। 'रूदाली' नाट्य-शिल्प के स्तर पर सफल रचना है। इसमें समाज के निम्नतम वर्ग में स्त्री-जीवन की एक लोमहर्षक बिडम्बना को रेखांकित किया गया है। 21वीं शताब्दी के नाटकों में प्रमुख रूप से भ्रष्ट राजनीति, पतनोन्मुख परिवार और समाज के विविध पक्षों कों उठाया है। अनेक नाटकीय पात्र मानवीय विवशता का प्रदर्शन तो करते ही है, साथ ही वे वर्तमान जीवन बोध एवम् आधुनिक संवेदना, मानव के द्वन्द्व, संघर्ष और तनाव को नवीन अर्थ संदर्भों के साथ जीवन्त रूप में उजागर करते है। 21वीं शताब्दी के नाटक विभिन्न सन्दर्भों में विभिन्न

आयामों को उद्घाटित करने में समर्थ है। यही कारण है कि नाटक की समाप्ति के बाद भी दर्शक सोचने को मजबूर हो जाते हैं। अलग आजादी की, धरती आबा, अमली, आगरा बाजार, जरूरत इसी की थी, यहीं कही.....बहुत दूर, जैसे नाटक समकालीन हिन्दी रंगमंच में कथ्य, शिल्प तथा भाषा के क्षेत्र में नवीन तथा बड़ी सम्भावनाओं को जन्म देते हैं।

21वीं शताब्दी अपने आप में एक ऐसी अद्भूत शताब्दी है जिसमें कई प्रकार के संक्रमण दिखाई पड़ते है - सभ्यतागत जैसे पश्चिमी का अंधानुकरण, तेजी से बढ़ती आणाविक शक्तियाँ (Atomic Powers), तकनीक और उद्योगों का बढ़ता उपयोग और दुरुपयोग व कम्प्यूटर मोबाइल आदि का अविवेकपूर्ण प्रयोग मानवीय शक्तियों के दुरुपयोग फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में जलवायु संक्रमण भौतिक व प्राकृतिक परिवर्तन इन सबके प्रभाव से मनुष्य के विचार उसका तन और मन दोनों ही प्रभावित हुए है दिन-प्रतिदिन सांस्कृतिक ह्रास होती जा रही है उन्नति की होड़ में हम अवनति की ओर जा रहे है जिसका प्रभाव साहित्य जगत पर भी पड़ा है। मुख्य रूप से हिन्दी नाटकों में 21वीं शताब्दी के परिवर्तित स्वरूप का मुखर रूप दिखाई पड़ता है अपहरण (कृष्ण नन्दन), आज की पुकार (मधु धवन), अधमुण्डा सिर और चौथी टाँग (अमृत लाल मदान), दिल्ली-6 (ललित सिंह पोखरिया), धारा एक सौ चवालीस (किशोर कुमार सिन्हा), फिर से जहाँपनाह (प्रभाकर श्रोत्रिय) आदि शोध छात्रा ने अपने विषय का बड़ी गंभीरता से अध्ययन किया है उसका प्रयास रहा है कि मूल नाटकों के परिप्रेक्ष्य के बदलते सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्वरूप का शोधगत, विवेचन किया जाए, विभिन्न विद्वानों जैसे 'दशरथ ओझा', 'लक्ष्मी नारायण लाल', नेमिचन्द्र जैन', 'विश्वनाथ शर्मा', 'वीणा गौतम', 'दवेन्द्र राज अंकुर' आदि के ग्रन्थों व पूर्व में हुए शोध कार्यों के अध्ययन के उपरान्त तथ्यों से युक्त निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए पूरे शोध-ग्रन्थ को छः अध्यायो में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय में हिन्दी नाटक अर्थ स्वरूप व 303 परिभाषा; नाटक और रंगमंच का पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में व्याख्या की गई है। द्वितीय अध्याय में रंगमंच अर्थ स्वरूप व परिभाषा का अध्ययन किया गया है। रंगमंच के तत्त्व व

आधुनिक रंगकर्म की प्रयोगशीलता का उल्लेख किया गया हैं तृतीय अध्याय में हिन्दी रंगमंच की विकास यात्रा के विविध आयो में स्वतंत्रता से पूर्व व स्वतंत्र्योत्तर रंगमंच की स्थिति पर विचार किया गया है। 21वीं शताब्दी रंगमंच के सामान्य परिचय का अध्ययन किया गया है। चतुर्थ अध्याय के अन्तर गत 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का संक्षिप्त परिचय देते हुए बदलते आधुनिक परिवेश व बढ़ते वैश्वीकरण के प्रभाव को स्पष्ट दर्शाया गया है। पंच अध्याय में 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का बदलता सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्वरूप को उठाया गया है। षष्ठम अध्याय में 21वीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का बदलता रंग मंचीय स्वरूप पर प्रकाश डाल गया है। प्रत्येक अध्याय को निष्कर्षों द्वारा पुष्ट किया गया है। कुल मिलाकर शोध छात्रा इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि निःसंदेह 21वीं शताब्दी तकनीक और अनुसंधान व प्रयोगों की दृष्टि से एक अभूतपूर्व शताब्दी है लेकिन प्राकृतिक का नियम है। गुण के साथ अवगुण, सृष्टि के साथ प्रलय, काल के साथ अकाल, पाप के साथ पुण्य धर्म के साथ अधर्म नीति के साथ कुनीति का होना। शताब्दी तो समय का एक बहुत बड़ा खण्ड है पल-पल में बदलने वाला जीवन इतने लम्बे अन्तराल में एक रूप नहीं रह सकता अतः इसमें भी साहित्य रूप 304 से (शोध छात्रा साहित्य की विद्यार्थी है) मूल्यतः नाटकों में उसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। शोध ग्रन्थ के अन्त में पुस्तक सूची में आधार ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ व विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की सूची दी गई है जिनकी सहायता से इस शोध-ग्रन्थ को सम्पन्न करने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ

[1]. नेमिचन्द्र जैन, तीसरा पाठ-चार दशक की प्रस्तुतियाँ, पृ° 78

[2]. द्दष्टव्य, जनसत्ता: 5 नवम्बर, 2000

[3]. डॉ° लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ° 53-54

[4]. उषा गांगुली, रूदाली, पृ° 52

[5]. वही, पृ° 47

[6]. राधा कृष्ण सहाय; अतः किम्, पृ° 10

[7]. ह्रषीकेश सुलभ, 'अमली' पृ° 61

[8]. अमृत लाल मदान, 'अधमुण्डा सिर और चौथी टाँग', पृ°

[9]. विभारानी, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', पृ° 60-61

[10]. विभारानी, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', पृ° 60-61

[11]. विभारानी, 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो', पृ° 65

[12]. सुशील कुमार सिंह, 'चार यारा ¬ के यार', पृ° 36-37

[13]. डॉ° बिरेन्द्र सिंह यादव, 'हिन्दी कथा साहित्य में ¬ पारिवारिक विघटन, पृ° 7

[14]. सुशील कुमार सिंह, 'चार यारा ¬ के यार', पृ° 24

[15]. डॉ° ऋतु सारस्वत 'सहजीवन की उलझन ¬', दैनिक जागरण, 30 अक्तुबर 2010, संपादक (सजय गुप्त)

[16]. डॉ° विनीता राय, 'मूल्य और मूल्य स ंक्रमण', पृ° 129-130

[17]. डॉ° स्वाति तिवारी, 'आजकल कथाबिंब पत्रिका', पृ° 28

[18]. नदिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ° 30

[19]. वही, पृ° 30

[20]. नदिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ° 30

[21]. नादिरा जरीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ° 17–18

[22]. उषा गांगुली, रूदाली, पृ° 12

[23]. वही

[24]. उषा गांगुली, रूदाली, पृ° 23–24

[25]. विभारानी, अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो, पृ° 11–12

[26]. विभारानी, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो, पृ° 20

[27]. वही, पृ° 26

[28]. वही, पृ° 20

[29]. विभा रानी, अगले जनम मोह े बिटिया न कीजो, पृ° 53–54

[30]. डॉ° नरेन्द्र मोहन, अभंग गाथा, पृ° 66

[31]. स्वदेश दीपक – 'जलता हुआ रथ' पृ° 42

[32]. व्यापार चिन्ह

[33]. सम्मिलित होना

[34]. शशिकिरण, कॉफी होम, पृ° 15–16

[35]. महेन्द्र शर्मा सूर्य, नया सवेरा, पृ° 44

[36]. सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 40

[37]. प्रभाकर श्रोत्रियः 'फिरसे जहाँपनाह' पृ° 207–208

[38]. भ्राकर श्रोत्रियः 'फिर से जहाँपनाह' पृ° 203

[39]. किशोर कुमार सिन्हा, 'धारा एक सौ चवालीस', पृ° 82

[40]. शशिकिरण, कॉफी होम, पृ° 45–46

[41]. किशोर कुमार सिन्हा, धारा एक सौ चवालीस, पृ° 16–17

[42]. स्वदेश दीपक, 'जलता हुआ रथ', पृ° 28

[43]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 44

[44]. डॉ° सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 174

[45]. किशोर कुमार सिन्हा, धारा एक सौ चवालीस, पृ° 83–84

[46]. प्रभाकर श्रोत्रिय, फिर से जहांपनाह, पृ° 186

[47]. नर ¬द्रपाल, भ्रष्टाचार, पृ° 19

[48]. डॉ° रचना चावड़ा, इक्कीसवीं सदी में ¬ हिन्दी साहित्य स्थिति एवं संभावनाएं, पृ° 11

[49]. नरेन्द्रपाल, भ्रष्टाचार, पृ° 18

[50]. प्रभाकर श्रोत्रिय, 'फिर से जहाँपनाह, पृ° 198–199

[51]. डॉ° सरिता वाशिष्ठः युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 181

[52]. स्वदेश दीपक, जलता हुआ रथ, पृ° 50–51

[53]. प्रभाकर श्रोत्रिय, फिर से जहाँपनाह, पृ° 223

[54]. डॉ° सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 196

[55]. नरेन्द्र पाल, भ्रष्टाचार, पृ° 32

[56]. महेन्द्र शर्मा सूर्य, 'नया सवेरा', पृ° 52–53

[57]. महेन्द्र शर्मा सूर्या, नया सवेरा, पृ° 53

[58]. डॉ° सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 203

[59]. रजना चावड़ा, विजय शिंदे, सुलक्षणा जाघव घुमरे, इक्कीसवीं सदी में ¬ हिन्दी साहित्य स्थिति एवं संभावनाएँ, पृ° 63

[60]. इस सिद्धान्त के अनुसार देश में ¬ आर्थिक प्रगति का लाभ गरीबी दूर करने के लिए निचले वर्ग पर पहुँचना चाहिए।

[61]. समाजवादी

[62]. बाजार आधारित समाज

[63]. बाजार की शक्तियाँ

[64]. बाजार अर्थव्यवस्था

[65]. शशिकिरण, कॉफी होम, पृ° 31–32

[66]. शशि किरण, 'कॉफी होम', पृ° 46

[67]. प्रभाकर श्रोत्रिय, 'फिर से जहाँपनाह', पृ° 205

[68]. प्रभाकर श्रोत्रिय, फिर से जहाँपनाह, पृ° 206

[69]. डॉ° सरिता वशिष्ठ, युग बोध और हिन्दी नाटक, पृ° 238

[70]. हृषीकेश सुलभ, अमली, पृ° 61

[71]. डॉ° सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 226–227

[72]. वही, पृ° 238

[73]. नदिरा जहीर बब्बर, सकुबाई पृ° 23

[74]. भ्राकर श्रोत्रिय, साँच कहूँ तो, पृ° 128–129

[75]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 36

[76]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 33

[77]. डॉ° सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिन्दी नाटक, पृ° 233

[78]. दया प्रकाश सिन्हा: इतिहास चक्र, पृ° 51–52

[79]. सुशील कुमार सिंह, अलख आजादी की, पृ° 86–87

[80]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 26

[81]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 14

[82]. राधे श्याम शर्मा (संपादकीय) हरिगंधा पत्रिका, मार्च से उद्धृत (अंक 151 हरियाणा साहित्य अंक 1994 पंचकुला मार्च 2007)

[83]. मधु धवन, आज की पुकार, पृ° 15

[84]. डॉ° वीरेन्द्र नाथ सिंह, 'नगरीय समाजशास्त्र', पृ° 199

[85]. मधु धवन, 'आज की पुकार', पृ° 21

[86]. अहा! जिन्दगी पत्रिका, अंक 05 जनवरी 2011, पृ° 13

[87]. रंगकर्मी राम गोपाल बजाज, अहा! जिंदगी अंक 05, जनवरी 2011, पृ° 11

[88]. बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, पृ° 55

[89]. ललित सिंह पोखरिया, दिल्ली-6, पृ° 9

[90]. नादिरा जहीर बब्बर, जी जैसी आपकी मर्जी, पृ° 16

[91]. डॉ° विश्वनाथ शर्मा, हिन्दी रंगमंच का उद्भव विकास, पृ° 22

[92]. ललित सिंह, पोखरिया, दिल्ली-6, पृ° 35

[93]. विपिन गुप्त, हिन्दी नाटक में ¬ समसामयिक परिवेश, पृ° 44

[94]. पीयुष मिश्रा, गगन दमामा बाज्यो, पृ° 61

[95]. विभारानी, अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो, पृ° 53-54

[96]. जयदेव तनेजा, समसामयिक हिन्दी नाटका¬ में ¬ चरित्र-दृष्टि, पृ° 14

[97]. रवीन्द्र भारती, अगिन तिरिया, पृ° 68

[98]. रवीन्द्र भारती, अगिन तिरिया, पृ° 68

[99]. रवीन्द्र भारती, अगिन तिरिया, पृ° 32-33

[100]. सुमन कुमार, अगिन तिरिया नाटक की भूमिका में –, पृ° 14

[101]. मोती लाल क्यूम, रंग राजतरंगिणी, पृ° 30–31

[102]. शान्ति मलिक, नाट्य सिद्धान्त विवेचन, पृ° 71

[103]. सुशील कपूर, आज का सच, पृ° 27

[104]. लक्ष्मीनारायण लाल, आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ° 46

[105]. सुशील कुमार सिंह, चारा¬ चारा¬ के पार, पृ° 26

[106]. सुशीला धीर, भारतेन्दु युगीन नाटक, पृ° 30

[107]. नादिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ° 18

[108]. मोती लाल क्यूम, रंग-राजतरंगिणी, पृ° 28

[109]. विपिन गुप्त, हिन्दी नाटक में ¬ समसामयिक परिवेश, पृ° 471

[110]. हृषीकेश सुलभ, अमली, पृ° 40

[111]. ललित सिंह पोखरिया, दिल्ली-6, पृ° 30–31

[112]. पीयूष मिश्रा, गगन दमामा¬ बाज्या¬, पृ° 43

[113]. नैमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ° 29

[114]. मीराकांत, हुमा को उड़ जाने दो, पृ°

[115]. मीराकांत, हुमा को उड़ जाने दो, पृ° 34

[116]. दशरथ ओझा, हिंदी नाटक उद्भव और विकास, पृ° 28

[117]. महेन्द्र शर्मा सूर्य, नया सवेरा, पृ° 7–8

[118]. नैमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, पृ° 19–20

[119]. ललित सिंह पोखरिया, दिल्ली-6, पृ° 85

[120]. सुशील कुमार सिंह, अलख आजादी की, पृ° 26–27

[121]. शशि किरण, कॉफी होम, पृ°

[122]. नादिरा जहीर बब्बर, जी, जैसी आपकी मर्जी, पृ° 18–19

[123]. नटरंग, अंक 86–87, पृ° 62, जुलाई–दिसम्बर–2010

[124]. ह्रषीकेश सुलभ, अमली, पृ° 72

[125]. नेमिचन्द्र जैनः रंगदर्शन, पृ° 21

[126]. रवीन्द्र भारतीय जनवास, पृ° 20–21

[127]. ह्रषीकेश सुलभ, धरती आबा, पृ° 35

[128]. लक्ष्मी नारायणलाल: आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ° 64

[129]. स्वातंत्र्योतर हिंदी नाटक: समस्या और समाधान डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा -प–25

[130]. सर्जना के तेवर, डॉ चन्द्र प 29

[131]. दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज, देवेन्द्र राज अंकुर, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2010 प 49

[132]. गिरीश रस्तोगी, नटरंग, नाटक में नवीनता की मांग प–10 –11

[133]. हिंदी नाटक और रंगमंच पर ब्रेख्त का प्रभाव डॉ, सुरेश वशिष्ठ प 37–38

[134]. सर्जना के तेवर डॉ चन्द्र प 29

[135]. रंग प्रसंग 2010, उषा गांगुली प 80

[136]. स्वातंत्र्योतर हिंदी नाटक: समस्या और समाधान डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा -प–25

[137]. सर्जना के तेवर, डॉ चन्द्र प 29

[138]. दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज, देवेन्द्र राज अंकुर, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2010 प 49

[139]. गिरीश रस्तोगी, नटरंग, नाटक में नवीनता की मांग प–10 –11

[140]. हिंदी नाटक और रंगमंच पर ब्रेख्त का प्रभाव डॉ, सुरेश वशिष्ठ प 37–38

[141]. सर्जना के तेवर डॉ चन्द्र प 29

[142]. रंग प्रसंग 2010, उषा गांगुली प 80

[143]. नटरंग विवेक – नारायणराय – पृ-15

[144]. नटरंग विवेक – नारायणराय – पृ-15

[145]. नटरंग विवेक – नारायणराय – पृ-16

[146]. टूटे परिवेश – (आमुख से) – गोविन्द चातक – पृ – 7,8

[147]. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : समस्या और समाधान – डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा – पृ-36

[148]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ- 11,12

[149]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ- 12

[150]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ-13

[151]. सिंहासन खाली है – सुशील कुमार सिंह – पृ-9

[152]. सिंहासन खाली है – सुशील कुमार सिंह – पृ- 21

[153]. बकरी – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – पृ – 19

[154]. हानुश – भीष्म साहनी – पृ – 73

[155]. तड़प मुक्ति की – माता प्रसाद – पृ- 15

[156]. श्रीमद् भागवत – गीतारहस्य – तिलक – पृ – 435

[157]. हिन्दी साहित्य कोश – धीरेन्द्र वर्मा – पृ – 47

[158]. अंधायुग – धर्मवीर भारती – पृ –130

[159]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ- 42

[160]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ-23

[161]. अंधा युग – धर्मवीर भारती – पृ – 35, 36

[162]. रागदरबारी – श्रीलाल शुल्प, गिरीश रस्तोगी – पृ – 12

[163]. रागदरबारी – श्रीलाल शुल्प, गिरीश रस्तोगी – पृ – 21

[164]. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा प्रस्तुत लहरों के राज हंस के परिचय पत्र में प्रकाशित लेखक वक्तव्य से उद्दत

[165]. लहरों के राज हंस – मोहन राकेश – पृ–127

[166]. लहरों के राज हंस – मोहन राकेश – पृ–127

[167]. लहरों के राज हंस – मोहन राकेश – पृ–128

[168]. आधे अधूरे – मोहन राकेश – पृ – 12

[169]. कबिरा खड़ा बाजार में – भीष्म साहनी – पृ– 99

[170]. बकरी – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – पृ–62

[171]. करफ्यू – लक्ष्मीनारायण लाल – पृ– 125

[172]. पाँच नाटक – वजाहत – पृ– 108

[173]. तड़प मुक्ति की – माता प्रसाद – पृ – 60

[174]. मानव समाज – किंग्स लेडेविस – पृ – 318

[175]. भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास –डॉ. पी. यम.थामस –पृ– 36

[176]. साठोत्तर हिन्दी नाटक – लवकुमार लवलीन – पृ–71

[177]. आधे अधूरे – मोहन राकेश – पृ–21

[178]. आधे अधूरे – मोहन राकेश – पृ – 12

[179]. आधे अधूरे – मोहन राकेश – पृ– 92

[180]. सिंहासन खाली है – सुशील कुमार सिंह – पृ– 53

[181]. रागदरबारी – श्री लाल शुल्क – पृ– 16

[182]. साठोत्तर नाटककार – पृ–76

[183]. द्रौपदी - सुरेन्द्र वर्मा - पृ- 19

[184]. बकरी - मोहन राकेश - पृ- 34, 35

[185]. कबिरा खड़ा बाजार में - हानुश - पृ- 15

[186]. वशीयत - नाग बोड्स - पृ- 42

[187]. आधुनिक हिन्दी नाटकों में नायक - डॉ. श्याम शर्मा - पृ-69

[188]. अधायुग - धर्मवीर भारती - पृ- 12

[189]. डॉ॰ एल॰ पी॰, हिन्दी नाटकों¬ में¬ युवा मानसिकता, पृ॰ 15

[190]. पं॰ सीताराम चतुर्वेदी, भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृ॰ 7

[191]. डॉ॰ नगेन्द्र (अनु): अरस्त का काव्यशास्त्र, पृ॰ 64

[192]. सेठ गोबिन्ददासः नाट्यकला मीमांसा, पृ॰ 17

[193]. डॉ॰ नगेन्द्र (अनु): अरस्तु का काव्यशास्त्र, पृ॰ 64

[194]. दशरथ ओझा: हिन्दी नाटकः उद्भव और विकास, पृ॰ 36

[195]. जयदेव तनेजा: नयी रंग चेतना और हिंदी नाटककार, पृ॰ 31

[196]. जयदेव तनेजा - नयी रंग चेतना और हिंदी नाटककार, पृ॰ 88

[197]. भ्रात शर्मा: हिन्दी नाटक इतिहास दृष्टि और समकालीन बोध, पृ॰ 70

[198]. पूर्णचंद शर्माः हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य पर ंपरा, पृ॰ 69

[199]. डॉ॰ विपिनगुप्त 'हिन्दी नाटक में समसामयिक परिवेश', पृ॰ 31

[200]. दशरथ ओझाः हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास, पृ॰ 2

[201]. डॉ॰ सुरेश गौतम, डॉ॰ वीणा गौतमः भाारतीय साहित्य कोश, खंड-4, पृ॰ 450

[202]. डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल, आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ॰ 24

[203]. नेमिचन्द्र जैन, रंगदर्शन, अक्षरप्रकाश दिल्ली, सं॰ 1983 पृ॰ 21

[204]. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नटरंग अंक 12 वर्ष 3 अक्टूबर- 1963